# वेदचक्षु

DONATION

पं० आचार्य विश्वनाथ विद्या भास्कर्मति प्रदत्त संग्रह

पं० आचार्य विश्वनाथ विद्या भास्कर्मति प्रदत्त संग्रह



सम्पादक
केदारनाथ प्रभाकर

AIYARS M. 56

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
कृपया पुस्तक के ऊपर कोई निशान आदि
न लगायें।

# पुस्तकालय

**गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार**

वर्ग संख्या..... आगत संख्या.....

पुस्तक-विवरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित ३० वें दिन यह पुस्तक पुस्तकालय में वापिस आ जानी चाहिए। अन्यथा ५० पैसे प्रति दिन के हिसाब से विलम्ब-दण्ड लगेगा।


भारत

श्री व

यह जान

तक हुई ख

शुभ-कामन

•

भारत की महिम

श्रीमती इं

'वेदचक्षु' के वराह

•

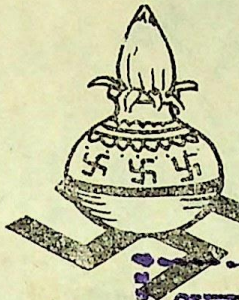
भारत के गौरवशाली उप

श्री गोपाल स्वरू

'वेदचक्षु' के नये अङ्क में वराह मिहिर पर खोज और नये निष्कर्षों के प्रकाशन की योजना की सफलता के लिए हार्दिक शुभ-कामनायें।


R14,PRA-V

9356



# मंगल वचन

आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति
भूतपूर्व कुलपति, गुरुकुल कांगड़ी
विश्वविद्यालय द्वारा प्रदत्त
ग्रंथ संग्रह..... 9356

भारत के महामहिम राष्ट्रपति

## श्री वराहगिरि व्यङ्कटगिरि

यह जानकर प्रसन्नता हुई कि 'वेदचक्षु' अपने नये अङ्क में वराहमिहिर पर अब तक हुई खोजों को प्रकाशित कर रहा है। इस प्रयास की सफलता के लिए शुभ-कामनाएँ।

•

पुस्तकालय
गुरुकुल विश्वविद्यालय

भारत की महिमामयी प्रधानमन्त्री

## श्रीमती इंदिरा गांधी

'वेदचक्षु' के वराहमिहिर विशेषांक के लिए शुभ-कामनायें।

•

भारत के गौरवशाली उपराष्ट्रपति

## श्री गोपाल स्वरूप पाठक

'वेदचक्षु' के नये अङ्क में वराह मिहिर पर खोज और नये निष्कर्षों के प्रकाशन की योजना की सफलता के लिए हार्दिक शुभ-कामनायें।

R14,PRA-V
9356



Prof. **B. V. RAMAN,**
D. LIT. F.R.A.S.
Editor,
The Astrological Magazine,
Bangalore-20.

I am happy to learn that my esteemed friend Sri K. N. Prabhakar is bringing out a Varahamihira Commemoration Number of his Journal "Veda Chakshu".

The name of Varahamihira raises many pleasant and patriotic feelings in the minds of all thinking Indians, that there was once in this ancient Land of ours, such a pre-eminent intellectual genius as Varahamihira who did, not a little, to systematise the astronomical knowledge of his times and laid the foundation for a systematic study of not only astronomy and astrology but such important and varied branches of knowledge as meteorology, plant-breeding, sun-spot phenomena and water-divining.

Next to the great Rishis, Varahamihira occupies a unique position for his intellectual eminence, unparallelled scholarship and profound knowledge of astronomy and astrology. A great master of Sanskrit, his ideas have been couched in a language that is not only suggestive, but even as poetry rises to a considerable merit.

It is a pity that our rulers should not have thought fit to commemorate the name of this celebrated genius who continues to shine as a star of the first magnitude in the scientific horizon of ancient India.

Mr. prabhakar is to be congratulated for bringing out a Varahamihira Memorial Number of hs journal "Veda-Chakshu" and I wish him and his Journal every success.

(B. V. RAMAN)



डा० शिवमंगलसिंह 'सुमन'
एम.ए., डी.लिट्
कुलपति
विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन



जिस निष्ठा और संकल्पशीलता के साथ आप भारत के ज्योतिर्वेद को पुनर्प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न कर रहे हैं वह सराहनीय ही नहीं, अनुकरणीय भी है। यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि आप 'वेदचक्षु' का वराहमिहिर विशेषांक निकालने जा रहे हैं। विक्रम विश्वविद्यालय ने कायथा (कापित्थ) में उत्खनन कर के इस सम्बन्ध में जो प्रारम्भिक प्रयास किया है वह आपको विदित ही है। हमारे आपके सम्मिलित सहयोग एवं सद्भावना से भगवान वराहमिहिर के संम्बन्ध में विस्मृत तथ्यों को पुनः संजीवित और प्रकाश में लाने का प्रयत्न तो किया ही जायगा उसके साथ ही ज्योतिष के क्षेत्र में भारत की महान साधना और उपलब्धियों का समीकरण भी हो सकेगा। मैं वराहमिहिर अंक के ज्योतिर्मय प्रकाशन की प्रतीक्षा में हूं। मेरी हार्दिक मंगल-कामना आपके साथ है।

(शिवमंगलसिंह सुमन')

## मेवाड़ के महाराणा श्री भगवत सिंह महोदय

आचार्य वराहमिहिर ने ज्योतिष शास्त्र के द्वारा भारत का भाल समुन्नत व उजज्वल किया है। आचार्य प्रवर ने अतीत में जो सिद्धान्त स्थापित किये उनकी पुष्टी आज का विज्ञानवेत्ता जग भी उन्हें नतमस्तक हो स्वीकार करता है। उनकी हमारे जीवन की संस्कृति पर निश्चय ही गहरी छाप है।

'वेदचक्षु' में उनके विषय में जो भी लिखा जा रहा है वह केवल उनके प्रति स्नेह पुष्पाञ्जलि है। आपने सामयिक विषय में रूचि लेकर प्रकाशन की योजना उठाई वह प्रशंसनीय है। हम आपकी शुभ कामना करते हैं।

## श्री बन्सीलाल, मुख्य-मन्त्री हरियाणा

ऋषियों एवं मुनियों की तपोभूमि, बद्रीनारायण, अमरनाथ, हरिद्वार एवं कुरूक्षेत्र जैसे तीर्थों की धर्मस्थली तथा गीता, वेदों, उपनिषदों एवं आरण्यकों जैसे धर्मग्रन्थों की जन्मस्थली-भारत भूमि का कण-कण पूजित है। यहाँ जगह-जगह पर निर्मित विशाल भवन एवं कीर्ति स्तम्भ प्राचीन के उनम नमूने हैं। आशा है 'वेदचक्षु' के 'वराहमिहिर विशेषाङ्क' में प्रकाशित होने वाली खोज पूर्ण सामग्री से भारतवासियों को उचित जानकारी मिलेगी। मैं इस विशेषाङ्क के सफल प्रकाशन की कामना करता हूं।

## श्री बी० गोपाल रेड्डी, राज्यपाल उत्तर-प्रदेश

हमारी प्राचीन विद्याओं और कृतियों में असीम सम्भावनाएँ भरी हुई हैं और उनके वैज्ञानिक अध्यन एवं शोध की आज बड़ी आवश्यकता है। वराहमिहिर ने ज्योतिष शास्त्र को पूर्णता प्रदान करते हुए उसे विस्तार की नई दिशाएँ प्रदान कीं और वे भारतीय संस्कृति के एक महान गौरव स्तम्भ के रूप में सदैव आदरणीय रहेंगे। मैं 'वेदचक्षु' परिवार को इस अंक के हेतु बधाई देता हूं और उसकी सफलता हेतु अपनी शुभ कामनाएँ भेजता हूं।

## श्रीमती रमा जैन, अध्यक्षा भारतीय ज्ञानपीठ

ज्योतिष के क्षेत्र में आचार्य वराहमिहिर का योगदान विश्व के लिये अपूर्व है। भारत का सौभाग्य है कि इस धरा को उन्होंने अपने जीवन और कृतित्व से आलौकित किया। आपके प्रयत्नों की सफलता चाहती हूं।

## श्री माधवराव सदाशिवराव गोलवलकर

ज्योतिर्विज्ञान के महान आचार्य श्री वराहमिहिर के सम्बंध में आप के संस्थान की ओर से शोधकार्य हो रहा था इसकी जानकारी आपके द्वारा मुझे पहले ही मिल चुकी थी। अब इस सब गवेषणा का फल 'वेदचक्षु' के वराहमिहिर विशेषाङ्क में प्रकाशित कर अनेक चलते आये भ्रमों का निरास करने का और

सत्य इतिहास स्थापित करने का आपने संकल्प किया है वह बहुत आवश्यक हैं। यह अङ्क ज्ञान देने वाला व अपने अतीत के गौरव के सम्बन्ध में यथार्थ भाव जगाने वाला, वर्तमान में कर्म प्रेरक सिद्ध हो ऐसी इच्छा है। तदर्थ सर्वज्ञानमय श्री प्रभु के चरण कमलों में प्रार्थना करता हूं।

## श्री डॉ० श्रुति शील शर्मा, स्वाध्याय मण्डल

ज्योतिर्विद्वच्छिरोमणि पू० वराहमिहिर जी के बारे में जितनी भी प्रशस्ति लिखी जाय थोड़ी ही होगी। पर सच तो यह है कि हम भारतीयों ने उनके ग्रन्थों के बारे में कम ही संशोधन किया है। अब आपने इस गुरूतर कार्यभार का वहन किया है, यह मेरे हृदयानन्दसंदोह का एक उत्स ही सिद्ध हुआ। आपके इस पुनीत कार्य की सिद्धि में सर्वनियंता तो सहायक होंगे ही, इसमें कोई सन्देह नहीं, मेरी भी हार्दिक शुभ कामनाएं आपको प्रेषित हैं।

## श्री पी० एन० ओक, भारतीय इतिहास पुनर्लेखन संस्था

अतीत की प्रदीर्घ परतंत्रता में भारतीय इतिहास की जो हानि हुई उसमें दिल्ली स्थित प्राचीन ज्योतिषीय वेधस्तम्भ (मेरू स्तम्भ) को विदेशी आक्रमकों द्वारा बनाया मीनार समझा जाना भी एक गहरी चोट है। इतिहास की इस भयंकर भूल को ज्योतिषीय मापन द्वारा जनता के संमुख प्रस्तुत करने का आपका प्रयास प्रशंसनीय है। संस्थान द्वारा तथा कथित कुतुबमीनार एवं इसके आदि निर्माता आचार्य वराहमिहिर के सम्बन्ध में "वेदचक्षु" के "वराहमिहिर विशेषाङ्क" के सफल प्रकाशन के लिए मैं मङ्गलमय भगवान से कामना करता हूं।

## श्री जगजीवन राम, रक्षा मन्त्री भारत सरकार

'वेदचक्षु' के वराहमिहिर विशेषाङ्क में ज्योतिष विज्ञान में हुई खोजों की जानकारी देना एक अच्छा कार्य होगा। विशेषाङ्क उपयोगी सिद्ध हो।

## श्री सिद्धेश्वर प्रसाद, के० उपमंत्री, सिंचाई व बिजली

'वेदचक्षु' के वराहमिहिर विशेषांक में आप शोध सामग्री प्रकाशित कर रहे हैं, यह जानकर प्रसन्नता हुई। आशा है वह अपने क्षेत्र में उपयोगी सिद्ध होगी। शुभ कामनाओं सहित।

## श्री कमलापति त्रिपाठी, मुख्य-मन्त्री, उत्तर-प्रदेश

जिज्ञासा और गवेषणा की प्रवृत्ति को हर प्रकार से प्रोत्साहन मिलना चाहिये। संस्थान और विशेषांक की सफलता की शुभ कामना करता हूं

## श्री ल० ओ० जोशी, शिक्षा सचिव, मध्य-प्रदेश शासन

आचार्य वराहमिहिर के सम्बन्ध में जो साहित्यक कार्य आपके संस्थान में आयोजित है, उसके उद्देश्यों से मैं पूर्णतः सहमत हूं। आपके सत् प्रयासों तथा

'वेदचक्षु' के इस विशेषांक के प्रकाशक की सफलता की मैं कामना करता हूं।

सिद्धिः साध्ये सतामस्तु।

## श्री डा. श्रीकृष्ण गोस्वामी, कुलसचिव मेरठ वि. विद्यालय

आपके संस्थान द्वारा पहले भी कई एक महत्वपूर्ण प्रकाशन एवं अनुसंधान हो चुके हैं जिनमें "श्री वैष्णों देवी यात्रा" पुस्तक विशेष रूप से उल्लेखनीय है क्योंकि इसी पुस्तक के आधार पर भारत में सर्व प्रथम 'माता वैष्णो देवी" फीचर फिल्म का गत दिनों निर्माण हुआ है।

कुतुबमीनार के नाम से प्रसिद्ध आचार्य वराहमिहिर की वेधशाला के संबंध में आपने जो आश्चर्यजनक अनुसंधान एवं नवीन रहस्यों की खोज की है उससे हमारे इतिहास में एक नयी क्रांति पैदा हो जाना स्वाभाविक है।

"वेदचक्षु" के इसी सिलसिले में प्रकाशित होने वाले 'वराहमिहिर विशेषांक के सफल प्रकाशन क लिये मेरी समस्त शुभ कामनाएँ आपके साथ हैं।

## श्री कालिशङ्कर त्रिपाठी, डी आई. जी. उ. प्र. पुलिस

भारत विभूति आचार्य वराहमिहिर के जीवन एवं उनके कार्य-कलापों को 'वेदचक्षु के 'वराहमिहिर विशेषांक' के द्वारा प्रकाश में लाने का आपका प्रयास न केवल सराहणीय है बल्कि हम सब के लिये गौरव की बात है। भगवान आपको सफलता प्रदान करें। मेरी मङ्गलकामनाएँ सदैव आपके साथ हैं।

## सिने-जगत के प्रसिद्ध पट कथा लेखक श्री आर. प्रियदर्शी

अंधकार में छिपी हुई कुतुबमीनार की सच्ची कहानी को आप वेदचक्षु' के माध्यम से प्रकाश में ला रहे हैं इसके लिये आपको अनेकों बधाई। आचार्य वराहमिहिर के इस सत्य को संसार जान सके यह अच्छा है। भगवान आपको इस नए उत्साह और प्रयास में शक्ति दें। मेरी समस्त शुभकामनाएँ आपके साथ हैं।

## श्री अक्षयकुमार जैन, संपादक दैनिक नवभारत टाइम्स

बड़ी प्रसन्नता की बात है 'वेदचक्षु' आचार्य वराहमिहिर की खोजों पर नयी सामग्री दे रहा है। मैं इसकी पूर्ण सफलता की कामना करता हूं।

## श्री बशीधर पांडे, कुलपति रविशङ्कर विश्वविद्यालय

भारत वर्ष आदि काल से ज्योतिर्विज्ञान के क्षेत्र में प्रख्यात रहा है। आज के वैज्ञानिक युग में भी ज्योतिष विद्या का अपना विशिष्ट स्थान है। यही कारण है कि राजनीतिज्ञ, उद्योगपति शिक्षा शास्त्री आदि समाज के अन्य अंग ज्योतिष वेत्ता के निर्देशानुसार ही निर्दिष्ट मार्ग पर अग्रसर होते हैं। 'वेदचक्षु' सरीखे महत्वपूर्ण प्रकाशन के लिये भारतीय ज्योतिर्विज्ञान अनुसंधान संस्थान को हमारी अनेक शुभकामनाएँ।

## श्री रतन लाल जोशी, सम्पादक : दैनिक हिन्दुस्तान

'वेदचक्षु' के सांस्कृतिक व्यक्तित्व का आपने परिचय दिया है, आज ऐसे पत्र की सर्वाधिक आवश्यकता है। मेरी शुभकामनायें।

## श्री प्रियव्रत वेद वाचस्पति,

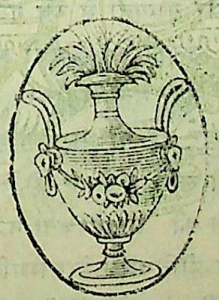
यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आप अपनी सुप्रसिद्ध शोध पत्रिका 'वेदचक्षु' का एक विशेषांक निकालने जा रहे हैं जिसमें भ्रान्ति से कुतुबमीनार कहे जाने वाले भारतीय ज्योतिषियों के शिरोमणि आचार्य वराहमिहिर के मेरूस्तम्भ के सम्बन्ध में आपके संस्थान द्वारा की गई महत्वपूर्ण खोज प्रकाशित की जायेगी। आपका संस्थान और 'वेदचक्षु' प्राचीन भारतीय ज्योतिर्विज्ञान के अनुसधान के क्षेत्र में बहुत ही महत्वपूर्ण और सराहनीय कार्य कर रहे हैं। मैं आपके इस प्रयास की पूर्ण सफलता की कामना करता हूं।

## पद्म भूषण डॉ० सूर्य नारायण व्यास ज्योतिषाचार्य

'वेदचक्षु' के वराहमिहिर विशेषाङ्क की सफलता के लिए मेरी समस्त शुभ कामनाएं आपके साथ हैं। ज्योतिष शास्त्र पर यह आपकी बड़ी ही उपलब्धि और महत् उपकार होगा। इस हेतु सभी ज्योतिष प्रेमीगण उपकृत होंगे।

## श्री नारायण राव तर्टे सम्पादक : हिन्दू विश्व

हमें विश्वास है कि 'वेदचक्षु' के इस विशेषाङ्क द्वारा विद्वानों एवं ज्योतिष तथा हमारे गौरवपूर्ण प्राचीन इतिहास में अभिरूचि रखने वाले सभी व्यक्तियों को ज्ञानार्जन करने का गौरव प्राप्त होगा। 'हिन्दू विश्व' परिवार की ओर से पत्रिका के प्रकाशन की सफलता के लिए हार्दिक शुभ कामनाएँ अर्पित कर रहा हूं।



# यह प्रीति-भोज

०००००

एक प्रीति-भोज का आयोजन हुआ।

प्रीति-भोज देने वाले ने खोज-खोज कर चतुर पाचक बुलाये।

उन पाचकों ने उन-उन व्यंजनों के निर्माण में हाथ लगाया, जिन-जिन के निर्माण में वे विशेष निपुण थे।

प्रीति-भोज का दिन निश्चित था, समय निश्चित था।

उस दिन, उस समय के लिए मित्र-बन्धु निमन्त्रित थे।

समय से पूर्व ही प्रीति-भोज देने वाले ने व्यवस्था पूर्वक मेजें बिछाईं, कुर्सियां लगाईं और मेजों को साफ-सुथरी चादरों से ढक दिया।

तब सुन्दर-स्वच्छ पात्रों में चतुर पाचकों द्वारा परिश्रम और योग्यता से पकाये गए विविध व्यंजन अपने हाथ से परसे।

प्रीति-भोज देने वाले ने परसते समय यह ध्यान रखा कि कौन व्यंजन कहाँ और किस तरह रखा जाए।

पात्रों में व्यंजन परसे गये, मित्र-बन्धु समय पर पधारे, प्रीति-भोज आनन्द के वातावरण में पूर्ण हुआ।

सभी व्यंजन सरस थे। भोजन करने वालों ने उनके रस की खूब प्रशंसा की, सभी सन्तुष्ट हुए।

प्रीति-भोज देने वाले ने नम्रता से निवेदन किया—"बन्धुओं, इन व्यंजनों में जो रस है, स्वाद है, स्वास्थ्यवर्धक तत्व हैं, उसके विधाता तो ये पाचक बन्धु हैं। मैंने तो उन्हें सिर्फ परसने का ही काम किया है। व्यंजनों के सम्बन्ध में आपकी भावना में–प्रशंसा में मैं उन्हें भेंट करता हूं। हां, परसने में कहीं कोई त्रुटि हो, उसका उत्तरदायित्व मुझ पर है।"

'वेदचक्षु' के 'वराहमिहिर अङ्क' को पाठकों के हाथों में भेंट करते समय यही निवेदन मेरा है।

सुयोग्य लेखकों द्वारा परिश्रम और योग्यता से रचे गये लेख-व्यंजन मैंने अपनी योग्यता एवं रुचि के अनुसार परस दिये हैं। उनका रस लेखकों का अपना है। मेरा उत्तरदायित्व तो परसने की त्रुटियों का है और उसे मैं सदा सहर्ष स्वीकार करूंगा।

बीसवीं सदी में महान वराहमिहिर पर जो भी कहीं कुछ लिखा गया है, प्रयत्न रहा है कि वह सभी इन पृष्ठों में आजाए। इतने लम्बे समय में जो कार्य हुआ, उसमें कहीं एक मत से दूसरा मत भिन्न हो, तो उससे घबराने की आवश्यकता नहीं, उस पर नये चिन्तन की ही आवश्यकता है। आशा है पाठक इस प्रीति-भोज में सम्मिलित हो सुखी होंगे।

इस साहित्यिक प्रीतिभोज को परिपूर्णता देने में जिन-जिन का श्रम लगा, मैं उन सभी के प्रति अपनी कृतज्ञता अर्पित करता हूं। इस श्राद्ध कर्म से राष्ट्र-देवता प्रसन्न हों।

—केदारनाथ प्रभाकर

# वेदचक्षु

## (वराहमिहिर विशेषांक)

वेद, धर्मशास्त्र, ज्योतिष, भारतीय संस्कृति और राष्ट्रीयता का
अनुसंधाता, प्रचारक और प्रहरी वार्षिक

दिशा–दर्शन

**श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'**

निदेशक

**आचार्य पं० चक्रधर जोशी**

सम्पादक

**केदारनाथ प्रभाकर**

प्रकाशक

**भारतीय ज्योतिर्विज्ञान अनुसंधान संस्थान**

लक्ष्मी नगर : सहारनपुर : उत्तर प्रदेश

दूरभाष : ४४१५

मुद्रक

श्री अखिलेश

विकास प्रिंटिंग वर्क्स, सहारनपुर

दूरभाष : ३८५३

चैत्र शुक्ल प्रतिपदा सम्वत २०२९ विक्रमी

(१६ मार्च १९७२)

मूल्य—पांच रुपये ० विदेश में दस रुपये

ॐ

# कहाँ क्या पढ़ें ?


| | | | |
|---|---|---|---|
| १ | सूर्य-वन्दना | | १ |
| २ | शिव-वन्दना | राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त | २ |
| ३ | विक्रम-वन्दना | कविवर श्री उदयशङ्कर भट्ट | ३ |
| ४ | आचार्य वराहमिहिर का कालज्ञान मंत्र | केदारनाथ प्रभाकर | ४ |
| ५ | विक्रमादित्य और उनके नवरत्न | केदारनाथ प्रभाकर | ६ |


## जीवन-परिचय


| | | | |
|---|---|---|---|
| ६ | वराह-वराहमिहिर अथवा वराहमिहर | मूल संस्कृत-म. म. पं. सुधाकर द्विवेदी<br>अनुवाद-श्रीमती राजरानी शर्मा | १७ |
| ७ | वराहमिहिर : एक परिचय | श्री शङ्कर बालकृष्ण दीक्षित | १९ |
| ८ | वराहमिहिर की जीवनी | मूल अंग्रेजी-प्रो. बी. सूर्यनारायण राव<br>अनुवाद-केदारनाथ प्रभाकर | २२ |
| ९ | आधुनिक विज्ञान के मूल स्रोत : आचार्य वराहमिहिर | श्री बृज किशोर चतुर्वेदी | २७ |
| १० | आचार्य वराहमिहिर और जैन साहित्य में उनका वर्णन | 'पद्मभूषण' डॉ. सूर्यनारायण व्यास | ३१ |
| ११ | आचार्य वराहमिहिर का वंश परिचय | मूल संस्कृत-श्री रघुनन्दन त्रिपाठी<br>अनुवाद-केदारनाथ प्रभाकर | ३५ |
| १२ | बुजुर्गमेहर और वराहमिहिर | केदारनाथ प्रभाकर | ३८ |
| १३ | पंच वराहमिहिर | केदारनाथ प्रभाकर | ४० |
| १४ | विश्वकोष के पन्नों में वराहमिहिर | श्री हजारीलाल शर्मा | ४१ |
| १५ | भविष्य पुराण में वराहमिहिर | केदारनाथ प्रभाकर | ४४ |
| १६ | विदुषी खना : वराह और मिहिर | कु. वीणा अग्रवाल | ४६ |
| १७ | आचार्य वराहमिहिर की जन्मभूमि | केदारनाथ प्रभाकर | ५६ |


## साहित्य-परिचय


| | | | |
|---|---|---|---|
| १८ | ज्योतिष साहित्य में वराहमिहिर का स्थान | मूल अंग्रेजी-डॉ. अजय मित्र शास्त्री<br>अनुवाद-केदारनाथ प्रभाकर | ६५ |
| १९ | वराहमिहिर का साहित्य और उसका महत्व | केदारनाथ प्रभाकर | ६८ |
| २० | संस्कृत काव्य एवं ज्योतिष साहित्य को वराहमिहिर की देन | मूल अंग्रेजी-श्री ए. एन. श्रीनिवास राघव आयंगर<br>अनुवाद-केदारनाथ प्रभाकर | ७६ |
| २१ | वराहमिहिरकालीन भारत | केदारनाथ प्रभाकर | ८० |

## काल-निर्णय


| | | | |
|---|---|---|---|
| २२ | वराहमिहिर के सही जन्मकाल का निर्णय | मूल अंग्रेजी-प्रो. वी. सूर्यनारायण राव<br>अनुवाद-केदारनाथ प्रभाकर | ८७ |
| २३ | वराहमिहिर का जन्मकाल और उनके द्वारा वर्णित शककाल की खोज | मूल अंग्रेजी-श्री ए. एन. श्रीनिवास राघव आयंगर<br>अनुवाद-केदारनाथ प्रभाकर | ९२ |
| २४ | वराहमिहिर का काल | मूल अंग्रेजी-डॉ. वी. वी. रमन<br>अनुवाद-श्री शालिग्राम यादव | १०१ |
| २५ | आचार्य वराहमिहिर का जन्म कब हुआ था ? | केदारनाथ प्रभाकर | १०८ |
| २६ | ज्योतिषाचार्य वराहमिहिर का कार्यकाल | श्री शोभनाथ पाठक | ११७ |
| २७ | वराहमिहिर का काल निर्णय | श्री प्रकाश चन्द्र पांड्या | ११९ |
| २८ | आर्यभट्ट, वराहमिहिर और कालिदास का समय | मूल गुजराती-श्री मोरेश्वर शास्त्री<br>अनुवाद-आचार्य चक्रधर जोशी | १२१ |


## कुतुबमीनार


| | | | |
|---|---|---|---|
| २९ | कुतुबमीनार के अभिलेख | केदारनाथ प्रभाकर | १२९ |
| ३० | कुतुबमीनार के रोशनदान | केदारनाथ प्रभाकर | १३१ |
| ३१ | कुतुबमीनार की छाया | केदारनाथ प्रभाकर | १३३ |
| ३२ | कुतुबमीनार के निकट निर्मित प्राचीन यवन वेधशाला | केदारनाथ प्रभाकर | १३६ |
| ३३ | कुव्वत-उल-इस्लाम मस्जिद : जहां कभी विष्णु मन्दिर था | केदारनाथ प्रभाकर | १३८ |
| ३४ | कुतुबमीनार या मेरूस्तम्भ | केदारनाथ प्रभाकर | १४२ |
| ३५ | क्या वराहमिहिर की वेधशाला का विस्तार कालका मन्दिर तक था ? | केदारनाथ प्रभाकर | १४६ |
| ३६ | भारत का तारा : वराहमिहिर | श्री भगवन्त सिंह 'भगवन्त' | १४८ |


## साहित्य-समीक्षा


| | | | |
|---|---|---|---|
| ३७ | पुस्तक परिचय | केदारनाथ प्रभाकर | १४९ |


## संस्थान-समाचार


| | | |
|---|---|---|
| ३८ | परिचय की कुछ रेखाएं | १५९ |
| ३९ | वराहमिहिर स्मृति उत्सव | १६२ |
| ४० | वे अब नहीं रहे | १६५ |
| ४१ | मूक महान | १६६ |
| ४२ | अखिल भारतीय वरहामिहि स्मृति महोत्सव समिति | १६७ |
| ४३ | श्री लक्ष्मीधर विद्या मन्दिर देवप्रयाग: एक परिचय | १६८ |
| ४४ | आभार प्रदर्शन | १७० |
| ४५ | स्वस्ति वाचन | १७१ |

# समर्पण



कुतुबमीनार कुतुबुद्दीन ऐबक की बनवाई मीनार नहीं, महान खगोल शास्त्री वराहमिहिर की वेधशाला है।

इस लुप्त सत्य की पुनः स्थापना के लिए अपने जीवन के अन्तिम क्षण तक शोध साधना करने वाले—

महरौली निवासी

## स्वर्गीय मास्टर मया राम जी की पुण्य स्मृति में

'वेदचक्षु' का 'वराहमिहिर विशेषाङ्क'

सम्पूर्ण श्रद्धा के साथ समर्पित है।

—केदारनाथ प्रभाकर

# सूर्य वन्दना

卐

मूर्तित्वे परिकल्पितश्शशभृतो वर्त्माऽपुनर्जन्मना–
मात्मेत्यात्मविदां क्रतुश्च यजताम्भर्तामरज्योतिषाम् ।
लोकानां प्रलयोद्भवस्थितिविभुश्चानेकधा यः श्रुतौ
वाचं नः स ददात्वनेककिरणस्त्रैलोक्यदीपो रविः ॥

–बृहज्जातक

जो भगवान महादेव की अष्ट मूर्तियों में एक हैं, जिनके मार्ग द्वारा मोक्ष गामी जीव पितृ लोक को जाते हैं, जो यज्ञ कर्त्ताओं के अभीष्ट देवता हैं, जो समस्त ग्रहों के अधिपति हैं, जो समस्त लोकों का संहार, उत्पति एवं संरक्षण करते हैं, जिनकी वेदों में अनेक प्रकार से वन्दना की गयी है, जो तीनों लोकों में प्रकाश करने वाले एवं अनेक प्रकार की किरणों से युक्त हैं, ऐसे भगवान सूर्य नारायण हमें वाक्य-सिद्धि प्रदान करें ।

जयति जगतः प्रसूतिर्विश्वात्मा सहज भूषणम् नभसः ।
द्रुतकनकसदृशदशशतमयूखमालार्चितः सविता ॥

–बृहत्संहिता

जो सम्पूर्ण जगत के उत्पति स्थान हैं, जो सम्पूर्ण जगत के आत्मा रूप हैं और जो आकाश के स्वाभाविक आभूषण स्वरूप हैं, जिनके कंठ में गलाए हुए शुद्ध स्वर्ण के समान आभा वाली किरणों की सुन्दर माला शोभायमान है, ऐसे भगवान सूर्य नारायण की जय हो ।

यस्योदयास्तसमये सुरमुकुटनिघृष्टचरणकमलोऽपि ।
कुरुतेऽञ्जलिं त्रिनेत्रः स जयति धाम्ना निधिः सूर्यः ॥

–लघुजातक

देवताओं के मुकुट (मस्तक भूषण) से जिनके चरण कमल घिसे हैं; अर्थात जिनके चरण कमलों में देवता लोग अपने मस्तक को झुकाते हैं, ऐसे भगवान शङ्कर भी जिनके उदय और अस्त के समय में अञ्जलिबद्ध होकर प्रणाम करते हैं, ऐसे भगवान सूर्य नारायण की जय हो ।

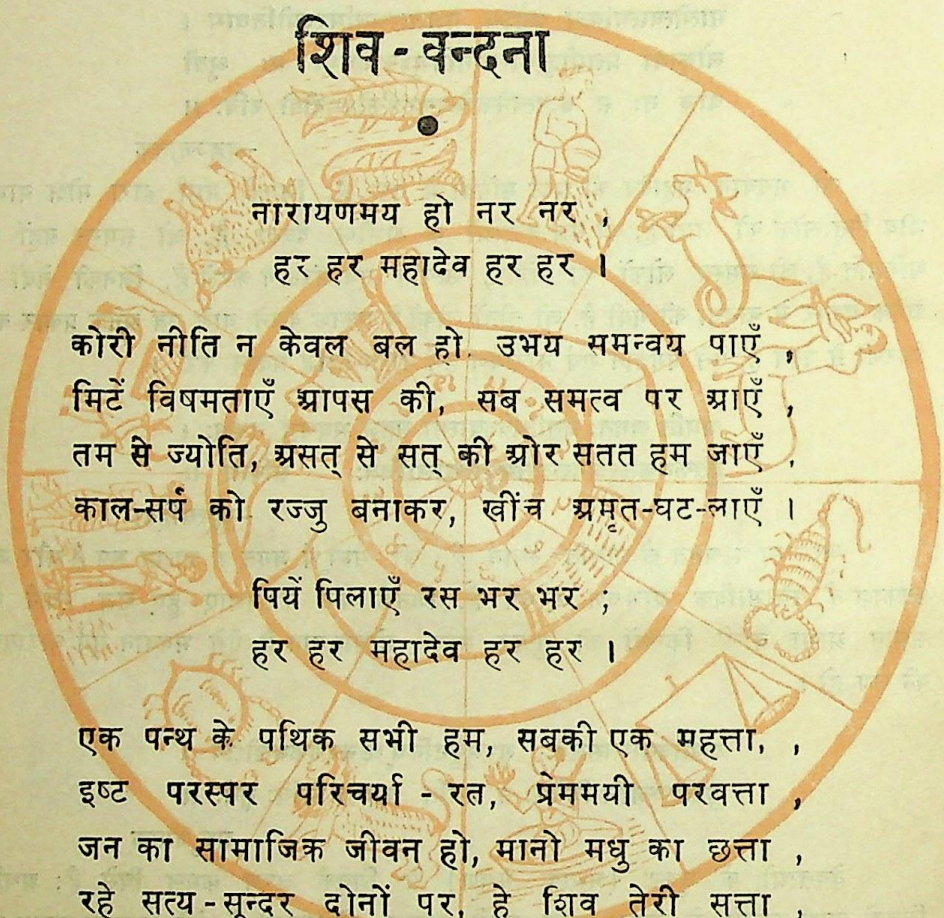
जयति जगदेकहेतुर्विश्वात्मा सर्वलोक दीपकरः ।
अनुदिनमुदयविनाशस्थिकर्त्ता भास्करो दिनाधीशः ॥

–होरासार

जो समस्त जगत के मूल कारण एवं विश्व की आत्मा हैं, जिनकी किरणों द्वारा समस्तलोकों में प्रकाश जाता है, जो नित्य ही संसार की उत्पति, संहार एवं पालन करने वाले हैं, ऐसे दिनपति भगवान सूर्य नारायण की जय हो ।

वेदचक्षु ★

# शिव-वन्दना



नारायणमय हो नर नर ,
हर हर महादेव हर हर ।

कोरी नीति न केवल बल हो, उभय समन्वय पाएँ ,
मिटें विषमताएँ आपस की, सब समत्व पर आएँ ,
तम से ज्योति, असत् से सत् की ओर सतत हम जाएँ ,
काल-सर्प को रज्जु बनाकर, खींच अमृत-घट-लाएँ ।

पियें पिलाएँ रस भर भर ;
हर हर महादेव हर हर ।

एक पन्थ के पथिक सभी हम, सबकी एक महत्ता, ,
इष्ट परस्पर परिचर्या - रत, प्रेममयी परवत्ता ,
जन का सामाजिक जीवन हो, मानो मधु का छत्ता ,
रहे सत्य-सुन्दर दोनों पर, हे शिव तेरी सत्ता ,

बहे सुगति-गङ्गा झर झर ;
हर हर महादेव हर हर ।

# विक्रम-वन्दना

•

कुंकुम भाल तिलक रवि देकर जो आया वरदान विश्व का,
चल नक्षत्रों की जग-मग में जग-मग करता ज्ञान विश्व का,
जिसने नव-जीवन के द्वारा किया दीर्घ कल्याण विश्व का,
उसको सतत प्रणाम हमारा, ज्योतिष्मान विधान विश्व का।

जिसने काल-भाल पर अपनी स्मृति का अंकित विन्दु किया,
जिसने यशोधार से लघुतर निर्झरिणी को सिन्धु किया,
जिसने उठते हुए हिमालय से अपने यश को देखा,
है अक्षुण्ण आज जिस विक्रम की यह संवत्सर-रेखा।

जो विक्रम सूर्योदय के संग शक-याना का कोष पिए,
गूंज उठा सब भूत, भविष्यत्, वर्तमान जय-घोष लिए,
जो भारत के प्राण-प्राण में, रोम-रोम बन विजय बहा,
अतल, वितल, पाताल, धरा ने जिसका जय सन्देश कहा।

एक लहर से अपर लहर ने जिसके विजय गीत गाए,
सात समुद्रों पर जिसके स्वर गूंज उठे छाए-छाए,
एक वृक्ष से अपर वृक्ष पर जिसका यश झुक झूम उठा
अंतरीप से काश्मीर तक मलय-पवन भी चूम उठा।

वह भारत का एकछत्र विक्रमादित्य सम्राट अमर,
वह भारत का एकछत्र साहित्य हिमालय-तुंग-शिखर,
वह भारत का एकछत्र मन्दार-सरस अभिमत-दाता,
वह भारत का एकछत्र शृंगार-भारती निर्माता।

महामहिम विक्रमादित्य को कवि का शत-शत बार प्रणाम।
शक विजयी युग निर्माता को इस युग का शत बार प्रणाम॥

आचार्य वराह मिहिर का

# काल ज्ञान मन्त्र

ज्योतिष शास्त्र को ही 'काल ज्ञान' कहा गया है क्योंकि इस शास्त्र के द्वारा हमें काल (समय) का ज्ञान होता है। वेदों में मी 'काल ज्ञान' की चर्चा और 'काल' की वन्दना का स्पष्ट उल्लेख मिलता है :–

**पंचसंवत्सरमयं युगाध्यक्षं प्रजापतिम् ।**
**दिनर्त्वयनमासाङ्गं प्रणम्य शिरसा शुचिः ।।**
**प्रणम्य शिरशा कालमभिवाद्य सरस्वतीम् ।**
**काल ज्ञानं प्रवक्ष्यामि लगधस्य महात्मनः ।।** –ऋग्वेद ज्योतिष

आचार्य वराहमिहिर ने 'काल ज्ञान' में पारंगत होने के लिए 'काल ज्ञान मंत्र' की रचना की थी जिसके नित्य पाठ से काल भगवान की कृपा से ज्योतिष शास्त्र में प्रवीणता प्राप्त हो जाती है। 'काल ज्ञान' के इस दुर्लभ मंत्र की प्राप्ति सर्व प्रथम सन् १९३३ ई० में भारत के प्रसिद्ध ज्योतिर्विज्ञानवेत्ता एवं सामुद्रिक शास्त्री **श्री पंडित लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी** नरसिंह गढ़ (म० प्र०) को दैवयोग से ट्रेन द्वारा कलकत्ता की यात्रा करते समय एक विद्वान सामुद्रिक शास्त्रवेत्ता से हुई थी। उस विद्वान के पास एक अति प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थ में यह मंत्र था जिससे वह स्वयं भी काल भगवान की पूजा किया करते थे। वह परम दुर्लभ 'काल ज्ञान मंत्र' यहां पर श्री पण्डित लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी कृत "सामुद्रिक दीपिका" ग्रन्थ से साभार नीचे उद्धृत है:– –सम्पादक

ॐ नमो भगवते ब्रह्मानन्द पदः गोलोकादि असंख्य ब्रह्मांडभुवननाथाय, शशांक शंख गोक्षीर कर्पूर धवल गात्राय, नीलांभोधि जलद्पटलाधिव्यक्तस्वरूपाय, व्याधिकर्मनिर्मूलोच्छेदन-कराय, जाति जराय मरण, विनाशनाय, संसार कांतारोन्मूलनाय, अचिंत्यबलपराक्रमाय, अति प्रतिमाहच्काय, त्रैलोक्याधीश्वराय शब्दै के त्रैलोक्याधिनखिलभुवनकारकाय, सर्वसत्व हिताय, निजभक्ताय अभीष्टफलप्रदाय, भक्त्याधीनाय सुरासुरेन्द्रादि मुकुटकोटिघृष्टवादपीठाय, अनन्त युग नाथाय, देवाधिदेवाय, धर्मचक्राधीश्वराय, सर्व विद्या परमेश्वराय, कुविद्याविघ्नप्रदाय तत्पाद पङ्कजाश्रयानि यवनी देवी सासन देवतो, त्रिभुवनं संक्षोभनी, त्रैलोक्य शिवापहार-कारिणीं श्री हुतभुक जातवेदा श्रीमहालक्ष्मीदेवी अमुकस्य स्थावर जंगम कृतिम विषमुख संहारिणीं, सर्वाभिचारकर्मापहारिणी', परमंविद्योछेदनीं पर मंत्रप्रनाशिनीं, अष्टमहानाग कुलोच्चाटनीं, कालदंष्टमृतकोत्यापिनीं अमुकस्य सर्वरोग प्रमोचनीं, ब्रह्मा विष्णु रुद्रेंद्र चन्द्रा-दित्यादिग्रह, नक्षत्रोत्पात मरण भय पीड़ा मर्दिनी त्रैलोक्य मोहिते विश्वलोक वशंकरि, भुविलोक हितंकरी महाभैरवि भैरव शस्त्रोपधारिणीं रौद्रे, रौद्ररूप धारी प्रसिद्धे, सिद्ध विद्याधर यक्ष राक्षस गरुड़ गंधर्व किन्नर किं पुरुषो दैत्योरगेन्द्र पूजिते, ज्वाला पात कराल दिगंतराले, महावृषभ वाहिनीं, खेटक, कपाल, त्रिशूल, शक्ति, चक्रपाश, शरासन शिव विराजमान षोडशार्द्ध भुजे एहि २ लं ज्वाला मालिनीं ह्रीं ह्रीं व्रुं ह्रां ह्रीं ह्रं ह्रौं ह्रः देवान् आकर्षय २ नाग ग्रहान् आकर्षय २ यक्ष ग्रहान् आकर्षय २ गंधर्व ग्रहान् आकर्षय २ ब्रह्मग्रहान् आकर्षय २ राक्षस ग्रहान् आकर्षय २ भूत ग्रहान् आकर्षय २ दिव्ततर ग्रहान् आकर्षय २ चतुराशि

जैन्य मार्ग ग्रहान् आकर्षय २ चतुर्विंशति जिन ग्रहान् आकर्षय २ सर्व जटिल ग्रहान् आकर्षय २ अखिल मुँडित ग्रहान् आकर्षय २ जंगम ग्रहान् आकर्षय २ सर्व दुर्गेशादि विद्यग्रहान् आकर्षय २ सर्वनगनिग्रह-वासी ग्रहान् आकर्षय २ सर्वजलाशय वासी ग्रहान् आकर्षय २ सर्व स्थल वासी ग्रहान् आकर्षय २ सर्वान्तरिक्ष ग्रहान् आकर्षय २ सर्व श्मशान वासी ग्रहान् आकर्षय २ सर्व पवनी वासी ग्रहान् आकर्षय २ सर्वधर्मशाला, गोशाल ग्रहान् आकर्षय २ सर्व गिरिगुहा दुर्गवासी ग्रहान् आकर्षय २ श्रापित ग्रहान् आकर्षय २ सर्वदुष्टग्रहान् आकर्षय २ सर्व नाथपंथि ग्रहान् आकर्षय २ सर्व भूवासी प्रेत ग्रहान् आकर्षय २ स्वकुले आप्तद्गत ग्रहान् आकर्षय वक्र पिंडः ग्रहान् आकर्षय २ कट २ कंपय २ शीर्ष चालय २ गात्रं चालय २ बाहुं चालय २ पादं चालय २ कर पल्लवान् चालय २ सर्वाङ्गचालय २ लोलय २ धुन २ कंपय २ शीघ्रं भव तारय २ ग्रहि २ ग्राह्य २ अक्षय २ आवेशय २ ज्वलूं ज्वालामालिनीं ह्रां क्कीं व्लूं द्रां द्रां ज्वल २ र र र र र र र प्रज्वल २ धग २ धूमाक्ष करणीं, ज्वल २ विशोषय २ देव ग्रहान् दह २ नाग ग्रहान् दह २ यक्ष ग्रहान् दह २ गंधर्व ग्रहान् दह २ ब्रह्म ग्रहान् दह २ भूत ग्रहान् दह २ दिव्यतर ग्रहान् दह २ चतुराशि जैन्य मार्ग ग्रहान् दह २ चतुर्विंश जिन ग्रहान् दह २ सर्व जटिल ग्रहान् दह २ अचिल मुँडित ग्रहान् दह २ जंगम ग्रहान् दह २ सर्व दुर्गेशादि विद्या ग्रहान् दह २ सर्व नागनिग्रह वासी ग्रहान् दह २ सर्व स्थलवासी ग्रहान् दह २ सर्वांतरिक्षवासी ग्रहान् दह २ श्मशान वासी ग्रहान दह २ सर्व पवनी हार्थ ग्रहान् दह २ सर्व धर्मशालादि गोशालवासी ग्रहान् दह २ सर्वगिरि गुहा दुर्ग वासी ग्रहान् दह २ श्राप्पित ग्रहान् दह २ सर्वनाथ पंथि ग्रहान् दह २ सर्व भूवासी प्रेत ग्रहान् दह २ अमुक गृहे असद्गति ग्रहान् दह २ वक्रपिंड ग्रहान् दह २ सर्व दुष्ट ग्रहान् दह २ शतकोटि योजने दोषदायी ग्रहान् दह २ सहस्र कोटि योजनात् दोषदायि ग्रहान् दह २ शतकोटि दोष दह २ सहस्रकोटि दोष दह २ आसमुद्रांत् पृथ्वीमध्येदेवभूतपिशाचादि अमुकस्यो परिकृत दोषान् तस्य दोषान् दह २ शत्रुकृताभिचार दोषान् दह २ घें २ स्फोटय २ मारय २ घगि २ तनुमुखे ज्वालामालिनीं ह्रां ह्रीं ह्रुं ह्रैं ह्रौं ह्रः—सर्व ग्रहान् हृदये दह २ पच २ छिंधि २ भिंदि २ दह २ हा २ स्फुट घे २। क्ष्म्लुं क्षां क्षीं क्षुं क्षैं क्षौं क्षः स्तंभ २ भ्मलुं भ्रां भ्रीं भ्रुं भ्रैं भ्रौं भ्रः ताडय २ । म्मलुं म्रां म्रीं म्रुं म्रैं म्रौं म्रः नेत्रं स्फोटय २ दर्शय २। य्मलुं य्रां य्रीं य्रुं य्रै य्रौं य्रः प्रेषय २। घ्मर्लूं घ्रां घ्रुं घ्रौं घ्रः जठरं भेदय २। ग्मलुं ग्रां ग्रीं ग्रुं ग्रैं ग्रौं ग्रः मुखं बंधय २ । ख्ब्रुं ख्रां ख्रीं ख्रुं ख्रैं ख्रौं ख्रः ग्रीवां भंजय २। छप्लुं छ्रां छ्रीं छ्रुं छ्रैं छ्रौं छ्रः अंत्रान् भेदय २। ढम्प्रुं ढ्रां ढ्रीं ढ्रुं ढ्रैं ढ्रौं ढ्रः महाविद्युत्पाषाणस्त्रै हन २। व्मप्रुं व्रां व्रीं व्रुं व्रैं व्रौं व्रः समुद्रे मंजय २ । द्म्प्रुं द्रां द्रीं द्रुं द्रैं द्रौं द्रः सर्व डाकिनीं सुन्दरीं मर्द्दय २ सर्व योगिनी स्वर्ज्जय २ सर्व शत्रुं ग्रासय २ ख ख ख ख ख ख खादय २ सर्व दैत्यान् विध्वंसय २ सर्व मृत्युं नाशय २ सर्वोपद्रवान स्तंभय २ जः जः जः जः जः जः ज्वरान् दह २ पच २ घुमु २ घुरु २ खरु २ खड्ग रावण सुविद्यायां घातय २ अखिल रुजात् दोषो दयान् कृत कर्मणाभिचारौत्थान् अमुकस्य देहे स्थितान् आयुतारुजं कारकान् चन्द्रहास शस्त्रेण छेदय २ भेदय २ उरु २ छरु २ स्फुट २ घे आं क्रौं क्षीं क्षं क्षैं क्षौं क्षः ज्वाला मालिनीं अमुकस्य सौख्यं कुरु २ निरूजं कुरू २ अभिलाषित कामना देहि २ ज्वाला मालिनी विज्ञापयते स्वाहा ॥ अस्य मंत्र सिद्धित्वात दैवज्ञं भवति ।

इति श्री अखिल भूमंडलोपरिविवुध गणकचक्र चूड़ामणि श्री वराहमिहिर विरचितायां काल ज्ञान मंत्र संपूर्णः ।

# विक्रमादित्य और उनके नवरत्न

●

**विक्रमादित्यः—**

"विक्रम कालीन उन्नति' में श्री राम निवास शर्मा ने विक्रमादित्य के गुणों का वर्णन करते हुए लिखा है: "भारत वर्ष में एक समय था जब उज्जयिनी में आज से दो सहस्त्र वर्ष पहले परम भट्टारक महाराजा विक्रमादित्य शाशन कर रहे थे। भारत वर्ष के सांस्कृतिक विकास, शौर्य और वैभव के वह प्रतीक थे। वे अपने औदार्य, विद्वता, साहित्य सेवा, अलौकिक



प्रतिभा एवं दिग्विजय के कारण सर्व श्रुत थे। वे प्रत्येक बात में इतने अद्वितीय थे कि उनकी उपमा संभवतः किसी से भी नहीं दी जा सकती। उनकी शालीनता, मनुष्यता, वाग्मिता, बुद्धिमत्ता विविध एवं विभिन्न अन्नत विचित्राओं के गीत आज भी घर-घर सुनने को मिलते हैं। सारांश यह है कि वे माधुर्य और ऐश्वर्य दोनों ही प्रकार की गुण राशि के अप्रतिम उदाहरण थे।" विक्रमादित्य का नाम भारतीय इतिहास में ज्ञान तथा साहित्य के महान संरक्षणकर्ता एवं पोषक के रुप में अंकित है। उन्होंने वेदोक्त ६४ विद्याओं के ज्ञातव्य विद्वानों को अपने राज-दरबार में सम्मानित किया था ऐसा हमें अनेक लिखित अथवा मौखिक अनुश्रुतियों के द्वारा पता चलता है। राष्ट्र कवि श्री मैथिली शरण गुप्त ने विक्रमादित्य और उनके नवरत्नों का 'भारत-भारती' में बड़ा ही गौरव पूर्ण वर्णन किया है:-

**नर-रुप-रत्नों से सजी थी,**
**वीर विक्रम की सभा,**
**अब भी जगत में जागती है**
**जगमगी जिनकी प्रभा।**
**जाकर सुनो, उज्जैन मानो**
**आज भी यह कह रही-**
**'मैं मिट गई पर कीर्ति मेरी**
**तब मिटेगी जब मही' ॥**

"ज्योतिर्विदाभरण" नामक ग्रन्थ में सुरक्षित अनुश्रुति के अनुसार विक्रमादित्य की राज्य सभा भिन्न-भिन्न विषयों के नौ सुप्रसिद्ध लेखकों, कवियों तथा अन्य विद्वानों से सुशोभित थी जिन्हें "नवरत्न" कहा जाता था। उक्त ग्रन्थ का वह श्लोक जिसमें नवरत्नों का उल्लेख किया गया है निम्न है:

**धन्वन्तरिक्षपणकामरसिंह**
**शंकुवेतालभट्टघटखर्परकालिदासाः।**

**ख्यातोवराहमिहिरो नृपतेः**
**सभायां रत्नानिवैवरुचिर्नवविक्रमस्य ॥**

अर्थात् विक्रमादित्य की राज्य सभा में धन्वन्तरि, क्षपणक, अमरसिंह, शंकु, वेताल-भट्ट, घटखर्पर, कालिदास, प्रसिद्ध वराह मिहिर एवं वररुचि, नवरत्नों के रुप में विराजते थे।

"ज्योतिर्विदाभरण" के रचियता महाकवि कालिदास थे और उन्होंने ग्रन्थ की रचना का समय भी उपरोक्त ग्रन्थ के निम्न श्लोक में दिया हैं:--

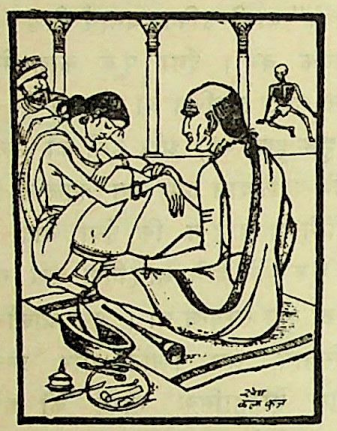
**वर्षैः सिन्धुरदर्शनांबरगुणैः**
**याते कलौ सम्मिते।**
**मासे माधवसंज्ञिते च**
**विहितोग्रंथक्रियोपक्रमः ॥**

अर्थात् कलियुग के ३०६८ वर्ष व्यतीत होने पर माधव ( वैशाख ) मास में मैंने (कालिदास) यह ग्रन्थ रचा। कलियुग का आरम्भ ईसा से ३१०२ वर्ष पूर्व माना गया है। इस प्रकार से कालिदास ने इस ग्रन्थ की रचना ईसा से ३४ वर्ष पूर्व की थी। विक्रमादित्य ने भी ५६-५७ वर्ष ईसा पूर्व में शकों को परास्त कर "शकारि" की उपाधि धारण की थी और इसी खुशी में "कृतसंवत" ( आधुनिक विक्रम संवत ) को प्रारम्भ किया गया था।

विदेशियों तथा कुछ एक भारतीय विद्वानों ने उक्त ग्रन्थ की प्रमाणिकता पर ही सन्देह प्रकट करके इसे जाली घोषित कर दिया है। इनके मतानुसार यह ग्रन्थ ईसा के बहुत बाद की रचना है और इसके लेखक ई० पू० में होने वाले महाकवि कालिदास न होकर ईसा पश्चात ग्यारहवीं शती में होने वाले कोई और कालिदास हैं। इन आलोचकों का यह कथन है कि ग्रन्थ में शक संवत का उल्लेख एवं वराहमिहिर का ईसा पूर्व काल में होना आदि-आदि बातें इसकी सत्यता पर शंका पैदा करती हैं। वास्तव में यह भ्रम जाल अंग्रेज ने भारतीय इतिहास के घटना क्रम को ईसा के बहुत बाद में सिद्ध करने का शुरू से ही फैला रखा है। हमारे भारतीय भूले-भटके विद्वान भी उनके रङ्ग में ही रङ्ग गये और "इस घर को आग लग गयी इस घर के चिराग से" वाली उक्ति यथार्थ सिद्ध करने में सहायक बने। ईसा पूर्व काल में भी एक शक संवत प्रचलित था (५५० ई० पू० में जो शुरू हुआ था) और इसी का उल्लेख महाकवि कालिदास तथा उस काल के अन्य विद्वानों ने किया है न कि ईसा बाद ७८ वर्ष में शुरू होने वाले आधुनिक शक संवत से उनका कुछ सम्बन्ध था। इन आलोचकों को सिवाय भ्रम फैलाने और प्राचीन भारतीय ऐतिहासिक गौरव को अपनी आलोचनाओं से दूषित करने के और कुछ काम नहीं हैं। शायद इसलिए श्री बृज किशोर चतुर्वेदी को यह शब्द लिखने पड़ें--"ज्योतिर्विदाभरण" में बताए गए नवरत्नों की कथा 'कपोल-कल्पना' है यह मान लेना ठीक नहीं है। यदि प्रसिद्ध विद्वानों के नामों को एकत्र करके नौ विद्वानों की सभा की कल्पना ही समीचीन थी तो "ज्योतिर्विदाभरण" का रचनाकार अन्य विद्वान् पाणिनि, पातञ्जली, भास और अश्वघोष का भी नाम ले सकता था। परन्तु वे नाम न लेकर साधारण व्यक्ति घटखर्पर, शंकु, क्षपणक, वेताल भट्ट के नाम नवरत्नों में गिनाये गये हैं, जो अगर कल्पना ही है, तो अवश्य एक निम्न कल्पना का परिचय दिया है। वास्तव में प्रतीत यह होता है कि ग्रन्थाकार ने कल्पना से काम न लेकर वस्तुस्थिति का सही वर्णन किया है।"

**धन्वन्तरिः**--एक विद्वान के अनुसार धन्वन्तरि व्यक्ति वचाक नाम न होकर एक विरुद्ध है जो उस समय के सर्व श्रेष्ठ वैद्य को प्रदान किया जाता था। अतः

धन्वन्तरि ईसा पूर्व प्रथम शति में होने वाले एक प्रख्यात वैद्य थे और इसी कारण विक्रमादित्य ने उन्हें अपनी नवरत्नों की परिषद में सादर रखा हुआ था। नेपाल के राज गुरु श्री हेम राज शर्मा तथा श्री वी० एस० आपटे ने "काश्यप संहिता" के विस्तृत उपो-



द्घात में विक्रमादित्य के नवरत्न धन्वन्तरि को वैद्य न मानकर कवि माना है:—

**"नवरत्नेषु गणितो धन्वन्तरि कवि**
**नास्य वैद्याचार्यत्वं कुतोत्यायति।"**

अर्थात नवरत्नों में गिना गया धन्वन्तरि कवि है, इसका वैद्याचार्य होना कहीं से भी प्राप्त नहीं होता। सम्भवतः धन्वन्तरि कवि ही हों; किन्तु कवि होने के साथ वह वैद्य भी हो सकते हैं।

हमारे यहां वैदिक काल में भी एक धन्वन्तरि हो चुके है जिनका वर्णन अनेक पुराणों में मिलता है। विक्रम कालीन धन्वन्तरि को "विद्याप्रकाश चिकित्सा" एवं 'वैद्यक भास्करोदय" और "धन्वन्तरि निघंटु," "रोगनिधान" एवं "चिकित्सा सार संग्रह" आदि ग्रन्थों का रचियता माना जाता है न कि वेद कालीन धन्वन्तरि एवं दिवोदास धन्वन्तरि ने इन ग्रन्थों की रचना की थी। विद्वानों एवं भाषा शास्त्रियों ने इन ग्रन्थों की रचना शैली एवं देश काल के आधार पर ही ऐसा निर्णय दिया है जो उचित भी हैं। "विद्या प्रकाश चिकित्सा" में धन्वन्तरि ने सूर्य वन्दना की है :

**यस्योदयास्तसमये सुरमुकुट-**
**निघृष्ठचरणकमलोऽपि।**
**कुरुतेऽञ्जलिं त्रिनेत्रः स जयति-**
**धाम्नां निधिः सूर्यः॥**

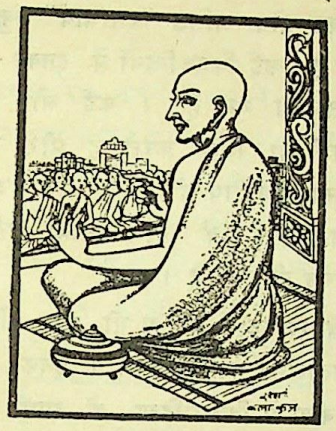
मालव मुद्राओं पर सूर्य की छाप होना, विक्रमादित्य के नाम में सूर्य का समावेश रहना, "वैद्यक भास्करोदय" धन्वन्तरि कृत ग्रन्थ का नाम भास्कर (सूर्य) अर्थात विक्रमादित्य के लगभग समानार्थी होने से यह सिद्ध होता है कि धन्वन्तरि अवश्य विक्रम कालीन हैं और उन्होंने अपने आश्रयदाता विक्रमादित्य के नाम पर ही एक वैद्यक ग्रन्थ की रचना भी की होगी और इसी कारण "ज्योतिर्विदाभरण" के रचियता ने उनका नाम नवरत्नों की नामावली मे सबमे पहिले ही रखा है। उल्लेखनीय है कि धन्वन्तरि के समकालीन महान ज्योतिषाचार्य वराह मिहिर ने अपनी सभी रचनाओं के प्रारम्भ में सूर्य वन्दना की है और "विद्या प्रकाश चिकित्सा" का उपरोक्त सूर्य वन्दना वाला श्लोक आचार्य वराह मिहिर कृत "लघु-जातक" के प्रारम्भ में भी हमें मिलता है। इससे सिद्ध होता है कि यह श्लोक चाहे धन्वन्तरि कृत हो या वराहमिहिर द्वारा रचित है, इसका सम्बन्ध विक्रम काल से अवश्य है।

**क्षपणकः**-जिस प्रकार से वैरागी, उदासीन, परमहंस एवं डंडी आदि हमारे यहां साधुओं के भिन्न-भिन्न नाम हैं, इसी प्रकार से प्राचीन भारत में जैन साधुओं को क्षपणक कहा जाता था।

अतः क्षपणक नाम भी व्यक्तिवाचक न होकर जातिवाचक ही है। इस बात का प्रमाण हमें "मुद्राराक्षस" एवं "शंकर

दिग्विजय" में मिलता है। "मुद्रा-राक्षस" में क्षपणक के भेष में जासूस का रहना बताया गया है और "शंकर दिग्विजय" में आदि-जगद्गुरु शंकराचार्य का शास्त्रार्थ किसी क्षपणक से होने का उल्लेख है।

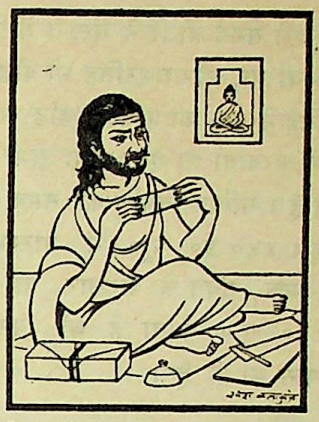
विक्रमादित्य के काल मे केवल सिद्ध सेन दिवाकर का अस्तित्व ही जैन



पंडितो में माना जाता है। जैन आगम ग्रन्थों का संस्कृत भाषा में लिखा जाना भी सिद्ध सेन के कारण हुआ ही माना जाता है। जैन साहित्य में इन्हीं सिद्ध सेन का विक्रमादित्य के ऊपर प्रभाव भी बताया गया है। इन कारणों से हम सिद्ध सेन दिवाकर को ही क्षपणक कह सकते हैं।

"ज्योतिर्विदाभरण" के एक अन्य श्लोक में विक्रम कालीन वैज्ञानिकों के नाम भी बताये गये हैं जिनमें वराहमिहिर सत्यश्रुतसेन, बादारायण, मणित्थ एवं कुमार सिंह के नाम आते हैं। टिकाकारों के मतानुसार सिद्ध सेन दिवाकर का दूसरा नाम ही श्रुतसेन बताया गया है। सिद्धसेन ज्योतिष और तंत्र के भी पारङ्गत थे अतः सम्भव है वह इन्हीं गुणों से विक्रमादित्य द्वारा नवरत्नों में ले लिए गये हों।

**अमर सिंहः**—सबसे पहला संस्कृत कोष जो प्राप्त है वह अमरसिंह का "नाम लिङ्गानुशासन" है जो अब "अमरकोष" के



नाम से विख्यात है। बंद्यघाटीय सर्वानन्द ने ११५९ ई० में और राय मुकुट ने १४३१ ई० में "अमर कोष" पर टीका लिखी है जिनसे पता चलता है कि सन्त मेधावी १६ आचार्य इन टिकाओं से पहले टीका लिख चुके थे। संस्कृत कोष-ग्रन्थों में इतनी अधिक टीकाएं आज तक किसी कोष पर नहीं लिखी गयीं हैं।

अमर सिंह की शिक्षा राजशेखर की "काव्य मीमांसा" के अनुसार खज्जयिनी (विशाला) में हुई थी और फिर इन्होंने "काव्यकार" की परीक्षा भी उत्तीर्ण की थी। यह बौद्ध धर्म के अनुयायी थे ऐसा "अमर कोष" के मंगलाचरण में दी गई बुद्ध देव की प्रार्थना एवं कोष में प्रयोग किये गये बौद्ध (महायान सम्प्रदाय) शब्दों की अधिकता से मालूम होती है। कोष में कालिदास का नाम भी आया है। अमर सिंह के विषय में प्रसिद्ध विद्वान श्री जय चन्द्र विद्यालंकार का भी यही मत है कि "सुप्रसिद्ध अमर कोष के देव प्रकरण में सबसे पहले बुद्ध के नाम हैं, फिर ब्रह्मा और विष्णु के। विष्णु के जो ३९ नाम हैं, उनमें राम का नाम नहीं है, कृष्ण के बहुत से हैं। इसलिये उसके समय तक रामावतार की कल्पना न हुई थी। इसलिये अमर कोष के कर्त्ता अमरसिंह का समय सम्भवतः पहली शताब्दी ई० पू० है।

प्रायः उसी समय बौद्धों ने संस्कृत में लिखना शुरू किया था, और अमरसिंह भी बौद्ध थे।" अमरसिंह ने गया का प्रसिद्ध "बौद्ध मन्दिर" निर्माण करवाया था ऐसा प्रायः सभी लोग मानते है। मन्दिर निर्माण का समय ४२२ शक है। ५५० ई० पू० में प्रारम्भ होने वाले शक संवत के अनुसार यह काल १२८ ई० पू० बैठता है जो विक्रम के आस-पास का ही है।

**शंकुः**—इस नवरत्न के विषय में बहुत कम जानकारी मिलती है। "ज्योतिर्विदभारण" के एक अन्य श्लोक में भी इनका नाम आता है:—

**शंकुः सुवाग्वररुचिर्मणिरंगुदत्तो,**
**जिस्णु स्त्रिलोचनहरिघटकर्पराख्यः।**
**अन्येऽपि सन्ति कवयोअमरसिंह**
**पूर्वा यस्यैव विक्रमनृपस्य सभासदोऽमी॥**

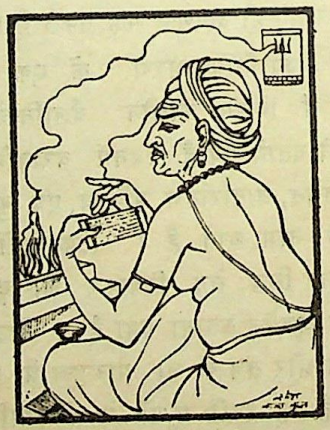
अर्थात् विक्रम की सभा में नौ सभासद थे—



शंकु, वररूचि, मणि, अंगदत्त, जिष्णु, त्रिलोचन, हरि, घटखर्पर और अमरसिंह। इससे यह तो सिद्ध होता है कि शंकु विक्रम-काल के एक प्रसिद्ध विद्वान अवश्य थे।

एक अन्य अनुश्रुति के अनुसार शबर स्वामी ने ४ वर्णों की स्त्रियों से विवाह किया था। ब्राह्मण स्त्री से वराहमिहिर ने जन्म लिया था। क्षत्रिय से भर्तृहरि और विक्रमादित्य जन्मे थे। वैश्य स्त्री से हरिश्चन्द्र और शंकु ने जन्म लिया और अमरसिंह शूद्र स्त्री से जन्मे थे। इससे यह भी सिद्ध होता है कि "सावर भाष्य" के कर्त्ता शबर स्वामी ने चार वर्णों के शिष्यों को विद्या प्रदान की थी। उनमें शंकु एक वैश्य थे और विक्रम के गुरूभाई रहे होंगे। कई विद्वान इनको "मन्त्रवादिन" और कई लोग प्रसिद्ध "रसाचार्य" शंकु भी बताते है। कई किंवदन्तियों में इनको स्त्रि भी बतलाया गया है। कई लोग इन्हें ज्योतिषी भी सिद्ध करते है और उनके मतानुसार ज्योतिष के प्रसिद्ध यंत्र "शंकु" का नाम इन्हीं के नाम अथवा आकृति के कारण ही पड़ा है।

**वेतालभट्टः**—शंकु से भी कम परिचय हमें वेतालभट्ट का मिलता है। इनका नाम लोक कथा में विक्रमादित्य के साथ बहुत आता है। अनुश्रुति में (अग्नि) वेताल और विक्रम का साथ बहुत प्रसिद्ध है। उज्जैन का अग्निवेताल का स्थान आज भी इस अग्नि-वेताल का साक्षी है। परन्तु भट्ट शब्द से यह सिद्ध होता है कि यह बहुत बड़े पण्डित या विद्वान रहे होंगे। सम्भवतः "वेतालपंच



विंशतिका" सरीखे ग्रन्थों के यह स्वयं ही रचयिता हों। उज्जयिनी के महाकाल श्मशान से इनका सम्बन्ध बताया जाता है। बहुत ही सम्भव है कि साहित्यिक होते हुए भी भूत-प्रेत, पिशाच आदि की साधना में

यह पारङ्गत रहे हों। यह भी हो सकता है कि आग्नेय अस्त्र एवं विद्युत शक्ति आदि में यह पारङ्गत रहे हों और विक्रमादित्य के राज्य में कापालिक या तांत्रिकों के यह प्रतिनिधि रहे हों और इनकी इन साधन शक्तियों से राज्य को लाभ पहुंचता रहा हो और इसी कारण इन्हें नवरत्नों की सभा में चुन लिया गया हो।

**घटखर्परः**—इनकें विषय में भी बहुत कम जानकारी अब तक प्राप्त हो सकी है। अलग-अलग विद्वानों ने तरह-तरह कें अनुमान लगाये हैं। कुछ विद्वान इन्हें कुम्हार जाति से सम्बन्धित मानते हैं क्योंकि आज भी कुम्हारों में एक जाति "खापड़ें" है और शायद उस समय की "घटखर्पर" जाति ही



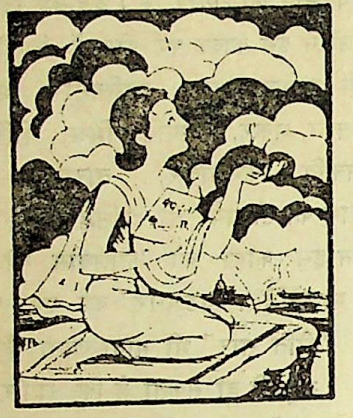
आज की "खापड़ें" जाति बन गयी हो। वास्तव में इनका नाम घटखर्पर तथा घटकर्पर दोनों ही पाए जाते हैं और केवल "ज्योतिर्विदाभारण" में ही इनका उल्लेख मिलता है। जो भी हो हरिषेण की प्रशस्ति में खरपारिक जाति अवश्य दिखाई देती है।

संभवतः इन्होंने बहुत से ग्रन्थ लिखे हों किन्तु "घटखर्पर काव्य" को इनकी रचना अवश्य माना जाता है जिसमें केवल २२ श्लोक ही हैं और इसका विषय भी कालिदास के 'मेघदूत' से मिलता जुलता है। इस काव्य में यमकालंकारों की भरमार है और इसकें रचियता का यहां तक दावा है कि अनुप्रास, यमक एवं शाब्दिक चमत्कार की प्रतियोगिता में दूसरा कोई कवि उसकें सामने नहीं ठहर सकता। यदि कोई उसकें मुकाबले का ऐसा कवि हो तो फूटे घड़ें में पानी (**तस्मै वहेयमुदकं घट-कर्परेण**) उसकें यहां पहुंचाने को तैयार हूं। बड़े-बड़े दिग्गज विद्वानों ने इस काव्य पर टीकायें लिखी हैं जिनमें अभिनवगुप्त, शान्तिसूरि, भरतमाल्लिका, शंकर, रामपति मिश्र, गोविन्द, कुशलकवि, कमलाकर, ताराचन्द एवं वैद्यनाथ की टीकायें तो प्रसिद्ध हैं। कई विद्वान इस काव्य को कालिदास की ही कृति मानते हैं। घटखर्पर का एक अन्य ग्रन्थ "नीति सार" भी माना जाता है।

यह भी हो सकता है कि खर्पर का अर्थ जस्ता होता है और घटखर्पर विक्रम के वैज्ञानिक रहें हों जो इस धातु के प्रयोग में दक्ष थे। उस काल में शैव और बौद्ध तंत्रों का सम्मिलन हो रहा था और देश के लिए नवीन अविष्कार किये जा रहे थे। पारद को भगवान शिव द्वारा उत्पन्न मान कर इसके द्वारा अनेक तांत्रिक क्रियाएं की जाने लगी थीं। पारद और जस्त का उन दिनों बोलबाला था। अतः शायद इन्होंने जस्त का उस समय नवीन अविष्कार ही किया हो और उनका नाम खर्पर पड़ गया हो। कुछ भी हो घटखर्पर अवश्य एक मेधावी पुरुष थे और विक्रमादित्य के नवरत्नों की सभा के सदस्य थे।

**कालिदासः**—महाकवि कालिदास का नाम तो विक्रमादित्य की भांति ही संसार में प्रसिद्ध है। कवि-कुल गुरु कालिदास के विषय में भी अनेक मत मतान्तर प्रचलित हैं। कुछ विद्वान इन्हें चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य का समकालीन मानते हैं और कुछ राजा भोज का इन्हें राज कवि कहते हैं। विक्रमादित्य के नवरत्नों में कालिदास नाम के प्रसिद्ध कवि मौजूद थे ऐसा मानने में विदेशियों को

इसलिए आपत्ति है क्योंकि ईसा पूर्व भारत में ऐसा प्रकाण्ड कवि होने से उनके सभी कुचक्र विफल हो जाते हैं। डा० देव सहाय त्रिवेद ने आठ कालिदास माने हैं और उनका काल भी भिन्न-भिन्न ही बताया है।



कुछ लोग कहते हैं कि कालिदास का वास्तविक नाम कुछ और था और यह नाम तो उनका तब प्रसिद्ध हुआ जब वह अपनी पत्नी द्वारा किसी भवन की छत से नीचे गिराये गये थे। इस लोक कथा के अनुसार कालिदास अनपढ एवं गंवार थे और जंगल में पशु चराया करते थे। किसी राजा की कन्या (संभवतः उसका नाम विद्या था) बड़ी विदूष्णी थी एवं उससे सभी विद्वान एवं पण्डित लोग बहुत ईर्ष्या किया करते थे। राजकुमारी विद्या के प्रतिद्वन्दी इन सभी विद्वानों ने मिलकर धोखे से एक अनपढ़ व्यक्ति से इसका विवाह कर दिया। जब इसका रहस्य खुला तो विद्या ने अपने इस मूर्ख पति को राजमहल से नीचे धक्का देकर गिरा दिया ताकि वह इससे छुटकारा पा सके। जिस स्थान पर विद्या का पति उपर से नीचे सिर के बल गिरा, वहां पर एक प्राचीन कालि भगवती की गुप्त रुप से पिण्डी थी। उस पिण्डी पर सिर की बलि या रक्त चढाने से भगवती कालि प्रसन्न होकर दर्शन देगी, ऐसी कोई बात पूर्व काल से चली आ रही थी। ज्यों ही विद्या के पति का सिर उस पिण्डी पर जोर से टकराया तो वहां से रक्त धारा बह निकली और उसी समय भगवती कालि भी वहां पर साक्षात् आकर खडी हो गयीं। कहते हैं भगवती कालि ने तीन बार कहा वर मांगो; किन्तु तीनों बार ही विद्या के पति ने यह समझकर कि भगवती यह पूछ रही है तुम्हें किसने गिराया है "विद्या" कहा। 'तथास्तु' ऐसा कह कर भगवती तो आलोप हो गयी किन्तु वह अनपढ एवं मूर्ख व्यक्ति समस्त विद्याओं का ज्ञाता हो गया और तभी से उसका नाम कालिदास अर्थात कालि मां का दास पड़ गया।

कालिदास के जन्म स्थान के विषय में बड़ा मतभेद है। कुछ विद्वान इन्हें काश्मीर का, कुछ मालवे का और कुछ नवद्वीप का तथा कुछ गढ़वाल (हिमालय) का रहने वाला सिद्ध करते हैं। इससे सिद्ध होता है कि वह समस्त भारत के ही प्रतीक थे।

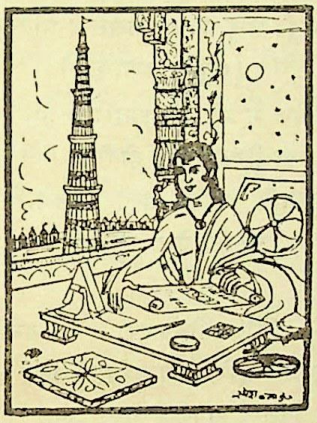
सिख मत के प्रवर्त्तक गुरु गोबिन्द सिंह ने अपनी प्रसिद्ध कृति "दशम ग्रन्थ" में कालिदास को "रघुवंश" काव्य का रचियता एवं कलियुग का अवतार बताया है तथा इन्हें विक्रमादित्य का समकालीन भी कहा है:--

**लखि रीझ विक्रम जीत ॥**
**अति गरबवन्त अजीत ॥**
**अति गिआन मान गुनेन ॥**
**सुभ क्रान्त सुन्दर नैन ॥**
**रघुकाबि कीन सुधार ॥**
**कलि काल दास अवतार ॥**

इन्होंने अनेक ग्रन्थों कि रचना की है जिन पर संसार के अनेक विद्वानों ने अपनी-अपनी टीकाएं लिखकर उन्हें अमर करने का प्रयास किया है। इनके श्रव्य-काव्यों में "रघुवंश", "कुमार सम्भव", "मेघदूत", "ऋतुसंहार" और दृश्य काव्यों में "शकुन्तला," "विक्रमोर्वशी" तथा "मालविकाग्नि मित्र" प्रसिद्ध हैं। "नलोदय," द्वात्रिंशत्पुत्त-

लिका," "पुष्पबाणविलास," "शृंगार तिलक" आदि भी इनके रचित ग्रन्थ हैं। इन्होंने ज्योतिष के भी दो ग्रन्थ लिखे हैं जिनमें "कालामृत" एवं "ज्योतिर्विदाभरण" इस समय उपलब्ध हैं।

**वराह मिहिर:** - महाकवि कालिदास ने "ज्योतिर्विदाभरण" में नवरत्नों की नामावली लिखते सयय वराह मिहिर को "ख्यातो वराहमिहरो" लिखकर सम्बोधित किया है। इससे स्पष्ट होता है कि वराह मिहिर उस काल के ख्याति प्राप्त विद्वान थे



और विक्रमादित्य की राज्य सभा में इनको विशेष सम्मान प्राप्त था। इनके विषय में भी विदेशियों ने बहुत भ्रम जाल फैला रक्खा है और वह इन्हें ईसा पूर्व काल न मान कर ईसा की षटी शति में हुआ मानते हैं। वास्तव में ईसा पूर्व ५५० वर्ष में प्रारम्भ होने वाले शक काल को गायब करके और उसके स्थान पर ईसा पश्चात ७८ वर्ष में शुरु होने वाले शक काल को सामने लाकर ही यह भ्रम जाल फैलाया गया है।

आचार्य वराह मिहिर का उल्लेख विश्व विख्यात खगोल वेताओं, वैज्ञानिकों एवं इन्जीनियरों में सर्व प्रथम आता है। पृथ्वी को केवल आकर्षण के बल पर आकाश में लटका हुआ घोषित करने वाले विश्व के सर्व प्रथम ज्योतिर्विज्ञानाचार्य आप ही थे। आपने ज्योतिष शास्त्र के अनेक ग्रन्थ लिखे हैं जिनमें "बृहत्संहिता", "पंचसिद्धान्तिका", 'बृहज्जातक' एवं "लघु-जातक" तो विशेष रूप से संसार भर में प्रसिद्ध हैं। अल्बेरूनी ने आपके कई एक ग्रन्थों का अरबी में अनुवाद किया था।

आपने अपने आपको अवन्ती (उज्जयिनि) के अन्तर्गत कापिथक (आधुनिक कायथा) ग्राम का निवासी बताया है और सूर्य भगवान से समस्त विद्याओं को वरदान रूप में प्राप्त करने का उल्लेख किया है। आपके पिता पँ० आदित्यदास भी विख्यात ज्योतिषी थे और आपके पुत्र पृथु-यश भी बड़े विख्यात ज्योतिष हुए हैं जिन्होंने "होरा सार" एवं "षटपंचाशिका" दो प्रसिद्ध ज्योतिष ग्रन्थों की रचना की है। आपका जन्म १२३ ई० पू० में हुआ था और ८२ वर्ष की आयु भोग कर ४१ ई० पूर्व में आपने इस संसार से विदा ली।

आपने अनेक ज्योतिष यंत्रों का अविष्कार करके भारतीय ज्योतिष विज्ञान को अभूतपूर्व उन्नति प्रदान की। ज्योति-र्विज्ञान के शोध एवं नक्षत्रों आदि के वेध के लिए आपने दिल्ली में एक बहुत बड़ी वेधशाला बनवाई थी। आज के हिसाब से उस समय अरबों रुपये उस वेधशाला के निर्माण में व्यय हुए होंगे। सन् ११९१-९२ ई० में विदेशी लुटेरे कुतुबुद्दीन ऐबक ने उस वेधशाला को तोड़ डाला और वहां पर "कुव्वत-उल-इस्लाम" मस्जिद का निर्माण करवा दिया। दुर्भाग्य से या सौभाग्य से उस वेधशाला का मध्यवर्ति 'मेरूस्तम्भ' नष्ट होने से बच गया और आज भी दिल्ली में "कुतुब मीनार" (मेरूस्तम्भ का अरबी-अनुवाद) के नाम से विश्व भर में प्रसिद्ध है। वेधशाला के निकट वर्तमान ग्राम महरौली विक्रमादित्य के काल में "मिहिरावली" के नाम से प्रसिद्ध था जो बाद में महरौली नाम

से पुकारे जाने लगा है । इस महरौली में ही वराह मिहिर अपने सहयोगियों एवं शिष्यों के साथ रहा करते थे ।

वराहमिहिर का यवन विद्वानों से (विदेशियों) भी सम्पर्क रहा है ऐसा उनके ग्रन्थों में आए हुए ग्रीक एवं यवन शब्दों से मालूम पड़ता है ।

**वररुचिः**––शंकु, वेताल भट्ट एवं घटखर्पर आदि के बारे में तो बहुत अल्प जानकारी मिलती है किन्तु वररुचि के विषय में विस्तृत एवं विश्वस्त जानकारी उपल्बध है । "कथा सरित्सागर" के अनुसार इनका नाम कात्यान भी था और यह भगवान शिव



के पुष्पदन्तक गण के अवतार थे तथा इन्होंने पाटली पुत्र में शिक्षा प्राप्त की थीं ।

जैन ग्रन्थ "प्रबन्धचिन्तामणि" में विक्रमादित्य की कन्या प्रियंगुमंजरी का इन्हें गुरु बताया गया है और कालिदास से इस कन्या के विवाह की घटना भी लिखी हुई है (हो सकता है प्रियगुमंजरी विद्या ही हो )।

पं० भगवद्दत्त अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ "भारत के इतिहास" में आचार्य वररुचि को विक्रमादित्य का समकालीन सिद्ध करते हैं । इनके मतानुसार वररुचि ने "आर्याछन्दोबद्ध" एक ग्रन्थ रचा है जिसके अन्त में इन्होंने अपना तथा विक्रमादित्य का नाम दिया है:-

**"श्रीनरपतिसेवतविक्रमादित्यकिरीट–**
**कोटी निघृष-चरणारविन्द आचार्य-वररूचि**
**विरचितो लिंग विशेष विधिः समाप्तः ।"**

विक्रम संवत् ११७३ में होने वाले राजा लक्ष्मण सेन की सभा के पंडित श्रुतिधर ने एक स्थान पर लिखा है कि-"मैंने (श्रुतिधर) राजा लक्ष्मणसेन की सभा में वही प्रतिष्ठा प्राप्त की है जो विक्रमादित्य के दरबार में वरुचि ने प्राप्त की थी":-

**ख्यातो यश्च श्रुतिधरतया**
**विक्रमादित्य गोष्ठी–**
**विद्याभर्तुः खलु वररूचेराससाद प्रतिष्ठाम् ।।**
**(सदुक्तिकर्णामृत )**

इस श्लोक से भी विक्रमादित्य एवं वरुचि की समकालीनता सिद्ध होती है । वररुचि ने "पत्रकौमुदि" नामक ग्रन्थ विक्रमादित्य की आज्ञा से रचा था ऐसा उन्होंने स्वयं लिखा है ।

'विविधतीर्थकल्प' जैन ग्रन्थानुसार (जिन प्रभ सूरि द्वारा रचित) सिद्ध सेन दिवाकर (जिन्हें क्षपणक कहा गया है) की आज्ञानुसार कात्यान ने विक्रमादित्य की शासन पट्टिका (संवत विक्रमी चैत्र शुक्ल प्रतिपदा के दिन) लिखी थी । जिन प्रभ सूरि लिखते हैं कि मैंने वह पट्टिका स्वयं देखी थी । यदि यह घटना सच है तो काल्यान ही वररुचि थे और वह निश्चय हीं विक्रमादित्य के नवरत्न थे ।

### नवरत्न या नौ विभागों के अध्यक्ष

सम्राट विक्रमादित्य की राज्य सभा में उपरोक्त नवरत्न केवल कवियों अथवा साहित्यकारों के रूप में ही विद्यमान थे ऐसा कभी भीं नहीं हो सकता है । इन नव रत्नों के आधीन शासन के कई एक विभाग भी थे या दूसरे शब्दों में इन्हें अपने-अपने विभाग का मन्त्रीं भी कहा जा सकता है ।

जैसे महान चिकित्सा विशेषज्ञ धन्वन्तरी के आधीन स्वास्थ्य विभाग था, मन्त्र शास्त्र में प्रवीण क्षपणक राज्य के न्याय विभाग एवं दूत-कार्य के अध्यक्ष थे, विख्यात कोष निर्माता अमरसिंह के आधीन भाषा विभाग था, प्रसिद्ध काव्य लेखक घटखर्पर रसायन एवं भूगर्भ (खान) सम्बंधित विभाग के प्रमुख थे, प्रसिद्ध विद्वान शंकु के आधीन राजनीति का विभाग था, भूत-विद्या, के विशेषज्ञ वैताल भट्ट सैनिक एवं यंत्र (मशीन) विभाग के अध्यक्ष थे, महान कवि कालिदास संगीत एवं कला विभाग के प्रमुख थे, आचार्य वराह मिहिर के आधीन खगोल, भूगोल एवं ज्योतिष का विभाग था तथा प्रसिद्ध लेखक वररूचि के आधीन शिक्षा का विभाग था।

---

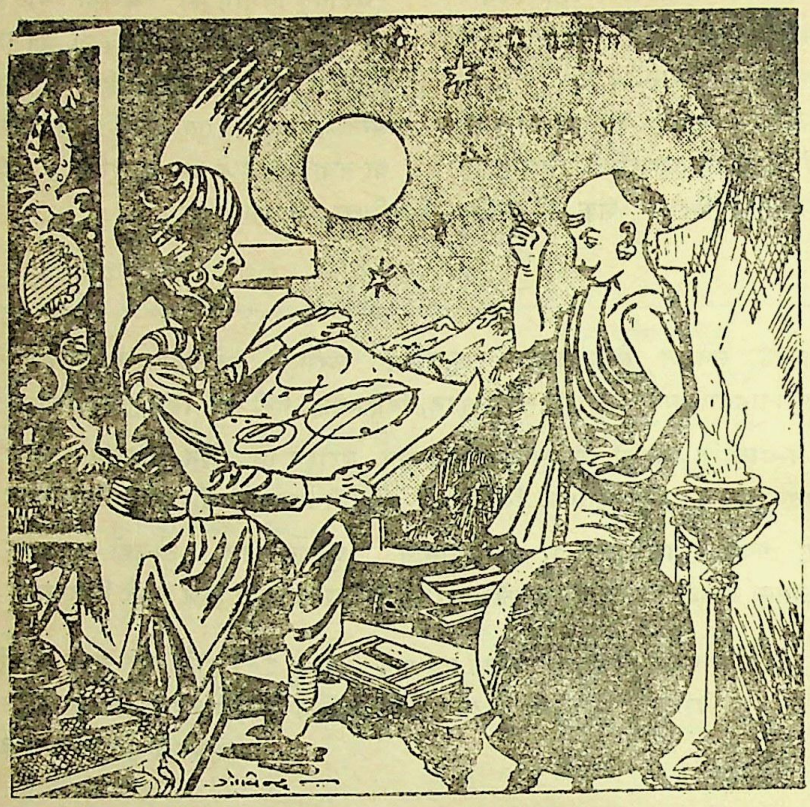
**इत्रश्शफाई सनतुल बिकरमतुन, फ़हलमिन करीमुन यर्तफीहा वयोवस्सरू ।**
**बिहिल्लाहायसमीमिन एला मोतक़ब्बेनरन, विहिल्लाहा यूही कैद मिन होवा यफ़ख़रू ।**
**फ़ज्ज़ल-आसारि नहनो ओसारिम बेजेहलीन, युरीदुन बिआबिन कज़नबिनयख़तरु ।**
**यह सबदुन्या कनातेफ़ नातेफी बिजेहलीन, अतदरी बिलला मसीरतुन फ़केफ़ तसबहू ।**
**कऊन्नी एज़ा माज़करलहदा, अशमीमान, बुरुकन क़द् तोलुहो वतस्तरू ।**
**बिहिल्लाहा यक़जी बैंनना वले कुल्ले अमरेना, फ़हेया जाऊना बिल अमरे बिकरमतुन ।**

(हजरत मुहम्द से एक सौ पैंसठ वर्ष पूर्व (४०५ ई०) होने वाले अरब के प्रसिद्ध कवि जहर्म बिनतोई द्वारा विक्रमादित्य और उनके आश्रित विद्वानों की महिमा का वर्णन।)

सेअरूल-ओकूल पृष्ठ ३१५

अर्थात्—वे लोग धन्य हैं जो राजा विक्रम के राज्य काल में उत्पन्न हुए, जो बड़ा दानी, धर्मात्मा और प्रजा पालक था। परन्तु ऐसे समय हमारा अरब ईश्वर को भूल कर भोग-विलास में लिप्त था। छल-कपट को ही लोगों ने सब से बड़ा गुण मान रखा था। हमारे तमाम देश (अरब) में अविद्या ने अंधकार फैला रखा था। जैसे बकरी का बच्चा भेड़िये के पंजे में फंसकर छट-पटाता है, छूट नहीं सकता, ऐसे ही हमारी जाति मूर्खता के पंजे में फंसी हुई थी। संसार के व्यवहार को अविद्या के कारण हम भूल चुके थे, सारे देश में अमावस्या की रात्रि की तरह अन्धकार फैला हुआ था, परन्तु अब जो विद्या का प्रातःकालीन सुखदाई प्रकाश दिखाई देता है, वह कैसे हुआ यह उसी धर्मात्मा-राजा विक्रम की कृपा है। जिसने हम विदेशियों को भी अपनी दयादृष्टि से वंचित नहीं किया, और पवित्र धर्म का सन्देश देकर अपनी जाति के विद्वानों को यहां भेजा, जो हमारे देश में सूर्य की तरह चमकते थे। जिन महापुरुषों की कृपा से हमने भुलाये हुए ईश्वर और उसके पवित्र ज्ञान को जाना, और सत्पथ-गामी हुए वे लोग राजा-विक्रम की आज्ञा से हमारे देश में विद्या ओर धर्म के प्रचार के लिए आए थे।

# जीवन परिचय



**वराहमिसिर** कौन थे, इनका वास्तविक नाम क्या था, इनका जन्म कब और कहाँ हुआ, इनका वंश परिचय क्या था, ज्योतिष शास्त्र में इन्हें प्रवीणता कैसे प्राप्त हुई, सम्राट विक्रमादित्य से इनका परिचय कब और कैसे हुआ, विदूषी खना कौन थी ओर उससे इनका सम्बंध कैसे हुआ, किन-किन ग्रन्थों कि इन्होंने किस-किस अवस्था में रचना कि आदि-आदि इनके विषय में समस्त जानकारी अब तक कथा कहानियों एवं फुटकर लेखों के रुप में ही उपलब्ध थी। वराह मिहिर के जीवन से सम्बंधित उपरोक्त इस प्रकार की समस्त जानकारी को प्रथम बार क्रम बद्ध संकलित कर के यहां पर प्रस्तुत किया जा रहा है।

—सम्पादक

# वराह-वराहमिहिर अथवा वराहमिहर

कालपी नगर में, आदित्यदास के पुत्र ने भगवान भास्कर से वर प्राप्त करके, अपने पिता से ज्योतिष शास्त्र को भली भांति पढकर और वहाँ के राजा से सत्कृत होकर 'लघुजातक', 'बृहज्जातक', 'विवह पटल', 'बृहत्संहिता','योगयात्रा'और'पंचसिद्धान्तिका' की रचना की। अधिकांश लोगों के विचारानुसार जिस प्रकार वराह ने लघु और बृहत् नाम भेद से दो जातकों की रचना की उसी प्रकार लघु और बृहत् के भेद से 'लघुसंहिता' अर्थात 'समाससंहिता' का रचियता भी वराह ही है। कुछ लोग 'काम्पिल्लक' (कालपी) का पाठान्तर 'कापित्थक' भी करते हैं। वराहरचित 'बृहज्जातक' के २६वें अध्याय के पंचम श्लोकानुसार :-

**आदित्यदासतनयस्तदवाप्तबोधः,**
**काम्पिल्लके सवितृलब्ध-वरप्रसादः।**
**आविन्तको मुनिमताम्बुधिमवलोक्य सम्यग्घोरां**
**वराहमिहिरो रुचिरां चकार ॥**

इस श्लोक द्वारा उपर्युक्त विवरण स्पष्ट हो जाता है।*

भट्टोत्पल के मतानुसार ये मगधदेशीय ब्राह्मण थे। कुछ विद्वान इन्हें मगद्विज अर्थात सूर्योपासक द्विज मानते हैं। जीविकार्जनार्थ मगध से उज्जयिनी जाने वाले वराह का मगधदेशीय होना कोई असम्भव नहीं हैं। यथा अपने घर मगध में अपने पिता से ज्योतिर्विज्ञान प्राप्त करके, आर्यभट के सिद्धान्त को समझ कर, अपनी कीर्ति तथा धनोपार्जन के लिए देशाटन करते हुए वराह ने काम्पिल्लक में सूर्य को प्रसन्न करके एंव वर प्राप्त करके राजा विक्रम द्वारा शासित तथा कान्तिमय अवन्तिका नगरी में पहुंचकर निवास किया ऐसा कहते हैं।

जिस प्रकार आधुनिक विद्वान यूरोपीय भाषा पढकर प्रसिद्ध होते हैं उसी प्रकार वराह ने भी अपने समय में 'यवनभाषा' का अध्ययन करके राजसभा में अपनी प्रसिद्धी करवाई:-

**म्लेच्छा हि यवनास्तेषु सम्यक्**
**शास्त्रमिदं स्थितम्।**
**ऋषिवत्तेऽपि पूज्यन्ते किं**
**पुनर्दैवविद् द्विजः ॥**

यह तथ्य 'बृहज्जातक' में यवनों के उत्कर्षवर्णन से तथा **"क्रियातावुरिजितुम"** आदि श्लोक के अनुसार यवनभाषा में वर्णित राशियों से सिद्ध होता है। जैसा कि पाश्चात्य विद्वान बेबर ने आचार्य वराहमिहिर के साहित्य में क्रिय, ताबुरि, जितुमलेय, पाथेन या पाथोन, द्यूक या जूक, कौर्प्यतौक्षिक, आकोकेर, हृद्रोग, इत्थम्, हेलि, हिम्न, ज्यौ, कोण, आस्फुजित्, होरा, केन्द्र,

---

*आचार्य वराहमिहिर का जन्म स्थान वर्तमान कायथा ( उज्जैन ) है जिसे उन्होंने 'कापिथके' लिखा है। कायथा में उत्खनन द्वारा प्राप्त सामग्री से यह सिद्ध हो चुका कि आचार्य वराहमिहिर अवन्तिका अन्तर्गत इसी वर्तमान कायथा गांव में जन्मे थे। अतः काम्पिल्लक या कालपी आदि उनका जन्मस्थान नहीं है। —सम्पादक

द्रेष्काण, या द्रेक्काण, लिप्ता, अनफा, सुनफा, दुरुधरा, केमद्रुम, वेशि, आपोक्लिम, पणफर, हिबुक, जामित्र, मेषूरण, द्यूनम्, द्यूतम्, रिःफ, कुलीर, त्रिकोण, (इनमें बेबर महोदय द्वाराभूल से हृद्रोग, कोण, लिप्ता, कुलीर, त्रिकोण, केन्द्र एवं द्रेष्काण आदि संस्कृत शब्दों को भी लिया गया है) आदि शब्दों का उल्लेख कर के यह सिद्ध किया है कि वह यवन भाषा (ग्रीक) के भी महापंडित थे ।

"बृहत्संहिता" के प्रथम अध्याय का १० वाँ श्लोक दृष्टय है:-

**"यवकानुयवकास्तमयोदयाद्यास्तारागृहाणां करणे मयोक्ताः ।**
**होरागतं विस्तरतश्च जन्मयात्राविवाहैः सह पूर्वमुक्तम् ॥**

इस श्लोक से यद्यपि सब कृतियों के नाम स्पष्ट नहीं होते हैं, तथापि वराह की अन्तिम कृति "बृहत्संहिता" ही थी यह स्पष्ट ही है ।

वराह कृत "लघुजातक" तथा "बृहज्जातक" (भट्टोत्पल की टीका सहित) फलित तथा भाग्य जानने वालों के घर में लिखा हुआ अथवा छपा हुआ मिलता है । मिथिलाप्रान्तों में "लघुजातक" का भी प्रचार है, पर काशी में विशेषतः "बृहज्जातक" का ही है । "बृहत्संहिता" तो डा० कर्ण के मुद्रण से और भी प्रसिद्ध हो गयी है । "समाससंहिता" आज तक दृष्टिगोचर नहीं हुई है । "योग यात्रा" तथा "विवाह पटल" अत्यन्त प्रयत्न से प्राप्त हुए हैं । इन दोनों पुस्तकों को हमने काशी के ज्योतिषज्ञ श्यामाचरण जी के घर में क्रमशः "विवाह-मुहूर्त्त" तथा "यात्रा मुहूर्त्त" नाम से देखा है । डा० थिबो तथा मेरे प्रयत्नों से "पञ्चसिद्धान्तिका" की संशोधित एवं परिवर्धित टीका रचकर मुद्रित की गई है । इसकी दूसरी प्रति अभी तक नहीं मिली है । फलितग्रन्थों में "विवाहपटल" के बहुत से वाक्य मिलते हैं जैसे अन्य शास्त्रों में अध्याय होते हैं, उसी प्रकार तन्त्रशास्त्रों में अध्याय के स्थान पर पटल होते हैं । उनके द्वारा लिखा गया है कि तान्त्रिक लेखानुसार "विवाहपटल" से विवाहाध्याय ही ग्रहण किया जाता है । "बृहज्जातक" पर भट्टोत्पल की, महीधर की और महादेव की टीका प्रसिद्ध है । दशाध्यायी नाम्नी एक केरली टीका अनुपलब्ध है जिसकी एक प्रति मैंने बहुत प्रयत्नों से काशी राज्य पुस्तकालय में संग्रह के लिए लेखक से प्राप्त की थी ।

इस टीका में लिखा है कि "गोविन्द ने भी "बृहज्जातक" पर टीका लिखी" ।। और यहां प्रथम श्लोक की टीका में सूर्यभट, भगवत्पादाचार्य, गोविन्द, हलधर, श्रीपति, सारावलीकार, कृष्णाचार्य, भट्टोत्पल, आर्यभट के **"सिंहोवृषः प्रथममेष"** आदि १४ वें श्लोक की टीका में विद्यामाधव, वशिष्ठ, पराशरहोरा, बादरायण, यवनेश्वर के, १६ वें श्लोक की टीका में भास्कर, बल्लभ के तथा द्वितीयाध्याय के अन्तिम श्लोक की टीका में पराशर के, तथा **"यो यो भावः स्वामिदृष्टः युतो वा"** आदि "षट्पञ्चाशिका" कार पृथुयश के वचन भी मिलते हैं ।

"बृहज्जातक" में वराह जी ने मय, यवन मणित्थ, विष्णुगुप्त, देवस्वामी, सिद्धसेन, जीवशर्मा, सत्याचार्य के नाम लिखे हैं । संहिता के अन्त में प्रस्तुत विषयों की अनुक्रमणिका भी क्रम से वर्णित है ।

वराह ने "बृहत्संहिता" के ५८ अध्याय में ४४ वें श्लोक में **"पद्मांकितकरचरणः प्रसन्नमूर्तिः"** में बुद्धप्रतिमा के लक्षण को तथा ४५ वें श्लोक में **"आजानुलम्बबाहुः श्रीवत्साङ्कः"** अर्हदेव प्रतिमा के लक्षण को कहा है । "वैदिक धर्मावलम्बियों की यह रीति नहीं है", ऐसा कहने वालों का मत ठीक नहीं है, क्योंकि प्रतिमालक्षण वर्णन में लगे हुए विद्वान को सब लक्षणों का वर्णन आवश्यक है ।

# वराहमिहिर : एक परिचय

## कुल, स्थल इत्यादि

वराहमिहिर ने 'वृहज्जातक' के उपसंहार-अध्याय में लिखा है:—

**आदित्यदासतनयस्तदवाप्तबोधः,**
**कापित्थके सवितृलब्ध-वर प्रसादः**
**आवन्तिको मुनिमतान्यवलोक्य सम्यग-**
**घोरां वराहमिहरो रुचिरां चकार।**

इससे ज्ञात होता है कि उनके पिता का नाम आदित्यदास था और इन्होंने ज्ञान उन्हीं से प्राप्त किया था। कापित्थक में इन्हें सूर्य का वर प्रसाद प्राप्त हुआ था, और ये अवन्ती के निवासी थे। अवन्ती के पास कापित्थक नाम का कोई गांव होगा। और वहां ये कछ दिन रहे होंगे। सब ग्रन्थों के आरम्भ में इन्होंने मंगलाचरण में मुख्यतः सूर्य की वन्दना की है, इससे ज्ञात होता है कि ये सूर्य के भक्त थे। 'पञ्चसिद्धान्तिका' के प्रथमाध्याय की निम्नलिखित आर्या से ज्ञात होता है कि इनके ज्योतिषशास्त्र के गुरु इनके पिता से भिन्न थे :-

**दिनकरवसिष्ठपूर्वान् विविधमुनीन्**
**भावतःप्रणम्यादौ।**
**जनकं गुरुंञ्च शास्त्रे येनास्मिन्**
**नः कृतो बोधः॥**

दूसरे स्थलों के अन्य चार पांच उल्लेखों से भी ज्ञात होता है कि ये अवन्ती अर्थात उज्जयिनी के निवासी थे।

## परदेशगमन

कुछ लोग ऐसा समझते हैं कि भास्कराचार्य ने यवन देशों में जाकर ज्योतिषशास्त्र का ज्ञान प्राप्त किया था, परन्तु भास्कराचार्य के और उनके पूर्व के ग्रन्थों को देखने से ज्ञात होता है कि यह धारणा भ्रमपूर्ण है। वराहमिहिर के विषय में भी कई ऐसा ही कहते हैं, परन्तु वराह के ग्रन्थ और- उन की भट्टोत्पल कृत टीकाओं को देखने से ज्ञात होता है कि वराह के ग्रन्थों में जिन विषयों का वर्णन है उन सबके वराह के पूर्व ही इस देश में अनेकों ग्रन्थ बन चुके थे, अतः उन्हें विदेश जाने की कोई आवश्यकता नहीं थी।

## ग्रन्थ

इन्होंने यात्रा, विवाह, गणित (करण), होरा और संहिता विषयों के ग्रन्थ बनाये है। संहिता शाखा के इनके प्रसिद्ध ग्रन्थ 'बृहत्संहिता' के निम्न लिखित श्लोक से ज्ञात होता है कि वह सब के अन्त में बना है:—

**वक्रानुवक्रास्तमयोदयाद्यास्तारा-**
**ग्रहाणां करणे मयोक्ताः**
**होरागतं विस्तरतश्च जन्मयात्रा-**
**विवाहैः सह पूर्वमुक्तम्।**

इस श्लोक में बतलाया हुआ होरा शाखा का ग्रन्थ 'बृहज्जातक' ही है। इस के निम्नलिखित श्लोकों से ज्ञात होता है कि विवाह और करणग्रन्थ इसके पहिले बन चुके थे और यात्रा विषयक ग्रन्थ इसके बाद बना:—

**अध्यायानां विंशति : पञ्चयुक्ता**
**जन्मन्येतद्यात्रिकं चाभिधास्ये॥**
**··· विवाहकालः करणं ग्रहाणां प्रोक्तं**
**पृथक् तद्विपुला च शाखा॥**

इसमें बतलाया हुआ करण ग्रन्थ 'पञ्च सिद्धान्तिका' ही है। 'पञ्चसिद्धान्तिका' में ऐसा कोई उल्लेख नहीं है, जिससे यह सिद्ध होता हो कि वराह ने इसके पहिले कोई ग्रन्थ बनाया था। इससे और वारहमिहिर की अवस्था का विचार करने से 'पञ्चसिद्धान्तिका' ही उनका प्रथम ग्रन्थ ज्ञात होता है। 'बृहत्संहिता' की भट्टोत्पलकृत प्रमाध्याय की टीका से ज्ञात होता है कि वराह के विवाह विषयक ग्रन्थ का नाम "वृहद्विवाहपटल" था। वह और उनका यात्रा विषयक ग्रन्थ ये दोनों इस समय उपलब्ध नही है। होरा शाखा के 'बृहज्जातक' के अतिरिक्त उनका एक और ग्रन्थ 'लघुजातक' नाम का है। उसमे लिखा है:-

**होराशास्त्रं वृत्तं मया**
**निबद्धं निरीक्ष्य शास्त्राणि।**
**यत्तस्याप्यार्याभिः**
**सारमहं सम्प्रवक्ष्यामि ॥**

इससे ज्ञात होता है कि "लघुजातक" 'बृहज्जातक' का ही संक्षिप्त स्वरुप है। रचनाकाल के अनुसार इनके ग्रन्थों का क्रम यह है - "पञ्चसिद्धान्तिका," "विवाहपटल," 'बृहज्जातक,' "लघुजातक, 'यात्रा ग्रन्थ' और "बृहत्संहिता"। 'लघुजातक' का रचनाकाल "यात्रा ग्रन्थ" और 'बृहत्संहिता' के बाद भी हो सकता है।

## ग्रन्थ प्रचार

इनमें से 'बृहज्जातक' और 'लघुजातक' का इस समय भी ज्योतिषियों में पर्याप्त प्रचार है और ये बम्बई,पूना, काशी इत्यादि स्थानों में छप चुके है। अन्य भी अनेक स्थानों में अनेकों लिपियों में छपे होगें। डा० कर्न ने मूल मात्र "बृहत्संहिता" छपायी है और उसका इंग्लिश में अनुवाद करके उसे 'रायल एशियाटिक सोसायटी' की पांचवीं पुस्तक में छपाया है। कलकत्ता में 'बिब्लिोथिका इंडिया' में 'बृहत्संहिता' मूलमात्र छपी है। रत्नागिरी के जगन्मित्र छापाखाने में "बृहत्संहिता" का मूल और उसका मराठी अनुवाद छपा है। वराह का 'समाससंहिता' नामक ग्रन्थ था ऐसा उत्पल ने लिखा है। मेरी समझ से वह "बृहत्संहिता" का संक्षेप होगा।

## टीकाएं

भट्टोत्पल वराहमिहिर के प्रसिद्ध टीकाकार हैं। यद्यपि यह सत्य है कि "बृहज्जातक" ग्रंथ स्वयं उपयुक्त होने के कारण आज तक प्रचलित है तथापि उनके प्रचार का प्रमुख कारण उत्पलटीका है, ऐसा कह सकते हैं। 'बृहत्संहिता' की टीका में नीराजन विधि विषय में उत्पल ने लिखा है **'यात्रायां व्याख्यास्'**। इससे ज्ञात होता है कि उन्होंने यात्रा-ग्रन्थ की भी टीका की थी। उत्पल ने 'लघुजातक' की भी टीका की है। उन्होंने वराह के शेष ग्रन्थों की भी टीका की थी, इसका प्रमाण नहीं मिलता। उत्पलटीका काल लगभग शके ८८८ अर्थात वराह के लगभग ४०० वर्ष बाद है। उन्होंने राहुचार की टीका में और दो-तीन अन्य स्थानों में भी लिखा है **'अन्ये एवं व्याचक्षते'**, इससे ज्ञात होता है कि उनके पहिले भी 'बृहत्संहिता' की कुछ टीकायें थीं। 'बृहज्जातक' की महीदास और महीधर कृत टीकायें डेक्कन कालेज संग्रह (नं० ३४१, ३४३ सन १८८२-८३) में है। अल्बेरूनी ने इनके 'बृहत्संहिता' और 'लघुजातक' ग्रन्थों का अरबी में अनुवाद किया था। 'बृहज्जातक' की बलभद्रकृत टीका का उल्लेख उसने किया है।

वराह मिहिर ने कई स्थानों पर लिखा है कि मैंने ग्रहों के वक्र, अनुवक्र, अस्त और उदय इत्यादि का वर्णन करणग्रन्थ में



★

किया है। 'पंचसिद्धान्तिका' में इन सब बातों का वर्णन है। इससे और अन्य प्रमाणों से भी सिद्ध होता है कि इनका करण ग्रन्थ 'पंचसिद्धान्तिका' ही है, परन्तु इन्होंने इसका 'पंचसिद्धान्तिका' नाम कहीं नहीं लिखा है। उत्पल ने उसे 'पंचसिद्धान्तिका' कहा है। इसका कारण यह है कि ग्रन्थाकार ने उसमें पांच सिद्धान्तों का अनुवाद किया है।

वराह ने भिन्न - भिन्न सिद्धान्तों के मध्यम ग्रह तथा ग्रहण विचारों का उल्लेख करते हुए उनके विषय में कहा है:-

यत्तत्परं रहस्यं भ्रमति 9356
मतिर्यत्र तन्त्रकाराणाम्।
तदहमपहाय मत्सरमिस्मन्
वक्ष्येग्रहे भानोः॥

प्रद्युम्नो भूतनये जीवे
सौरे च विजयनन्दी
भग्नावतः स्फुटमिदं
करणं दृष्टं वराहमिहिरेण॥

पुस्तकालय

यहां उनके कथन का उद्देश्य यह मालूम होता है कि प्राचीन तन्त्रकार जिन बातों को ठीक न जान सके मैंने इस ग्रन्थ में सिद्ध की हैं। इससे ज्ञात होता है कि उन्होंने अपने ग्रन्थ में प्राचीन ग्रन्थों से कुछ विशेष लिखा है। उपर्युक्त मध्यमग्रह-संस्कार के अतिरिक्त उन्होंने विशेष क्या लिखा है, इसे जानने का कोई उपाय नहीं है तथापि मूल में विशेष परिवर्तन किया होगा, यह सम्भव नहीं है। हम समझते हैं, पांचों सिद्धान्तों की जिन बातों का ठीक अनुभव हुआ होगा और जो उपपत्ति द्वारा शुद्ध जान पड़ी होंगी वे उन्होंने ग्रन्थ में रखी होंगी और शेष छोड़ दी होंगी, और सम्भव है देशान्तर, छाया साधन, ग्रहण और छेद्यक सम्बन्धी कुछ स्वयं बनायी हुई रीतियां लिखी होंगी।

## मूल्यांकन

वराह ने सर्व प्रथम करण ग्रन्थ बनाया परन्तु उनकी 'बृहत्संहिता' से ज्ञात होता है कि बाद में उनका ध्यान फलज्योतिष की और विशेषतः नाना प्रकार के सृष्टिचमत्कार पदार्थों के गुण, धर्म का ज्ञान और उनका व्यवहार में उपयोग करने की ओर अधिक आकृष्ट हो गया था। ब्रह्मगुप्त ने प्राचीन ज्योतिषियों में बहुत से दोष दिखलाये हैं, परन्तु वराहमिहिर को कभी भी दोष नहीं दिया है। भास्कराचार्य ने भी उनकी स्तुति की है और अन्य भी अनेकों ग्रन्थकारों ने उनके वचन प्रमाण रूप में उद्धृत किये हैं। सृष्टिशास्त्र की इस एक शाखा ज्योतिष शास्त्र के ग्रन्थ बहुतों ने बनाये हैं, पर उसकी अनेक शाखाओं का विचार करने वाला ज्योतिषी वराह के बाद दूसरा नहीं हुआ, ऐसा कह सकते हैं। इतने प्राचीन काल में हमारे देश में ऐसे मनुष्य का उत्पन्न होना सचमुच हमारे लिए भूषण है। दुःख के साथ कहना पड़ता है कि उनके जातक ग्रन्थ का आज तक पर्याप्त उपयोग होता चला आ रहा है, पर संहिता ग्रन्थ का विचार और उपयोग प्रायः किसी ने भी नहीं किया। उनकी बतलायी हुई दिशा के अनुसार सृष्टि-पदार्थों के गुण-धर्म का विचार यदि उसी प्रकार अव्याहत चलता रहा होता तो आज यूरोपियन इस विषय में हमसे आगे न बढ़ पाते, परन्तु हमारे देश के दुर्भाग्यवश वह परम्परा आगे न चल सकी।

पं० आचार्य प्रियव्रत वेद
वाचस्पति
स्मृति संग्रह★

# वराहमिहिर की जीवनी

"बृहज्जातक" के अन्तिम अध्याय में (प्रो. बी. सूर्य नारायण राव ने "बृहज्जातक" का सन् १९१९ में अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित किया था-सम्पादक) मिहिर ने लिखा है कि मैं आदित्य दास का पुत्र हूं और अवन्तिक (मालवा) अन्तर्गत कापित्थक ग्राम का निवासी हूं। मैंने समस्त विद्याओं में अपने पिता द्वारा ज्ञान प्राप्त किया है। मैं सूर्य भगवान का पुजारी हूं और बड़ी कठिन तपस्या द्वारा मैंने भगवान सूर्य नारायण को प्रसन्न करके खगोल एवं फलित ज्योतिष तथा प्राकृतिक विज्ञान आदि विषयों में प्रवीण होने का वर प्राप्त किया है। वराह मिहिर के विषय में तथा उनकी अद्भुत बौद्धिक शक्ति के विषय में अनेक प्रकार की कथायें प्रचलित हैं। प्राचीन भारतीय महर्षियों के बाद वराह मिहिर का नाम ही सर्वोपरि माना जाता है और उनको आधुनिक युग का खगोल विज्ञान एवं फलित ज्योतिष तथा प्राकृतिक विज्ञान (संहिता) का सबसे बड़ा लेखक एवं पंडित माना गया है।

## जन्म

प्राचीन मालवा की राजधानी उज्जैन से लगभग सौ मील दूर पश्चिम दक्षिण की ओर कापित्थ नामक एक ग्राम था जिसमें लगभग तीन सौ ब्राह्मण परिवार रहा करते थे (कापित्थक (कायथा) उज्जैन से केवल चौदह मील दूर है जिसे वराह-मिहिर की जन्म भूमि माना जाता है-सम्पादक)

उस गाँव के चारों ओर आम, कटहल, जामन, नारंगी, कैथ, इमली, नारियल, नीम्बू, अनार, केला आदि अनेक प्रकार के फलों एवं कई प्रकार के पुष्पों के वृक्ष थे चूंकि उपरोक्त गांव में कैथ के वृक्षों की संख्या अधिक थी, इस कारण से उस गांव को कापित्थ कहा जाता था। ध्यान रहे कैथ को संस्कृत में "कापित्थ" कहते है। इस ग्राम के एक मील दूर एक छोटी सी नदी बहती थी जिसमें हर समय पानी चलता रहता था। इस नदी पर दो सौ गज तक दोनों किनारों पर सफेद संगमरमर से निर्मित सुन्दर घाट बने हुए थे। आदित्य दास इस गाँव के प्रमुख व्यक्ति होने के साथ-साथ एक विद्वान एंव सम्पन्न ब्राह्मण भी थे जिनकी स्थानीय लोगों के अतिरिक्त दूर-दूर के लोगों में भी बड़ी प्रतिष्ठा थी। वह इसी गांव में रहते और हर समय भजन पाठ एवं विद्या अध्ययन में लीन रहा रहते थे। पच्चास वर्ष की आयु तक इनके यहाँ कोई संतान नहीं हुई थी। इनकी पत्नी सत्यावती (इन्दुमति) भी बहुत धार्मिक, पवित्र उदार एवं शुभकर्म करने वाली थी। आदित्य-दास एवं सत्यावतीं के यहां हर प्रकार का भौतिक सुख प्राप्त था किन्तु जीवन की सन्ध्या होने तक भी उनके कोई संतान न थी। एक बार वह दोनों दम्पति संतान दुःख से पीड़ित होकर नदी में डूब कर प्राण त्याग करने के विचार से सांय काल को घर से निकल पड़े। आदित्य दास स्वयं सूर्य भगवान के परम भक्त थे और

वह निरन्तर सूर्य उपासना किया करते थे। नदी में स्नान करने के पश्चात उन दोनों ने भगवान सूर्य देव के सामने करबद्ध होकर प्रार्थना की –"आप सबसे शक्तिमान एवं महान हैं। हमने निरन्तर पच्चीस वर्ष से आपकी भक्ती की है किन्तु अभी तक हम पुत्र सुख से वांच्छित हैं। वेदों में कहा गया है कि अपुत्र को गति नहीं मिलती तथा उसको मोक्ष अथवा स्वर्ग की प्राप्ति भी नहीं होती। आप हमारे शास्त्रों के अनुसार त्रिदेवों (ब्रह्मा, विष्णु, एवं रूद्र,) का स्वरूप हैं और आपकी वर देने की शक्ति भी अपार है। आप या तो अस्त होने से पूर्व ही हमें पुत्र रत्न होने का वरदान देवें या हमें अपनी शरण में ले लेवें"। यह कह कर उन दोनों ने नदी में अपने प्राण त्यागने के उद्देश्य से गोता लगाने का निश्चय अभी किया ही था कि उन्होंने एक बूढ़े ब्राह्मण को नदी के बाहर खड़ा हुआ देखा जिसका मुख मण्डल बहुत ही प्रकाशमान था। उस वृद्ध ब्राह्मण ने उन दोनों को पानी से बाहर आने का आदेश दिया और वह दोनों एक दम नदी से बाहर आकर उस आलौकिक आभायुक्त वृद्ध ब्राह्मण के चरणों में गिर पड़े। बूढें ब्राह्मण ने उन दोनों को बड़े प्रेम से ऊपर उठाया और उन्हें कहने लगा कि "मैं सूर्य हूं और आप लोग कई वर्ष से मेरी अर्चना कर रहे हैं। मैं आप दोनों की भक्ति से प्रसन्न हूं तथा आप की मनोकामना अवश्य पूर्ण होगी। अब तक आकाश में मेरा विम्ब पश्चिम की ओर आधा अस्त हो चुका है, मैं जब तक आप लोगों को पुत्र होने का वरदान नहीं दे लूंगा तब तक पूर्ण रुप से मेरा विम्ब अस्त नहीं होगा। अर्थात मैं अस्त होने से पूर्व ही आपकी प्रतिज्ञानुसार आपको वर दूँगा।

मैं आप लोगों की भक्ति से अत्यन्त प्रसन्न हूं किन्तु आप लोगों के अनेक जन्मों के अशुभ कर्म इतने अधिक थे कि जब तक आप की निरन्तर भक्ति द्वारा उन का नाश नहीं हो पाया है मैं आप लोगों के समक्ष नहीं आ सका हूं और ना ही आप के पुत्र न होने के दोष को नष्ट कर सका हूं। अब आप के यहां एक पुत्र होगा जिसका नाम मेरे नाम पर ही (मिहिर) प्रसिद्ध होगा। वह वास्तव मे ही लोगों की अन्धकार रूपी अज्ञानता को नष्ट करने वाला एवं सुसभ्य लोगों के हृदय को प्रफुल्लित करने वाला सूर्य होगा। आप के पुत्र के यहाँ भी एक ऐसा पुत्र होगा जिसका नाम पृथुयश अर्थात पृथ्वी पर सम्मानित होने वाला व्यक्ति होगा। आपका पुत्र मिहिर एक अद्भुत एवं अपूर्व बुद्धि का मनुष्य होगा। वह समस्त वेदों, शास्त्रों, पुराणों, एव विज्ञानों में दक्ष होगा। उसे महान सम्राट विक्रमादित्य का आश्रय मिलेगा तथा वह उसका मुख्य सलाहकार भी होगा। नौ विद्वान रत्नों की सभा अर्थात "नवरत्नों" में आपका पुत्र सब से चमत्कारी रत्न होगा तथा उसकी आयु दीर्घ होगी एवं वह प्रतापी होगा। आपके पुत्र की ८० वर्ष की आयु होगी किन्तु तुम उसके जन्म के बाद बहुत समय तक जीवित नहीं रह सकोगें जबकि तुम्हारी पत्नी अपने पुत्र के वैभव एवं कीर्ति को देख सकेगी।"

इन्दुमति-"यह फल तुम ले लो और इसे कल खाली पेट दोहपहर के समय अभिजित मुहूर्त में खा लेना। अगले वर्ष चैत्र शुक्ल दशमी को ठीक दोपहर के समय तुम्हारे यहां पुत्र जन्म लेगा, जिसका नाम मिहिर होगा क्योंकि वह मेरे वरदान से जन्म लेगा और आदित्य, भानु, रवि, सूर्य सविता, दिवाकर, जगत चक्षु, मार्त्तण्ड एंव मिहिर यह सब मेरे ही नाम हैं।"

वह दोनों दम्पति सूर्य भगवान के चरणों में फिर सादर गिर पड़ें और सूर्य

भगवान ने जो कि बूढ़े ब्राह्मण के रूप में विराजमान थे उन दोनों को नीचे से ऊपर उठाया और उनके ऊपर उठतें ही वह आलोप हो गए और एक दम अन्धेरा छा गया। आदित्य दास ने संध्या की और शीघ्र ही दोनों खुशी-खुशी घर वापिस लौट आए। अगले दिन इन्दुमति ने सूर्य देव द्वारा प्रदान किये गये फल को उनके आदेशानुसार खा लिया और चैत्र शुक्ल दशमी को दोपहर कें बारह बजे इन्दुमति के यहाँ मिहिर ने जन्म लिया जो कि बड़ा हृष्ट-पुष्ट सुन्दर, ऐश्वर्य युक्त और उत्तम आकृति वाला था। गाँव के सभी लोग इस प्रकार कें अद्भुत बालक कें जन्म पर बड़ा गर्व एवं हर्ष करने लगें। आदित्य दास ने धर्मशास्त्र के अनुसार उन सभी संस्कारों को पूरा किया जो ब्राह्मणों कें लिए निर्धारित किये गये हैं।

## विद्या

अपने पिता आदित्यदास से शिक्षा प्राप्त करने पर मिहिर ब्राह्मणों द्वारा सीखे जाने वाली समस्त विद्याओं में प्रवीण हो गया और उसकी प्रसिद्धी न केवल अपने गांव 'कापित्थक' तक ही सीमित थी बल्कि आस-पास के सभी क्षेत्र में अब महिर की विद्वता की चर्चा होनी शुरू हो गई थी। आठ वर्ष की आयु में मिहिर का यज्ञोपवीत संस्कार बडी विधी से सम्पन्न किया गया जैसा कि प्रत्येक बह्माण बालक के लिए अनिवार्य हुआ करता है। यज्ञोपवीत संस्कार कें बाद आदित्यदास ने मिहिर को वेद, ज्योतिष शास्त्र एवं प्राकृतिक विज्ञान आदि की शिक्षा देकर एक विद्वान पंडित बना दिया। बीस वर्ष की आयु में मिहिर कें पिता आदित्य दास का स्वर्ग वास हो गया और उस ससय मिहिर एक विशाल पैतृक सम्पति एवं ख्याति तथा विद्या से सम्पन्न था। मिहिर को वाक्यसिद्धि प्राप्त थी अर्थात उसकी भविष्य वाणी शत प्रति शत सत्य हुआ करती थी। उस प्रदेश कें धनाढय लोगों एवं राज्य के उच्च अधिकारियों में मिहिर कें प्रति विशेष श्रद्धा थी एवं समय-समय पर लोग मिहिर से ज्योतिष सम्बन्धी परामर्श लेने आया करते थे।

## वरप्राप्ति

यह स्वीकार करना पड़ेगा कि ज्योतिर्विज्ञान में पारंगत होने के लिए सूर्य देव की कृपा प्राप्त करनी परमावश्यक है। महिर ने भी सूर्य भगवान को प्रसन्न करने के लिए अपने जीवन के आरंभिक काल में कठिन तपस्या की थी। कैथ के वृक्षों से भरपूर जंगल में जाकर मिहिर ने एक वृक्ष पर एक झूला डाल कर उस पर बैठ कर तपस्या करनी शुरु कर दी। उस झूले के रस्से में बारह रस्सियों को लपेटा गया था। झूले के नीचे मिहिर ने अग्नि प्रज्जवलित कर रक्खी थी। प्रत्येक मास के बाद मिहिर झूले की बारह रस्सियों में से एक रस्सी को काट देता था। ग्यारह महीने के बाद जब झूले की केवल एक ही रस्सी शेष रह गयी तब मिहिर ने उसे काट कर स्वयं को अग्नि में जलाकर भस्म हो जाने का निश्चय किया जो कि झूले के निचे जल रही थी। जिस समय मिहिर झूले की अन्तिम रस्सी काट कर अग्नि में बलिदान होने को तैयार था, उसी समय सूर्य देव अपने दिव्य रुप में मिहिर के सन्मुख आकर कहने लगे कि "मैं तुम्हारी तपस्या और प्रार्थना से प्रसन्न हूं, तुम जो भी वरदान मेरे से चहाते हो माँग लो। मैं सहर्ष तुम्हारी मनोकामना पूर्ण करुगा।" सूर्य देव को अपने सन्मुख साक्षात रुप में देखकर महिर झट उनके चरणों में गिर पड़ा और प्रार्थना करने लगा कि "मुझें ज्योतिष कें तीनों स्कन्धों

(सिद्धान्त, संहिता एवं होरा) में पारंगत होने का आशीर्वाद प्रदान करें"। "तथाऽस्तु" ऐसा कह कर सूर्य देव वहाँ से आलोप हो गये। उसी दिन से मिहिर ज्योतिष के तीनों स्कन्धों के महाविद्वान हो गये। सूर्य देव से वरदान का उल्लेख मिहिर ने "बृहज्जातक" के अन्तिम अध्याय में भी किया है।

## विक्रम से मित्रता

एक समय सम्राट विक्रमादित्य एवं उनकें सौतेले भाई भट्टी जो विक्रमादित्य के मन्त्री भी थे, दोनों घूमते-फिरते कापित्थक गाँव में आ निकले और वहाँ पर उन्होंने परमतेंजस्वी ब्राह्मण मिहिर को नदी के तट पर सन्ध्या करतें हुए देखा। यह दोनों ही उस ब्राह्मण की ओर बढ़े और उसके तेज से आकर्षित होकर उसकें निकट जाकर बैठ गये। विक्रमादित्य ने उस दिव्य तेज से युकत ब्राह्मण की परीक्षा लेने के लिए अपने आप को व्यापारी तथा भट्टी को अपना मुन्शी बताकर व्यापार के लिए यात्रा में सफलता सम्बंधी प्रश्न बड़ी श्रद्धा से पूछा। मिहिर ने थोड़ी देर ध्यान लगा कर कहा कि आप व्यापारी नहीं हैं, बल्कि आप तो एक शक्तिशाली एवं सुयोग्य और दयालु सम्राट हैं तथा आप के साथ आपका सौतेला भाई है जोकि एक सुयोगय मन्त्री है आप कें दो सौतेले भाई और भी हैं। मिहिर ने कहा कि मैंने ज्योतिष शास्त्र के आधार पर यह रहस्य आपको बताया है जबकि आप दोनों ने कपट द्वारा मेरी परीक्षा ली है। यह उत्तर सुनकर विक्रमादित्य एवं भट्टी अवाक रह गये और एक दम मिहिर से क्षमा मांगते हुए उनके चरणों में गिर पडे। मिहिर ने उन्हें ऊपर उठाकर अपने गले से लगाया और उस रात्रि को वह दोनों कापित्थक गांव में ही मिहिर के निवास स्थान पर ठहरे। प्रातः होतें हीं विक्रमादित्य कें आग्रह पर मिहिर को उज्जैन उन के साथ चलना पड़ा। विक्रम ने मिहिर को भी अपने राज में महाकवि कालिदास एवं गणितज्ञ वररूचि के समान ही राजपण्डित के पद पर आसीन कर दिया। यहीं पर बाद में इन्हें विक्रमा की नवरत्न सभा के प्रमुख रत्न होने का गौरव भी प्राप्त हुआ। विक्रम के आश्रय में रह कर ही मिहिर ने ज्योतिष सम्बंधी अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना की थी।

## वराह की पदवी

मिहिर की प्रसिद्धी वराह मिहिर के नाम से कैसे हुई इसका उत्तर हमें विभिन्न घटनाओं द्वारा मिलता है। एक समय महाराजा विक्रमादित्य की प्रमुख रानी के यहां पुत्र ने जन्म लिया। नवजात बालक की जन्म कुण्डली को देखकर कालिदास, वररुचि, एवं मिहिर आदि ज्योतिषियों ने फलोदेश बताए। कालिदास एंव वररुचि ने तो राजकुमार की अठारहवें वर्ष में शिकार खेलते हुए अथवा किसी जंगली पशु द्वारा मृत्यु का योग बताया। मिहिर ने कहा कि मृत्यु तो ठीक अठारहवें वर्ष में होगी किन्तु अमुक मास के अमुक दिन में अमुक समय पर जगंली सूअर द्वारा राजकुमार की मृत्यु होगी और उसे कोई भी किसी उपाय से बचा नहीं सकेगा। यह भविष्य वाणी सुनकर सभा में सन्नाटा छा गया। सम्राट विक्रमादित्य ने अपने मन्त्रियों एंव सभासदों को बुलाकर राजकुमार की मृत्यु की चर्चा की तथा उसके बचाव के साधन पूछे। सभी की राय लेकर विक्रमादित्य ने ८० फिट ऊंचा एवं राज प्रासाद बनवाया जिसकी सात मंजिले थीं और जिसमें हर प्रकार कें साधन मौजूद थे, तथा जिसके बाहर हर समय कड़ा पहरा रहता था।

राजकुमार को अनेक दास दासियों सहित उस राजप्रासाद में रहने का आदेश दिया गया और स्वयं विक्रमादित्य नित्य वहीं राजकुमार को देखने जाते थे। समय बीतने लगा और अठारवाँ वर्ष भी राजकुमार को लग गया और तब मिहिर द्वारा कही हुई तिथि एवं मृत्यु का समय भी आ गया। और तब विशेष रूप से समस्त उज्जैन एवं राजदरबार में राजकुमार की मृत्यु की चर्चा हो रही थी। जंगली सूअर किस प्रकार से उस ८० फिट ऊंचे राजमहल में घुस सकेगा जिस के चारों ओर कड़ा पहरा है; सभी लोग मिहिर की भविष्यवाणी असत्य सिद्ध होने की कल्पना कर रहे थे। जब मिहिर द्वारा बताया हुआ राजकुमार की मृत्यु का समय बीत गया तब सम्राट विक्रमादित्य एवं मिहिर तथा अन्य मंत्री लोग राजकुमार को देखने के लिये राजप्रासाद में गये। सातवीं मंजिल तक इन लोगों को कोई भी अशुभ सूचना राजकुमार के विषय में नहीं मिली, तब यह लोग सातवीं मंजिल के ऊपर वाले चबूतरे पर जाने को तैयार हुए। मिहिर ने बड़ें साहस से कहा कि इस मंजिल के उपर वाले चबूतरे पर राजकुमार खून से लथ-पथ हुआ मृत पड़ा हुआ है उस की मृत्यु भी सूअर के द्वारा ही हुई है। मेरी भविष्यवाणी कभी भी मिथ्या नहीं हो सकती, क्योंकि यह भविष्य वाणी मुझ जैसे अल्पज्ञानी एवं साधारण व्यक्ति की नहीं है बल्कि ज्योतिष विद्या के मूल स्रोत भगवान सूर्य देव की वाणी है जो ध्रुव की तरह अटल है। सूर्य नारायण की कृपा से ही मैंने "बृहत्संहिता", "बृहज्जातक", "लघुजातक", "पंचसिद्धान्तिका", "यात्रा पटल", "विवाह पटल" एवं ग्रन्थ समुच्चय आदि-आदि ग्रन्थों की रचना की है। सूर्य देव के वरदान से ही में मैंने प्रवीणता प्राप्त की है अतः मेरे द्वारा कही गयी भविष्वाणी कदापि गलत नहीं हो सकती और राजकुमार की निश्चित मृत्यु हो चुकी है।

यह सुनते ही विक्रमादित्य सातवीं मंजिल के चबूतरे पर गये वहां पर राजकुमार को मरा हुआ देखकर हैरान रह गये। खोज करने पर पता चला कि राजकुमार हवा खाने के लिए अभी-अभी चबूतरे पर गये थे और वहां पर विक्रमादित्य का राज्य ध्वज लहरा रहा था, जिसके नीचे विक्रमादित्य के राज्य चिन्ह वराह (सूअर) की एक मजबूत धातु की मूर्ति थी। राजकुमार उस वराह की मूर्ति के नीचे बने हुए चौंतरे पर ज्यों ही बैठे त्यों ही वहां पर लगा ध्वज और वराह की धातु की मूर्ति एक दम नीचे गिर पड़ी। वराह की धातु की मूर्ति राजकुमार के ठीक सिर पर गिरने से राजकुमार की वहीं पर मृत्यु हो गई। विक्रमादित्य इस घटना को देखकर बड़ा दुखी हुआ और आश्चर्य में डूब गया।

विक्रमादित्य ने झट से मिहिर को उसकी सही भविष्यवाणी के लिए बधाई दी और उसे गले से लगाया। विक्रमादित्य नें उस दिन से मिहिर से पूर्व अपने राज्य चिन्ह "वराह" का नाम और जोड़ दिया। जिससे मिहिर 'वराह मिहिर' के नाम से प्रसिद्ध हो गए।

## आधुनिक विज्ञान के मूल स्रोत :

# आचार्य वराहमिहिर

वैज्ञानिकों में वराहमिहिर और आर्य भट सरीखे प्रखर विद्वानों ने प्राचीन काल में भारत के नाम को उज्जवल किया है। वराहमिहिर के पिता आदित्यदास भी बहुत बड़े गणितज्ञ और ज्योतिषी थे और वराहमिहिर के पुत्र पृथुयश भी विद्वान हुए हैं। पृथुयश को "षटपञ्चाशिका" की टीका भी वराहमिहिर के टीकाकार भट्टोत्पल ही ने की है। वराहमिहिर की "बृहत्संहिता", "समास-संहिता", "बृहज्जातक", "लघु-जातक", "पंचसिद्धान्तिका", "विवाहपटल", "योगयात्रा", "बृहत्यात्रा" और "लघु-यात्रा" प्रसिद्ध है।

"पंचसिद्धान्तिका" के अतिरिक्त शेष ग्रन्थों की टीका दिग्गज विद्वान भट्टोत्पल ने की है। "पंचसिद्धान्तिका" में वराहमिहिर ने लाटाचार्य, सिंहाचार्य, आर्यभट, प्रद्युम्न और विजयनन्दी के मतों को उद्धृत किया है जो उनके पूर्ववर्ती विद्वान थे और जिनके नाम आज वराह के कारण ही सुरक्षित हैं। पैतामाह, गार्ग, ब्रह्म, सूर्य, और पौलिश सिद्धान्तों को भी वराहमिहिर ने ही सुरक्षित रखा है। वराहमिहिर की विद्या और उनका अगाध ज्ञान देखकर यह विचार होता है कि अवश्य ही उन्होंने देश पर्यटन के साथ विदेश गमन भी किया था। यूनानी ज्योतिषियों के प्रति वरहमिहिर के बड़े सम्मान और आदर के भाव हैं ऐसा "बहत्संहिता" में इस श्लोक को वराहमिहिर के उद्धृत करने से पता चलता है–

म्लेच्छाहि यवनास्तेषु
सम्यक् शास्त्रमिदं स्थितम्।
ऋषिवत्तेऽपि पूज्यन्ते
किं पुनर्दैवविद्द्विजः॥

यवन वास्तव में म्लेच्छ हैं, परन्तु शास्त्र में पारङ्गत होने से वे ऋषियों के समान पूजित हैं फिर शास्त्र पारङ्गत द्विज तो देवता सरीखा पूजा का पात्र है।

डाक्टर ए०बैरीडेल कीथ ने लिखा है कि वराहमिहिर कोरे गणितज्ञ, ज्योतिषी या वैज्ञानिक ही हों यह बात नहीं है, उनकी भाषा इतनी प्राञ्जल और कविता इतनी रसिकता और माधुर्य लिए हुए है कि बड़े-बड़े कवियों की उपस्थिति में उनका स्थान बहुत ऊँचा रहेगा। पाठकों के मनोरन्जनार्थ सप्तर्षियों की स्थिति पर वराहमिहिर की "बृहत्संहिता" का निम्नांश हम यहाँ उद्घृत करते हैं जिससे पता चलता है कि साहित्य और विज्ञान का कितना सुन्दर सम्मिश्रण किया गया है। "बृहत्संहिता" में लिखा है-

"जिस प्रकार रूपवती रमणी गूँथे हुए मोतियों की माला और सुन्दर रीति से पिरोये हुए श्वेत कमलों के हार से अलंकृत होती है उसी प्रकार उत्तर-प्रदेश इन तारकों से अलंकृत है। इस प्रकार अलंकृत, वे कुमारियों के सदृश हैं जो ध्रुव के पास उसी प्रकार नाचती और घूमती हैं जिस प्रकार ध्रुव उनको आज्ञा

देता है। मैं प्राचीन और सनातन गर्ग के प्रमाण से कहता हूं कि जब पृथ्वी पर युधिष्ठर का राज्य था तो सप्तर्षि दसवें नक्षत्र मघा में थे और शककाल इसके २५२६ वर्ष उपरान्त है। सप्तर्षि प्रत्येक नक्षत्र में १०० वर्ष रहते हैं और उत्तर पूर्व में उदय होते हैं। सात ऋषियों में से जो उस समय पूर्व का शासन करता है वह मरीचि है उसके पश्चिम में वशिष्ठ है। फिर अंगिरस, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, ऋतु, और वशिष्ठ के समीप सती अरून्धती है।"

यह दिखलाने के लिए कि आर्य ज्योतिषी बहुत पहले से पृथ्वी की आकर्षण शक्ति मानते थे, अलबेरुनी ने 'वृहत्संहिता' को उद्धृत किया है।

वराहमिहिर का भूगोल, खगोल, इन्द्रा-युद्ध, भूकम्प, उल्कापात, वायु धारण, दिग्दाह प्रवर्षण, रोहिणी योग, ऋतु-परिवर्तन, वर्ष में धान्य और धान्य के मूल्य में घटावढ़ी का ज्ञान अत्यन्त अगाध तो था ही और ज्योतिष गणित और फलित के वे पूर्ण पण्डित भी थे, परन्तु अन्य विषयों का ज्ञान भी उनको बहुत था।

हीरा, पद्मराग, मोती और मरकत का बढ़ा विशद वर्णन उन्होंने अपने रत्न-परीक्षा नामक अध्याय में दिया है। हीरा के क्रय-विक्रय के नियम आजकल (Indian or Tavermies Rule or Rule of Square) के नाम से प्रसिद्ध हैं। शुक्र नीति में बहुत पहिले लिखा गया था कि-**"यथा गुरुतर वज्रं तन्मूल्यं रत्तिवर्गतः"**। अर्थात् अगर एक वज्र (हीरा) वजन में १ रत्ती है और उसका मूल्य "क" है तो ४ रत्ती वाले हीरे का मूल्य २ 'क' होगा।

गणितज्ञ होने के कारण वराहमिहिर ने इसे बहुत अच्छी तरह समझाया है। उनके समय में ८ सफेद तिल का १ तन्दुल और ४ तन्दुल का १ गुंजा माना जाता था। वे कहते हैं कि "अगर २० तन्दुल भारी हीरा का मूल्य २ लाख रुपया होता है तो ५ तन्दुल वजनी हीरा ५०,००० रु० का नहीं हो सकता, क्योंकि यहाँ वर्ग-नियम लागू होगा और ५ तन्दुल वाले हीरा का मूल्य २ लाख का (२५×४) या १०० वां=२०००रुपया ही होगा।"

इसी प्रकार मरकत, मोती और पद्म राग के मूल्य निर्धारित करने के नियम एवं उनके अच्छे चिन्ह पहचानने के नियम दिये गये है। आजकल पीले हीरे भारत में नहीं होते और दक्षिणी अफ्रीका से ही आते हैं, परन्तु वराहमिहिर के समय में पीले हीरे भी यहीं पाये जाते थे। लाल, पीले श्वेत और रंगहीन हीरों का वर्णन किया गया है-"रक्तं, पीतं, सितं शैरीषं" इसके अनन्तर वृक्षायुर्वेद में वृक्षों के रोगों और औषधियों का वर्णन है। पशुओं में गौ, अश्व, हाथी, कुक्कुट, कूर्म, काग इत्यादि के लक्षण बताये हैं। काम सूत्र का भी सूक्ष्म विवरण है। वास्तुविद्या प्रासाद-लक्षण, प्रतिमा-लक्षण और प्रतिमा प्रतिष्ठापन पर अलग क्रियात्मक परिच्छेद है।

कई दवाइयां ब्रज लेप के लिये बताई है जिसके लगाने से पत्थर से पत्थर सहस्त्रों वर्षो को चिपक सकता है। इन लेपों का बौद्धकालीन मन्दिर और चैत्यों में पर्याप्त उपयोग किया जाता था और इसलिये वे मन्दिर भली भांति सुरक्षित है।

एक अध्याय शस्त्रपान पर है जिसमें यह बताया है कि हथियारों की धार पर सान किस तरह रखनी चाहिए जिससे थोडे प्रयत्न से धार अत्यन्त तेज हो जाती है। एक अन्य अध्याय "शिलादराण" पर है। चट्टानों को तोड़ने के लिये

मिहिर दुःखित हो समस्त शास्त्र को अग्नि-सात् करने को समुद्यत हो रहे थे कि भद्र-बाहु सांत्वना के लिये जा पहुंचे । अनेक तर्कों से समझाकर उन्हें समाधान दिया । भावी अपरिवर्तनशीलता का विश्वास कर, उसकी प्रतिक्रिया-स्वरूप अभिचार क्रियाओं का उपासक बन गया । फिर एक स्तोत्र द्वारा विघ्नशमन किया गया ।

यह दन्तकथा उन आचार्य वराह-मिहिर के विषय में है, जो अपनी विशिष्ट रचनाओं को समक्ष रख कर प्रयत्क्ष ऐति-हासिक अस्तित्व को प्रकाश की तरह प्रकट कर रहे हैं । इस दन्तकथा का महत्व, जैन जनश्रुति परम्परा तक ही सीमित है । इस प्रकार की कथा वराहमिहिर के विषय में 'ऋषि-मण्डल प्रकरणवृत्ति' में भी दी हुई है । मेरूतुंग सूरि ने तो वराहमिहिर के भाई को ही जैनाचार्य प्रकट किया है, परन्तु उक्त ग्रन्थ में तो वराहमिहिर को भी जैन धर्म दीक्षित बतलाया है, और अपने बन्धु भद्रबाहु से 'सूरि' पद न मिलने के कारण वह ब्राह्मण-धर्मी हो गये, अन्त में वराह मिहिर को भागवती दीक्षा दिलाई गयी है । जब वराहमिहिर का मरण हो गया, वह जैन-द्वेष्टा बनकर राक्षस रूप में श्रावकों को सताने लगे, इस पर भद्रबाहु ने "उपसर्ग हर-स्तोत्र" की रचना की । इस कथा में जैन-धर्म की महत्ता की दृष्टि से ब्राह्मणत्व की अवमानना प्रकट हुई है । इस बात की उपेक्षा की जाये, तो भी यह विचारणीय है कि भद्रबाहु और वराह-मिहिर का काल साम्य भी सम्भव है या नहीं, फिर ही वराहमिहिर के बन्धत्व का प्रश्न उपस्थित हो सकता है । उपर्युक्त कथा संग्रहों में वराहमिहिर को पाटलि पुत्र का अधिवासी प्रकट किया है । प्रथमतः यही भ्रामक बात है । आज तो सन्देह के लिये भी अवसर नहीं है कि वराहमिहिर कापित्थक (कायथा) ग्रामवासी और उज्जैन मण्डलान्तर्गत ही थे । प्रमाण के लिये उनके पुत्र पृथुयश स्वयं हैं । स्वयं जैन समय गणना के अनुसार आवश्यक-सूत्र, कल्प-सूत्र, दशवैकालिक, एवं उपसर्ग-हरस्तोत्र का प्रणेता, निर्युक्तियों का निर्माता भद्रबाहु, वीर निर्वाण काल के १७० वर्ष पश्चात लगभग ७६ वर्ष की वय में दिवंगत हुये थे, अर्थात विक्रम-संवत ३०० वर्ष पूर्व ही, जब कि वराह-मिहिर ५०५ वि० संवत के प्रमाणित है, फिर मेरूतुंग की कथा में जिस नन्द राजा के आश्रय में वराह-मिहिर को प्रस्थापित किया गया है, वह कैसे संगत हो सकता है ? जो वराह मिहिर आदित्यदास तनय होकर उन्हीं से ज्ञान प्राप्त कर सूर्य से वर प्राप्त करता है, और ज्योतिष के ग्रंथों में शिव-विष्णु-सूर्य आदि की स्तुति करता है, उसे जैन धर्म-दीक्षीत बतलाया जाना, और असुर भूत-प्रेत योनि तक में प्रकल्पित करना, सत्य पर आवरण डालकर अनर्गल प्रचार के अतिरिक्त और क्या हो सकता है ?

परन्तु कहा जा सकता है कि भद्रबाहु भी एक नहीं दो थे, प्रथम भद्रबाहु यशोभद्र-सूरि के छात्र, एवं चन्द्रगुप्त-मौर्य कालीन थे । इससे स्पष्ट है कि प्रथम भद्रबाहु का छटी शताब्दी के वराहमिहिर से कोई सम्बन्ध नहीं । जिन निर्युक्ति आदि के निर्माता भद्रबाहु हैं, वे यदि प्रथम भद्रबाहु होते तो कहीं वराह-मिहिरादिक का, या हेमचन्द्र के ग्रन्थों में उक्त भद्रबाहु का अवश्य उल्लेख करते । जिन लोगों की दृष्टि में द्वितीय भद्रबाहु का छटी शताब्दी में अस्तित्व है, वे भद्र-बाहु को ब्राह्मण कुलोत्पन्न ही स्वीकार करते हैं । सम्भव है, उस वराहमिहिर के भ्राता हों ? बाद की जैन रचनाओं में जो श्वेताम्बरीय हैं, उनमें तथा उपर्युक्त ग्रन्थों

कें अतिरिक्त संघतिलक सूरि कृत- "सम्यक्त्व सप्ततिका" आदि में जिन भद्रबाहु का उल्लेख है वह यही द्वितीय हो सकते हैं। संघतिलक सूरि की यह गाथा प्रकट है–

**"तत्थय चऊदस विज्जाठाण पारगे छक्कम्म मम्मविऊ पयईए भद्धओ भद्दबाहु नाम माहणो हुत्था। तस्सय परम पिम्म सयसीरूह मिहरो वराह मिहरो नाम सहोयरो"** परन्तु भद्रबाहु ने स्वयं अपने किसी भी ग्रन्थ आदि में अपना समयादि कहीं अंकित नहीं किया है।

इस पर भी यदि कालक-कथा, एवं कल्पसूत्र (१४८ सूत्र) आदि की विक्रम कालारम्भ की कल्पना से गणना करकें भद्रबाहु कें समय पर विचार किया जाये तो अनेक भ्रामक बातें उपस्थित हो जाती हैं। सूत्र की कल्पना से भद्रबाहु १२५ वर्ष से ऊपर की वय के ठहरते हैं और वराहमिहिर भी १०० से कम नहीं। यदि भद्रबाहु ५० वर्ष कें लगभग वराहमिहिर से बड़े बना दिये जायें तो जैन परम्परायें उनके साथ सु-संगत हो जाती है, किन्तु मेरूतुंग या अन्य ग्रन्थकर्त्ता स्वयं वराहमिहिर को लघु-बन्धु कहकर ही स्वीकार करते हैं। इस प्रकार जैन ग्रन्थों की विभिन्न चर्चाएँ स्वयं ही अपनी प्रस्थापित कल्पना को प्रमाणित करने में असमर्थ हो जाती हैं तब वराहमिहिर के जैन होने या भद्रबाहु कें बन्धुत्व की दन्त कथाएँ सर्वथा निरर्थक और तथ्यहीन हो जाती हैं और यह निर्विवाद है कि वराहमिहिर छठी शती में अपनी असीमित एवं चमत्कृतिकर प्रतिभा के प्रकाश से भू-मण्डल को ज्योतिर्मय बनाये हुए थे। अवश्य ही "कालिदास-त्रयी" की तरह वराहमिहिर द्वैत हो तो यह बात भिन्न है। प्रथम वराह मिहिर विक्रमकालीन हो सकेंगे। "पंचसिद्धान्तिका" में वर्णित चर्चा से इस आशंका कें लिए अवसर है कि एक वराह मिहिर बृहत्-संहिताकार से पूर्ववर्ती भी हो सकतें हैं। यद्यपि वे चाहे किसी विक्रम सभा की नवरत्न मालिका में परिगणित किये जाते हों या न हों, परन्तु स्वतः वे एक महान रत्न थे, जिनमें अलौकिक आलोक पुंजीभूत हो गया था। "ज्योतिर्विदाभरण" के प्रणेता ने वराहमिहिर को विक्रम की नव रत्न-मालिका में पिरो दिया है। स्वतः वराहमिहिर ने कहीं भी उल्लेख नहीं किया है और द्वितीय चन्द्रगुप्त की भी कहीं चर्चा नहीं होने देतें हैं। पराश्रित-प्रकाश की अपेक्षा वे स्वतंत्र प्रतिभा-वैभव से ही ज्योतिष-जग पर सहस्त्र-रश्मियों की दैदीप्यमान आभा प्रसारित कर रहे हैं।

वराहमिहिर कें ज्योतिर्विज्ञान पर, अतएव इस देश पर, अनन्त उपकार हैं। इस उपकार भार से हम समस्त भारतीयों का गर्वोन्नत मस्तक भी उनके समक्ष सादर विनयवत बना हुआ है।

**न सांवत्सरपाठी च नरकेषूपपद्यते।**
**ब्रह्मलोकप्रतिष्ठां च लभते दैवचिन्तकः॥**

–वराहमिहिर

जो व्यक्ति ज्योतिष शास्त्र का अध्ययन करता है अथवा देवचिन्तक (भाग्य कें विषय में चिन्तन करने वाला) होता है, वह मरने कें बाद ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठा पाता है और उसे नरक में नहीं जाना पड़ता।

# आचार्य वराहमिहिर का वंश परिचय

## आचार्य वराहमिहिर के पूर्वज

आचार्य वराहमिहिर गौड़ ब्राह्मण थे और इनके पूर्वज मूल रूप से श्रीनगर (काश्मीर) के निवासी थे। कालान्तर में यह लोग वहां से मालव भूमि में "श्री हट्ट" नामक गांव में आ बसे और तब से यह 'श्री गौड़' मालवीय नाम से प्रसिद्ध हो गये। इन्हीं 'श्री गौड़' मालवीय परिवार में पं० आदित्य दास नामक एक विद्वान ब्राह्मण भी थे। पं० आदित्य दास ने सपत्नीक भारत के चारों धामों (बद्रीनाथ, द्वारका, रामेश्वरम् एवं जगन्नाथ) की यात्रा का संकल्प किया और घर से पैदल चल पड़ें। श्री जगन्नाथ जी के दर्शन करके यह दम्पत्ति पद यात्रा करता हुआ पाटलि-पुत्र (पटना) आ पहुंचा। यहां हर प्रकार से सुविधा-जनक समझ कर इन लोगों ने यहीं जीवन बिताने का निश्चय कर लिया।

एक रात्रि को हुए स्वपन के अनुसार इन्होंने अगले दिन प्रातः एक कुंए के अन्दर से एक पटल पर विराजमान भगवती लक्ष्मी जी की प्रतिमा को बाहर निकाला और उसी कूएं को मिट्टी से बन्द करके उसके ऊपर उस मूर्ति को स्थापित कर दिया। उस मूर्ति के साथ दो अन्य मूर्तियों (महा-काली एवं महा सरस्वती) की स्थापना भी इन्होंने वहीं पर की, जिसे आज भी छोटी "पटन देवी" के नाम से पटना सिटी में पूजा जाता है।

## आचाय वराह मिहिर का जन्म और विवाह

भगवत्कृपा से इस दम्पत्ति के यहां इसी नगर में एक महान तेजस्वी बालक ने जन्म लिया। अपने पिता के लिए महान अनिष्टकारी जानकर इस दम्पत्ति ने उस नवजात शिशु को लकड़ी की एक हण्डिया में बन्द करके गंगा जी में बहा दिया। दैव योग से वह हण्डिया समुद्र में बहती हुई सिंहल द्वीप में जा पहुंची, जहाँ पर उसे मय दानव की पुत्री छाया ने पकड़ लिया। ईश्वर कृपा से हण्डिया में पड़ा हुआ बालक जीवित ही मिल जाने से मय दानव ने उसे अपना पुत्र बना लिया क्योंकि उसके यहां केवल कन्या संतान ही थी।

मय दानव ने अपनी समस्त मन्त्र, तन्त्र, ज्योतिष एवं योग विद्याओं को इस बालक को सिखा कर इसे इन सभी में प्रवीण कर दिया और तत्पश्चात् अपनी कन्या का विवाह भी इसी से कर दिया। कुछ समय बाद इस नवीन दम्पत्ति के यहाँ एक बालक ने जन्म लिया और उसके नामकरण आदि संस्कार में इस नवजात शिशु के पिता को अपने जन्म एवं हण्डिया द्वारा जीवन प्राप्त होने का रहस्य ज्ञात हुआ। सर्व विद्या सम्पन्न इस युवक को अपनी जन्म भूमि एवं अपने माता-पिता के दर्शन करने की तीव्र इच्छा उत्पन्न हुई और वह योग विद्या द्वारा कुछ ही क्षणों में पाटलि-पुत्र पहुंच

गया। पं० आदित्य दास और उनकी पत्नि ने जब अपने पुत्र को देखा तब वह बड़े प्रसन्न हुए और अपने किये पर पश्चाताप भी करने लगे।

विद्वान पिता ने पुनः अपने पुत्र को विधिवत संस्कारों द्वारा शुद्ध किया और इसका नाम वराह मिहिर रखा। तत्पश्चात अना एवं गार्गी नामक कन्याओं से दो विवाह और भी आचार्य वराह मिहिर ने किये। यूं तो बचपन से ही मय दानव से ज्योतिष आदि सभी विषयों में आचार्य वराहमिहिर पारंगत हो चुके थे, फिर भी इनके पिता ने इन्हें और भी शिक्षा देकर ज्योतिष शास्त्र का अद्भुता विद्वान बना दिया। इन्हीं वराह मिहिर आचार्य ने 'बृहत्संहिता' तथा 'बृहज्जातक' आदि अनेक ग्रन्थों की रचना करकें अपने कुल को मिहिर के समान प्रकाशित किया।

## सम्राट विक्रमादित्य से मिलन :

देशाटन के विचार से एक समय आचार्य वराह मिहिर पाटलि-पुत्र से निकल पड़ें और काशी, मथुरा एवं पुष्कर आदि तीर्थों में भ्रमण करते हुए उज्जयिनी (उज्जैन) आ गये। यहां पर इनकी अद्भुत विद्वता एवं ज्योतिष शास्त्र में पारंगता से प्रभावित होकर भूपति विक्रम ने इन्हें अपनी सभा में नवरत्न के रूप में सम्मानित किया और यह वहीं रहने लगे।

## देवगुरु बृहस्पति का मिलन और इन्द्रलोक में गमन

एक समय देवगुरु बृहस्पति स्वयं आचार्य वराह मिहिर की ख्याति सुनकर इनसे मिलने के लिये आये और उन्होंने इनसे प्रश्न पूछा कि कृपया बताइये इस समय देवगुरु कहां पर होगें ? आचार्य वराह मिहिर ने तुरन्त अपनी विद्या के बल से प्रश्न फल कहा कि महाराज आप ही तो देव गुरु हैं। इस पर बृहस्पति जी बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने इस घटना का उल्लेख इन्द्र की सभा में भी किया। देवताओं के राजा इन्द्र ने आचार्य वराह मिहिर को अपनी सभा में बुलाने के लिए देवगुरु से प्रार्थना की। देवगुरु बृहस्पति की आज्ञा पर आचार्य वराह मिहिर उनके साथ पंच भौतिक शरीर में ही इन्द्र लोक गये और अपने साथ देवलोक वासियों की साड़े बासठ हजार जन्म कुण्डलियां भी बनाकर ले गये। इन्द्र ने इनका बड़ा सम्मान किया और इन्हें सादर विदा किया।

## आचार्य वराह मिहिर का फलित ज्योतिष से विश्वाश उठ जाना

सम्राट विक्रमादित्य एवं एक तेली के घर एक ही समय में पुत्रों ने जन्म लिया। आचार्य वराह मिहिर ने दोनों की जन्म कुण्डलियां देखकर एक समान राज योग की भविष्य वाणी की। कालान्तर में तेली का बालक तो दीन-हीन अवस्था में ही रहा और राजा का बालक राज सुख भोगने लगा। इस पर सम्राट विक्रमादित्य ने आचार्य वराह महिर की भविष्यवाणी को असत्य बताया। आचार्य इस घटना से लज्जित हो गए और उन्होंने अपने सभी फलित ज्योतिष के ग्रन्थों को शिप्रा नदी में सदा सर्वदा के लिए बहा देने का निश्चय कर लिया। इसी मध्य देव गुरु बृहस्पति ने आकर इन्हें समझाया और ऐसा न करने कि आज्ञा दी। देव गुरु ने बताया इन दोनों जन्म कुण्डलियों में ग्रहों कि स्यन आदि अवस्था का विचार न करने से यह फलादेश गलत सिद्ध हुआ है, अतः ग्रहों का सूक्ष्म फल उनकी अवस्था के अनुसार ही कहना चाहिए। इतना कहकर देव गुरु इन्हें आर्शीवाद देकर वहां से आलोप हो गये।

आजकल वारूद की आवश्यकता होती है परन्तु उस काल में कई औषधियों का क्वाथ बनाया जाता था जो कई चूर्णों के साथ चट्टानों पर छिड़का जाता था जिसके कारण चट्टान इतना गलने लगता था कि वह काटे जाने योग्य हो जाता था। "बृहत्-संहिता" का ७६ वां अध्याय गंधी और अत्तारों के कार्य से सम्बन्धित है। बकुल, उत्पल, चम्पक, प्रतिमुक्तक के गन्ध किस प्रकार बनाने चाहिएँ और किस अनुपात से क्या-क्या वस्तु डालनी चाहिए इसका विशद विवेचन है। लौष्ठक प्रस्तार (Mathematical Calculus) से सहस्त्रों प्रकार की सुगन्धियाँ बनाने की पूरी विधि लिखी गई है। यही कारण है कि उज्जयिनी की बनी सुगंधित वस्तुएं, गन्ध, धूप एवं अनुलेपन की सामग्रियां बरोच होकर अलैकजैंड्रिया होती हुई उन दिनों ग्रीस और यूरोप पहुँच कर अत्यन्त प्रसिद्धि पारही थीं। क्रियात्मक रसायन (Applied Chemistry) और देश की व्यापारिक अवस्था को सुधारने की इच्छा से लिखे हुए इस अध्याय का प्राचीन भारत के इतिहास में कम महत्व नहीं है।

प्रकाश के मूर्च्छन एवं किरण विघट्टन (Reflection of Light) का भी अच्छा विवरण "बृहत्संहिता" में मिलता है। आजकल एंटम (atom) और एलक्ट्रोन (Electron) परमाणु देखने में सबसे छोटी वस्तु (The Minimum Visible) मानी जाती है। वराहमिहिर के शिल्पशास्त्र में परमाणु तिरछी सूर्य किरण की मोटाई को बताया गया है। परमाणु का हिसाब वराहमिहिर ने इस प्रकार बतलाया है—

८ परमाणु = १ रजस। ८ रजस = १ बालाग्र (बाल)। ८ बालाग्र = १ लिक्ष। ८ लिक्ष = १ यूक। ८ यूक = १ यव। ८ यव = अंगुली। २४ अंगुली = १ हस्त।

आचार्य सर ब्रजेन्द्रनाथ सील ने लिखा है कि इस तरह ईसा पूर्व काल में ही जब ग्रीक गणित और विज्ञान अति साधारण था-एक हिन्दू वराहमिहिर ने एक तिरछी पतली सूर्य किरण की मोटाई की कल्पना कर ली थी। वराहमिहिर का उन दिनों का एक परमाणु वर्तमान इंच ३॥ का लाख वां हिस्सा है। पाश्चात्य विज्ञान अभी तक इससे बहुत आगे नहीं जा सका।

वास्तव में आचार्य वराहमिहिर विद्वान, साहित्यिक, कवि, वैज्ञानिक, ज्योतिषी एवं व्यापारिक रसायनज्ञ ही नहीं थे, वे उन महापुरूषों में थे जिनका नाम प्राचीन भारत के निर्माताओं में सदा ही प्रमुख बना रहेगा। कोई भी सम्राट उनको अपने नवरत्नों में स्थान देकर साम्राज्य को गौरवान्वित करने का प्रयत्न करता।

---

**अविदित्वैव यः शास्त्रं दैवज्ञत्वं प्रपद्यते।**
**स पंक्तिदूषकः पापो ज्ञेयो नक्षत्र सूचकः॥**

**—वराहमिहिर**

जो व्यक्ति ज्योषि शास्त्र के अध्ययन के बिना ही, केवल ग्रहों की स्थिति को जान लेने मात्र से ही अपने आप को दैवज्ञ कहलाए, वह पापात्मा और समाज के लिए कलङ्क है। ऐसे व्यक्ति दैवज्ञ न होकर 'नक्षत्र सूचक' कहलाने के हकदार हैं।

# आचार्य वराहमिहिर और जैन साहित्य में उनका वर्णन

●

ज्योतिर्विज्ञान के पूर्ववर्ती आचार्यों में वराहमिहिर का स्थान असाधारण महत्व रखता है। यह महापुरुष मालव-महि-मंडल में उत्पन्न होकर केवल ज्योतिर्विदों के समाज में ही नहीं, विश्व के इतिहास और संस्कृति के समाराधकों में भी अपनी ग्रंथ सम्पत्ति के द्वारा पञ्च भौतिक शरीर के शत सहस्त्राब्दियों के पूर्व त्याग देने के पश्चात् भी यशः शरीर को चिरजीवी बनाए हुए हैं और अनन्तकाल पर्यन्त बना रहेगा।

संस्कृत-साहित्य के पश्चिम-देशीय विद्वान-विवेचक मेकडॉनल्ड ने वराहमिहिर के विषय में यह प्रतिपादन किया है कि वे उज्जैन में उत्पन्न हुए थे और उन्होंने अपने गणित शास्त्रीय लेखन का कार्य लगभग ५०५ ई० सन में आरम्भ किया था, और वराहमिहिर की विशाल एवं अमर कृति–"बृहत्संहिता" ग्रन्थ के एक टीकाकार का यह कथन है कि आचार्य का निर्वाण ५८७ ई० सन में हुआ था। वराहमिहिर ने अपने पूर्ववर्ती जिन आचार्यों का उल्लेख किया है उनमें—**"मय-यवन-मणित्थ सत्य, पूर्वोदिवस करादिषु वासराः प्रदिष्ठाः"** मयाचार्य के नाम और यवनाचार्य के उल्लेख से स्पष्ट ज्ञात होता है कि ये दोनों ही वैदेशिक थे। स्वभावतः 'यवनाचार्य' के ज्योतिर्विज्ञान का वराहमिहिर पर बहुत कुछ प्रभाव पड़ा है, उन्होंने अपने 'होरा-शास्त्र' को सर्वथा ग्रीक के निकट-सम्पर्क से अपना लिया था और ग्रन्थ में उसकी संगति लगाते हुए **'होरेत्यहोरात्र विकल्प मेके'** कह कर अपने शब्द-व्युत्पत्ति शास्त्र की विशेषज्ञता का भी प्रमाण उपस्थित कर दिया है। अर्थात्–"कोई होरा इस शब्द को 'अहोरात्र' का वैकल्पिक (अपभ्रंश) रूप भी कहते हैं।" यही क्यों उन्होंने 'बृहज्जातक' और अन्य पुस्तकों में भी यवनों के प्रेरित-शब्दों को उदारतापूर्वक अपनाया है। उन्होंने अनेक राशिनामों को उसी रूप में वर्णित कर ग्रन्थ में उन्हें संस्कृत में गूँथकर अपना लिया है। ग्रीक ग्रह-नामों में यथा आरिस के पर्याय में आर (मंगल का नाम), हिलिआॅस के बदले हेलि (सूर्य), 'केन्ट्रोन' के स्थान पर 'केन्द्र' और डायोमेट्रोन के स्थान पर 'जामित्र' आदि। भारतीयों ने सर्वदा अपनी सहानुभूतिक भावना के वशीभूत हो, जाति, देश, धर्म, सम्प्रदाय की संकुचित भावना से ऊपर रहकर–**'गुणाः पूजा स्थानं गुणिषु न च लिंगं न च वयः'** गुण-ग्राहकता का, सहृदयता का परिचय, सद्भावना पूर्वक उनके उल्लेख-सहित किया है। इससे ज्यादा और क्या प्रमाण हो सकता है, जब स्वयं वराहमिहिर यह स्वीकार करते हैं कि–

**"म्लेच्छाहि यवनास्तेषु सम्यक्**
**शास्त्र मिदं स्थितम्।**
**ऋषिवत्तेऽपि पूज्यन्ते,**
**किं पुनर्दैव विद्विजः॥"**

'सूर्य-सिद्धान्त' कर्ता-मयाचार्य भी वराह मिहिर के प्रथम हुये और वे भी बाहरी माने जाते हैं। स्वयं उन्हीं के शब्दों में


★

उन्होंने बतलाया है कि—**"अल्पावशिष्टेतु कृते मय नामा महासुरः।"** इससे ज्ञात होता है कि वे 'असुर' संज्ञा से ज्ञापित थे।

(मय के विषय में अन्य कुछ विद्वानों का मत है कि वे बाहरी थे, किन्तु उनका शासन उज्जैन पर था। मय नाम का एक राजा था जो उज्जैन में राज्य करता था। इसकी संगति इसमें यों लग जाती है कि जिस 'मय' नामा 'महासुर' ने 'सूर्यसिद्धान्त' का निर्माण किया था, वह 'विक्रम' कालीन है। उज्जैन की खुदाई में एक मृत्तिका की मुद्रा मिली थी, जिस पर मय-या-महीराजा-या-रावण ऐसा ही कुछ अंकित है। सम्भव है यह 'मय-राज' ही हो, जो वराहमिहिर के पूर्ववर्ती होने के कारण तथा ज्योतिर्विज्ञान के आचार्य होने के कारण वराहमिहिर द्वारा स्मरण किया गया हो।)

इसी प्रकार रोमक-सिद्धान्त आदि भी, अ-भारतीय विद्वानों के निर्मित ग्रंथ है।

(रोमक सिद्धान्त के विषय में कई विद्वानों की मान्यता है कि वह 'ग्रीक' है। पोलिश और रोमक यह नाम भी इसी के सूचक हैं। मालूम होता है कि विक्रमकाल में उज्जैन का रोम से व्यापारिक सम्बन्ध था, उसी के फलस्वरूप यह साहित्यिक आदान-प्रदान हुआ होगा, और उज्जैन से होने के कारण ही वराहमिहिर द्वारा ये प्रचारित हुए होंगे।)

वराहमिहिर ने सत्याचार्य को अपने से विशेष प्रामाणिक बतलाते हुये-**'सत्यंतु सत्योदित्म्'** अथवा **'सत्योक्तेग्रह मित्थं'** आदि सम्मानपूर्वक सत्यवादी सत्याचार्य कहा है। सत्याचार्य की कोई रचना वैसे संस्कृत में प्रकट रूप से कहीं उपलब्ध नहीं है। केवल एक मद्रासी श्री निवास अययर नामक पंडित के पास 'सत्यसंहिता' ग्रंथ की तमिल लिपि की ताड़पत्र पर लिखी प्रति है, उसमें अध्यायों के अन्त में यही लिखा है कि सत्याचार्य की रचित यह संहिता, विक्रमादित्य के समय उज्जैन में निर्मित हुई है। वराहमिहिर ५०५ ई० सन के स्वीकार किये जाते हैं तो अवश्य ही ज्ञात होता है कि सत्याचार्य उनसे प्रथम पर्याप्त प्रख्याति रखते थे और उनकी रचनाओं की सत्यता का वराहमिहिर पर पूरा प्रभाव था। सम्भव है वे प्रथम शताब्दी में होंगे। इतना तो स्पष्ट है कि वे पांचवी या छटी शताब्दी से प्रथम थे और वह प्रथम विक्रम-कालीन थे।

वराहमिहिर के प्रख्यात ग्रंथों में 'पंचसिद्धान्तिका' गणित का संग्रह गौरव-ग्रंथ है। इसकी प्रसिद्धि का श्रेय, डा० थीबो और म० म० सुधाकर जी द्विवेदी को है, परन्तु आचार्य के "बृहत्संहिता" और "बृहज्जातक" ग्रंथ की लोक प्रियता सर्वाधिक है। "बृहत्संहिता" ज्योतिष के संहिता विभाग की महत्वपूर्ण कृति है। इसका प्रमाण स्वरूप इतिहासज्ञ भी सादर उल्लेख करते हैं। लगभग सन १८६४ वर्ष पूर्व 'कॅर्ण' ने इसको प्रकाश में रखने का प्रयत्न किया और एशियाटिक-सोसायटी के 'जर्नल' में इसका सम्पूर्ण अनुवाद किया गया। वराहमिहिर के और भी कई ग्रन्थ थे, परन्तु वे अप्राप्य हैं। तथापि संहिता ग्रन्थ ने उनकी महत्ता को सर्वोपरि स्थान प्रदान कर दिया है। सहस्राधिक आर्याप्रणित यह संहिता ग्रन्थ वास्तव में अपूर्व एवं नामानूरूप बृहत् ही है। इस ग्रन्थ के एक टीकाकार भट्टोत्पल हो गए हैं, जिन्हें प्रकाश में लाने का श्रेय म. म. स्व. सुधाकर जी द्विवेदी को है। इन भट्टोत्पल ने वराहमिहिर को मगध के शाकद्वीपीय वंशावतंस काम्पिल्य नगरी वासी होना बतलाया है; परन्तु यह सर्वथा भ्रमपूर्ण है, क्योंकि इनके सम्बन्ध में स्पष्ट प्रमाणित है कि ये 'आदित्यदास'

के पुत्र थे, और 'कापित्थक' नामक अवन्तीदेशीय एक लघु-ग्राम के अधिवासी थे। आदित्यदास (अपने पिता) से ही इन्होंने पांडित्य प्राप्त किया था, (**आदित्य दास तनय स्तदवाप्त बोधः कापित्थकः**) इसका प्रमाण 'षटपंचाशिका' के निर्माता 'पृथुयश' ने स्वयं दिया है, जो आचार्य वराहमिहिर के पुत्र ही थे। भट्टोत्पल ने जिसे 'काम्पिल्य' समझ कर वर्तमान कालपी आदि की क्लिष्ट कल्पना कर डाली है, वह वास्तव में 'कापित्थक' शब्द है, और यह 'कापित्थक' वर्तमान कायथा के रूप में उज्जैन के निकट ही मालवे का एक ग्राम है, जो आज भी अस्तित्व रखता है। वराहमिहिर के विषय में इन प्रमाणों के अतिरिक्त कुछ किम्वदन्तियां भी विचित्र प्रचलित रही हैं। १४ वीं शताब्दी में मेरुतुंग सूरि ने, जो प्रबन्ध चिन्तामणी ग्रन्थ जैसे जनश्रुतियों के सफल संग्रह कर्ता रहे हैं, वराहमिहिर के विषय में यह कथा संग्रहीत की है–

पाटलीपुत्र नगर में वराह नामक एक ब्राह्मण का लड़का था, जो जन्म से शकुन ज्ञान में स-श्रद्ध था। वह एक रोज किसी वन में चला गया। वहाँ सहज ही एक पत्थर पर बैठे-बैठे उसने एक लग्न कुण्डली बना दी, और उसे मिटाना भूलकर वह वापिस घर चला गया। रात को उसे भोजनावसर पर यह स्मरण हुआ कि उस पत्थर पर लग्न वैसे ही बना हुआ रह गया है, तुरन्त निर्भीकता के साथ उस एकान्त जंगल में वह चला गया, जिस पत्थर पर लग्न बनाया था। क्या देखता है कि उस पर एक सिंह बैठा हुआ है। वह डरा नहीं, पास जाकर सिंह के नीचे से हाथ डालकर पत्थर पर बनाया हुआ वह लग्न मिटा दिया। सहसा सिंह अलोप हो गया, और उस स्थान पर सूर्य उपस्थित हो गये। वराह की निर्भीकता और ज्योतिष के प्रति दृढ़ आस्था देखकर उन्होंने प्रसन्नता पूर्वक वर मांगने को कहा। वराह ने प्रार्थना की कि मुझें समस्त ग्रह-नक्षत्र मण्डल प्रत्यक्ष दिखला दीजिए। सूर्य अपने साथ ही वराह को आकाश-लोक मे लिवा ले गये। समस्त ज्ञान देकर साल भर के बाद, वराह को पुनः स्थान पर लाकर छोड़ दिया। मिहिर (सूर्य) की कृपा से ज्ञान लाभ हो जाने के कारण वराह के नाम के साथ मिहिर भी जुड़ गया, और श्री नन्द नामक नृपति के आश्रय में वराह मिहिर ने 'वाराही संहिता' का निर्माण किया। (किन्तु कुछ लोगों का मत है कि वराह नामक पंडित का मिहिर पुत्र था, जिसकी विक्रम राजसभा की परम प्रतिभा-शालिनी 'खना' नामक विदूषी ज्योति-विज्ञान-विदा से मैत्री थी, किन्तु वराह को यह सह्य नहीं था, सो 'खना' ने अपनी जिह्वा काटकर सभा का त्याग कर दिया था।)

एक समय की बात है कि वराह मिहिर के घर पुत्रोत्पन्न हुआ था, इसलिये घटिका आदि रखकर उसने पत्रिका द्वारा यह निश्चिय किया कि यह बालक पूर्ण शतायु है। उसके आनन्दोत्सव में जनता से लेकर श्रेष्ठ वर्ग-तक के लोग सभी आये, किन्तु वराहमिहिर का छोटा भाई जैनाचार्य भद्रबाहु नहीं गया। यह चर्चा जिन भक्त शकटाल-नामक मंत्री के आगे उलहने के रूप में कही गई, तब भद्रबाहु से इस बात का यह मर्म ज्ञात हुआ कि बालक की आज से २० वें दिन मृत्यु है, यह जानकर भद्रबाहु नहीं गये, यह बात वराहमिहिर को भी ज्ञात हो गयी। वह सतर्क रहा। परन्तु २० वें दिन रात में सोते बालक पर दरवाजे की अर्गला (रोकने की 'आगल' लकड़ी) गिर जाने से उसकी मृत्यु हो गई। वराह

## "पाञ्चजन्य" शंख की प्राप्ति

भगवान कृष्ण के परम धाम पधारने पर भगवान ने अपना "पाञ्चजन्य" नामक शंख अग्नि में डाल दिया था। अग्नि देवता ने प्रसन्न होकर वही शंख अग्नि होत्रादि करने वाले महर्षि सान्दिपनी को प्रदान कर दिया था। दैवयोग से वही शंख आचार्य वराहमिहिर को मिल गया और यह उसे विक्रमार्क की युद्ध यात्रा के समय शत्रु दल को नाश करने के लिए बजाया करते थे।

## आचार्य वराह मिहिर के पुत्र पृथुयश को इन्दौर का राज्य मिलना

श्री पृथुयश अपने पिता की भांति ही लोक प्रसिद्ध विद्वान थे। एक समय वह सम्राट विक्रमादित्य की सभा में गये और उनकी गोदी में चढ़कर बैठ गये। सम्राट ने उन्हें प्रसन्न होकर इन्दौर का राज्य प्रदान कर दिया। आचार्य वराहमिहिर ने कहा कि हम लोग ब्राह्मण हैं, हमारे से राज्य नहीं होगा, हम तो सरस्वती के पुजारी हैं। सम्राट विक्रम ने कहा कि मैं इस बालक को जो वस्तु एक बार दे चुका हूं वह वापिस कैसे ले सकता हूं। अतः आपको मेरी प्रार्थना माननी ही होगी।

इस पर आचार्य वराह मिहिर ने इन्दौर राज्य का भार वहां के दक्ष मन्त्रियों के जिम्मे लगा दिया और वहां से प्राप्त आय से अवन्ति (उज्जैन) में "आदित्य दास" नाम के विद्यालय की स्थापना की और प्रत्येक वर्ष दस हजार छात्रों के लिए छात्रावृत्तियों की व्यवस्था कर दी।

## आचार्य वराह मिहिर के वंशज

श्री पृथुयश के पुत्र विद्वद्वर श्री शेष जी हुए और क्रमशः इनके पुत्र श्री गणपति, श्री नारायण, श्री निधिरूप, श्री सोमकान्त, श्री श्रीधर, श्री रघुनाथ, श्री बलभद्र, श्री मान्धाता, श्री शालग्राम, श्री भारद्वाज, श्री कृष्ण दास एवं श्री कुसुमाकर आदि-आदि विद्वान हुए।

श्री पृथुयश के बाद लगभग १४५ वीं पीढ़ी में होने वाले विद्वान पं० बाल कृष्ण लाल ने सं० १९७२ वि० (सन् १९१५ ई०) की आषाढ़ शुक्ल षष्टी को पटना नगर में 'वराह मिहिर पुस्तकालय' की स्थापना की, जिसके तत्वावधान में आचार्य वहारमिहिर की जीवनी को प्रकाशित किया गया।

सम्राट विक्रमादित्य द्वारा आचार्य वराह मिहिर के पुत्र श्री पृथुयश को प्रदान किया गया इन्दौर का राज प्रशासन श्री पृथुयश के वशंज श्री नन्दलाल मालवीय तक उनके आधीन चलता रहा। श्री नन्दलाल ने प्रसन्नता पूर्वक इस राज्य को मराठा वीरों को सौंप दिया और मराठा शासकों का देश की स्वतंत्रता प्राप्ती के कुछ काल बाद तक इन्दौर पर शासन रहा।

# बुजुर्ग मेहर और वराहमिहिर

ईसा की छटी शताब्दी में ईरान का बादशाह नौशेरवां था । उसके दरबार में यूनान, भारत और ईरान आदि देशों के पच्चीस विद्वान रहते थे । उन विद्वानों में बुजुर्ग मेहर नाम का एक ऐसा विद्वान था जो अपनी योग्यता के कारण नौशेरवाँ का मन्त्री भी था । कुछ लोगों का मत है कि वराहमिहिर ही नौशेरवाँ के दरबार का बुजुर्ग मेहर विद्वान था । वहारमिहिर ने अपने ग्रन्थों में यवनों और अन्य विदेशियों का कई स्थानों पर आदर पूर्वक उल्लेख भी किया है । अतः वराहमिहिर अवश्य अपने जीवन काल में यवन देशों में भ्रमणार्थ गये होंगे । यवनों ने अपनी भाषा में इनका नाम वराहमिहिर के स्थान पर बुजुर्ग मेहर रख दिया होगा ऐसा कई लोगों का मत है ।

डॉ. अजय मित्र शास्त्री ने "फ्रेश लाईट ऑन दी लाईफ ऑफ वराहमिहिर" में लिखा है कि फरिश्ता के अनुसार भारत के राजा ने ईरान के शाह नौशेरवाँ को उपहार में शतरंज खेलने की चौकी और 'पञ्चतन्त्र' ग्रन्थ भेजे थे । नौशेरवां के मन्त्री बुजुर्ग मेहर ने 'पञ्चतन्त्र' ग्रन्थ का अनुवाद पहलवी भाषा में किया था । प्रो. एम. टी. पटवर्धन एवं डॉ. ए. एन. उपाध्याय ने भी बुजुर्ग मेहर को ही वराहमिहिर सिद्ध किया है ।

डॉ. उपाध्याय के मत का उल्लेख करते हुए डॉ. शास्त्री लिखते हैं कि वराह शब्द की उत्पत्ति बृहत् शब्द से हुई है और बृहत् शब्द का मूल उद्गम बृह या वृहद् से हुआ है । ध्वनि-विज्ञान के नियमानुसार बृहत् शब्द ही बराह में बदल गया और यही बराह पुनः वराह हो गया । सम्भव है कि वराहमिहिर का प्रारम्भिक नाम बृहन्-मित्र रहा होगा जो बाद में बृहद्--मित्र हो गया और पुनः बराहमिहिर एवं वराहमिहिर बन गया । वराह शब्द से शुरू होने की बात डा० उपाध्याय के मतानुसार ठीक नहीं बैठती है क्योंकि वराह तो एक पशु (सूअर) का नाम है । दूसरे "बृहत्संहिता" एवं 'बृहज्जातक' में बृहद् शब्द डॉ० उपाध्याय के अनुसार उनकी उपाधी बृहद् के कारण ही रखे गये हैं । इसी बृहद् को यवन लोग बुजुर्ग कहते होंगें । बुजर्ग का अर्थ आयु में बड़ा या पदवी में बड़ा होता है और इसी कारण ईरान निवासी इन्हें बुजुर्ग मेहर कहते होंगे ।

श्री मन्डन मिश्र ने "पञ्चतन्त्र का विश्वभ्रमण" लेख में नौशेरवां के एक सभासद बुरजोये के भारत में आने और "पञ्चतन्त्र" को ईरान ले जाने की घटना लिखी है । श्री मिश्र के मतानुसार बुरजोये ने ही 'पञ्चतन्त्र' का पहलवी में अनुवाद किया था अतः यहां पर हमें बुजुर्ग मेहर के स्थान पर बुरजोये का ही परिचय मिलता है ।

वास्तव में बुजुर्ग मेहर का वराह मिहिर से कोई भी सम्बन्ध नहीं है। 'पञ्चतन्त्र' के लेखक विष्णु शर्मा ने वराह मिहिर का उल्लेख किया है। (उक्तंच वराह मिहिरेण) इसलिए बुजुर्ग मेहर या बुरजोये ने जब इसका पहलवी में अनुवाद किया होगा तब वराहमिहिर के जीवित होने की बात ही पैदा नहीं हो सकती। पञ्चतन्त्र का रचना काल अवश्य ही ईस्वी सन के समय के आस-पास का है क्योंकि वराह मिहिर की मृत्यु ४१ ईसा पूर्व में हुई थी। अतः वराहमिहिर किसी प्रकार से भी ईसा की छटी शताब्दी में नहीं हो सकते है। इसी कारण सन् १८८८ई० में 'बृहत्-संहिता' की हिन्दी टीका करने वाले पं० बलदेव प्रसाद मिश्र ने उपरोक्त ग्रन्थ की भूमिका में यह लिखा है–

"ऐसा कहतें हैं कि फारस के शाह नौ-शेरवां के यहाँ बुजुर्गचमेहर नामक एक वजीर था। इस शाह ने ५३४ ई० से लेकर सन् ५९० ई० तक राज्य किया। इस नाम के साथ वराहमिहिर के नाम का कुछ-कुछ मिलाप होने से कोई-कोई अनुमान कर सकते हैं कि यह इस शाह नौशेरवाँ के सभासद थे। यदि ऐसे आदमी इस बात को जान जाएँ तो उनकी यह धारणा दूर हो जाएगी कि इसी मन्त्री की आशा से विष्णु शर्मा के 'पञ्चतन्त्र' का फारसी में अनुवाद किया गया। इसके अतिरिक्त एक कारण यह भी है कि विष्णु शर्मा जी ने 'पञ्चतन्त्र' में वराहमिहिराचार्य का नाम लिखा है फिर भला वराह मिहिर आचार्य किस प्रकार नौशेरवां के समय के हो सकते हैं।"

इससे सिद्ध होता है कि वराहमिहिर के काल को ईसा की प्रथम शताब्दी में जोड़ने के लिए पाश्चात्य विद्वानों और कुछ एक भूले-भटके भारतीय विद्वानों ने बुजुर्ग मेहर को ही वराहमिहिर सिद्ध करने की हास्यप्रद कोशिश की है।



## दैवज्ञ के लक्षण

सुन्दर कुल में उत्पन्न देखने में प्रिय, सत्यवादी, दूसरों के गुणों का प्रशंसक अर्थात दूसरों के गुणों की निंदा न करने वाला, पूर्ण अङ्गों से युक्त अर्थात अङ्गहीन न हो, सर्वाङ्गसुन्दर अर्थात हाथ, पैर, नख, नेत्र, ठोडी, दन्त, कान, मस्तक, भौं, और शिर यह सब अंग श्रेष्ठ लक्षणों से युक्त हों और शरीर स्थूल तथा रमणीय हो तथा जिस की वाणी गम्भीर अर्थात सार गर्भित हो ऐसे लक्षणों से युक्त दैवज्ञ (ज्योतिषी) ही वास्तव में दैवज्ञ कहलाने के योग्य होता है क्योंकि प्रायः गुण और दोष सब शरीर और आकार के अनुसार ही हुआ करतें हैं।

**आचार्य वराहमिहिर**

# पंच वराहमिहिर

प्राच्य विद्या के विदेशी विद्वानों एवं उनके भारतीय चेलों ने आचार्य वराहमिहिर का काल ईसा की छठी शताब्दी में इसलिये माना है कि यूरोप में होने वाले विद्वानों का काल उनसे बहुत पहले सिद्ध किया जा सकें। वास्तव में आचार्य वराहमिहिर ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी में विद्यमान थे। विदेशियों की जब इस जाल साजी का रहस्य भारतीय विद्वानों द्वारा खुलने लगा तब उन्होंने दो वराह मिहिरों की कल्पना करके लोगों को भ्रम में फंसा दिया और अपना उल्लू सीधा कर लिया। ऐसा ही इन विदेशियों ने विख्यात भारतीय ज्योतिषी आर्यभट एवं भास्कराचार्य के विषय में भी दो आर्यभट एवं दो भास्कराचार्य सिद्ध करके भ्रम जाल फैला रखा है। आर्यभट एवं भास्कराचार्य का काल क्रमशः प्रथम शताब्दी ई० पू० एवं ४८६ ई० है और विदेशियों ने इनका जन्म क्रमशः ४७६ ई० एवं १११४ ई० माना है। इसी प्रकार से आदि शङ्कराचार्य एवं महात्मा बुद्ध के जन्म कालों को भी कई सौ वर्ष आगे ढकेल दिया गया है।

भारतीय इतिहास के प्रसिद्ध लेखक श्री अक्षय कुमार मजूमदार ने तो इन विदेशियों के भ्रम जाल को भी मात दे दी है। उन्होंने सन् १९२० ई० में ढाका से प्रकाशित होने वाली अपनी पुस्तक (हिन्दू पीरियड, ई० पू० ३००० से १२०० ई० तक) के पृष्ठ ६७ पर पांच वराहमिहिरों की कल्पना की है:—

प्राचीन "बृहत्संहिता" के लेखक वराहमिहिर प्रथम थे और उनका काल ५७ ई० पू० है। संशोधित "बृहत्संहिता" लिखने वाले वराहमिहिर द्वितीय थे और उनका काल ८० ई० है। आधुनिक "बृहत्संहिता" के लेखक तृतीय वराहमिहिर का काल २८५ ई० है। "पञ्चसिद्धान्तिका" के लेखक चतुर्थ वराहमिहिर थे और उनका काल ईसा की छठी शताब्दी का है जबकि १६०० ई० में होने वाले पंचम वराहमिहिर हैं।

श्री मजूमदार ने न मालूम किस आधार पर पाँच वराहमिहिरों की कल्पना करदी है जबकि उनके सभी ग्रन्थों की शैली, भाषा और अन्य दृष्टियों से उनका एक ही काल में होना सिद्ध हो चुका है। स्वयं वराहमिहिर ने अपने समस्त ग्रन्थों की रचना के विषय में भी संकेत दिए हैं। शायद श्री मजूमदार ने विदेशियों के फैलाए हुए भ्रमजाल को छोटा भ्रम जाल सिद्ध करने का प्रयास किया है।

डॉ० देवसहाय त्रिवेद ने "इण्डियन क्रानोलाजी" ग्रन्थ के पृष्ठ ३० पर इसी तरह आठ कालिदासों का उल्लेख किया है। २३२ ई० पू० में होने वाले मिथिला निवासी कालिदास प्रथम थे, ५७ ई० पू० में होने वाले उज्जैन निवासी कालिदास द्वितीय थे, राजा भोज के समकालीन कालिदास तृतीय थे, "नलोदय" एवं "चम्पू भागवत" के रचयिता क्रमशः चतुर्थ एवं पंचम कालिदास थे, छठे कालिदास अकबर के समकालीन थे, "लम्बोदर प्रहसन" के रचयिता सप्तम कालिदास थे और परिवर्धित 'शङ्करदिग्विजय' के लेखक अष्टम कालिदास थे। इन आठ कालिदासों के अतिरिक्त नवम कालिदास भी हुए हैं जो पंजाबी के महान कवि थे तथा जिनकी मृत्यु देशविभाजन से कुछ वर्ष पूर्व हुई है। कालिदास का विरुद्ध धारण करने वाले उपरोक्त सभी कालिदास माने जा सकते हैं किन्तु पंच वराहमिहिर कैसे मान लिए जाएँ।

# विश्वकोष के पन्नों में : वराहमिहिर

●

भारतवर्ष में जितने ज्योतिर्विदों ने जन्म लिया है, उनमें वराहमिहिर को ही सभी सर्व प्रधान समझते हैं। जनसाधारण का विश्वाश है कि वराहमिहिर राजा विक्रमादित्य के नवरत्नों में से एक थे।

बहुतों का कहना है कि रघुवंश, कुमार सम्भव आदि के प्रणेता कवि कालिदास ज्योतिर्विदाभरण के रचियता हैं। अतएव वे वराहमिहिर के समसामयिक थे। प्रमाण के लिए बहुतों ने ज्योतिर्विदाभरण से यह श्लोक भी उद्धृत किया है—

**वर्षे सिन्धुरदर्शनाम्बरगुणै**
**(३०६८) र्याते कलौ सम्मिते।**
**मासे माधवसंज्ञिते च विहितो**
**ग्रन्थक्रियोपक्रमः॥**

उक्त श्लोकानुसार ३०३८ गत कलयब्द में वा २१ विक्रम संवत् में ज्योतिर्विदाभरण का रचनाकाल होता है, किन्तु पीछे ज्योतिर्विदाभरण के मध्य ही- "**शाकः-शराम्भोधियुगोनितो हृतो मानं खतर्कैर्यनांशकाः स्युः**"

इत्यादि स्थल में ४४५ शक का उल्लेख हैं तथा "**मत्वावराहमिहिरादिमतैः**" इत्यादि प्रसङ्ग रहने के कारण ज्योतिर्विदाभरण को ईसा जन्म की पहली सदी का ग्रन्थ अथवा इस ग्रन्थ के प्रमाणानुसार वराहमिहिर को नवरत्नों में से एक नहीं कह सकते।

फिर कोई ब्रह्मगुप्त टीकाकार पृथु स्वामी की दोहाई देकर यह वचन उद्धृत करते हैं:—

**नवाधिकपञ्चशतसंख्यशाके वराहमिहिराचर्यो दिवं गतः।**

५०९ शक में वराहमिहिरचार्य स्वर्गधाम को सिधारे।

संस्कृत साहित्य के इतिहास-लेखक प्रसिद्ध जर्मन पण्डित वेबर ( Weber ) ने आमराज की दोहाई देकर उक्त ५०९ शक ग्रहण किया है। किन्तु आश्चर्य का विषय है, कि पृथुस्वामी का आमराज की टीका में इसका कोई जिक्र भी नहीं है।

फिर "हलमञ्जरी" की दोहाई देकर कोई महाराष्ट्र ज्योतिर्विद् निम्नलिखित वचन का पाठ किया करते हैं—

**स्वस्ति श्रीनृपसूर्यसुनुजशके याते द्विवेदाम्बर-त्रैमानाब्दमिते त्वनेह सि जये वर्षे वसन्तादिके।**
**चैत्रे श्वेतदले शुभे वसुतिथावादित्यदासाद्भूद्-वेदांगे निपुणो वराहमिहिरो विप्रोखेराशिभिः।**

अर्थात् ३०४२ युधिष्ठिर के अब्द वा २ विक्रम संवत् के चैत्र मास में आदित्यदास के औरस से सूर्य के आशीर्वाद से वेदाङ्ग निपुण वराहमिहिर ने जन्मग्रहण किया। दुःख का विषय है, कि यह श्लोक भी किसी प्राचीन ज्योतिर्ग्रन्थ में न रहने के कारण विश्वास योग्य नहीं है।

अब देखना चाहिए कि वराहमिहिर ने अपने ग्रन्थ में कैसा परिचय दिया है। उनके

बृहज्जातक के उपसंहाराध्याय में लिखा है-

**आदित्यदासतनयस्तदवाप्तबोधः कापित्थके सवितृलब्ध वर प्रसादः ।**
**आवन्तिको मुनिमतान्यवलोक्य सम्यग् होरां वराहमिहिरो रुचिरां चकार ॥**

उक्त श्लोकानुसार वराहमिहिर के पिता का नाम आदित्यदास था। वे अवन्ती वासी थे। कापित्थ नामक स्थान में उन्होंने सूर्यदेव को प्रसन्न कर वर लाभ किया था। पञ्चसिद्धान्तिकान्तर्गत् रोमक सिद्धान्त के अहर्गण स्थिर उपलक्ष में वराहमिहिर ने लिखा है—

**सप्ताविश्ववेदसंख्यं शककालमपास्य चैत्र शुक्लादौ ।**
**अर्द्धास्तमिते भानौ यवनपुरे भौमदिवसाद्यः ॥**

उक्त श्लोकानुसार ४२७ शक में चैत्र शुक्ल प्रतिपदा मङ्गलवार पाया जाता है। आपका समय मानकर ही ज्योतिर्विद्गण अहर्गण स्थिर करते हैं।

इस देश में वराहमिहिर और खना के सम्बन्ध में अनेक गल्प प्रचलित हैं। कोई-कोई खना को वराहमिहिर की कन्या, कोई पत्नी और कोई पुत्र-वधु मानतें हैं। किन्तु उन सब अनुमान वा प्रवाद के मूल में कुछ भी ऐतिहासिक सत्य है, मालूम नहीं होता।

वराहमिहिर ने तत्पूर्ववर्ती पाँच सिद्धान्तों का आश्य लेकर पञ्चसिद्धान्तिका की रचना की। उन पञ्चसिद्धान्तों के नाम ये हैं—**(पौलिश, रोमक, वाशिष्ठ सौर और पैतामह) "पौलिश-रोमक-वासिष्ठ-सौर-पैतामहास्तु पञ्चसिद्धान्ताः।"**

वासिष्ठ और पैतामह इन दोनों सिद्धान्तों की आलोचना करके ज्योतिषशास्त्र के इतिवृत्त लेखकगण उन्हें ई० पूर्व १३ वीं शताब्दी के सिद्धान्त मानते हैं। किन्तु पौलिश और रोमक इन दोनों के नाम देखकर बहुतेरे अनुमान करते हैं कि, वराहमिहिर ने प्राचीन पाश्चात्य ज्योतिष से सहायता ली थी।

पौलिश सिद्धान्त में यवनपुर वा अलेक्जैन्ड्रिया से देशान्तर लिया गया है। फिर इधर रोमक सिद्धान्त में गत दिन संख्या का निर्माण करने के लिए यवनपुर का मध्यान्ह माना गया है।

प्रसिद्ध मुसलमान पण्डित अल्बेरूनी ने लिखा है, कि पौलिश सिद्धान्त यूनान के पौलस की रचना है। तदनुसार कोई-कोई अनुमान करते है कि ग्रीक भाषा में Paulus Alexandrinus का जो ज्योतिग्रथ है, पौलिश सिद्धान्त उसीका संस्कृत अनुवाद है, किन्तु जिन्होंने उक्त ग्रीक ग्रन्थ मिलाकर देखा हैं वे कहते हैं, कि ग्रीक ग्रन्थ के साथ उसका कुछ भी मेल नहीं खाता। विशेषतः पौलिश सिद्धान्त एक नहीं था। ब्रह्मसिद्धान्त के टीकाकार पृथूदक और भट्टोत्पल ने पौलिश सिद्धान्त से कुछ श्लोक उद्धृत किए हैं। उन सब श्लोकों के साथ पञ्चसिद्धान्तिका के अन्तर्गत पौलिश सिद्धान्त की कुछ भी एकता नहीं हैं सौर और आर्यभट सिद्धान्त के मत के साथ मेल भले ही खाता है।

रोमक सिद्धान्त नाम सुनकर भी बहुतों ने स्थिर किया है, कि अलेक्जैन्ड्रिया के प्रसिद्ध ज्योतिर्विद् टालेमी के मूल ग्रन्थ के आधार पर संस्कृत भाषा में रोमक सिद्धान्त रचा गया था। किन्तु ब्रह्मगुप्त का ब्रह्मसिद्धान्त पढ़ने से वैसा मालूम नहीं होता। लाट, वाशिष्ट, विजयनन्दी और आर्यभट इन चारों की गणना के आधार पर श्रीषेण ने रोमक सिद्धान्त की रचना की। भट्टोत्पल और अलबेरूनी ने भी वैसा ही कहा है।

वराहमिहिर ने जिन पाँच सिद्धान्तों की आलोचना की है, उनमें सौर वा सूर्य सिद्धान्त की समालोचना करके ज्योतिषियों ने साबित किया है, कि यह सिद्धान्त शकाब्दारम्भ के समय सङ्कलित हुआ था। उसके पहले पौलिश और पौलिश के पहले रोमक सिद्धान्त रचा गया। ग्रीक ज्योतिषी हिपार्कस प्रायः ५० वर्ष पहले जीवित थे। उनका ग्रन्थ अब नहीं मिलता। उनका परिदर्शन काल लेकर टालेमी ने प्रायः १५० ई० में अपने ग्रन्थ की रचना की। उनके ग्रन्थ के साथ रोमक सिद्धान्त का मेल नहीं है। इस हिसाब से उनके बहुत पहले रचित रोमक सिद्धान्त हिपार्कस का ग्रन्थ देखकर सङ्कलित हुआ है, ऐसा भी नहीं कह सकते।

परन्तु इतना जरूर कह सकते हैं, कि वराहमिहिर ने यवनाचार्यों के मत की भी उपेक्षा नहीं की वरन् उनका मत ग्रहण किया है। पञ्चसिद्धान्तिका को छोड़कर वे बृहत्संहिता, बृहज्जातक, लघुजातक आदि अनेक ज्योतिष ग्रन्थ भी रच गये हैं।

एतद्भिन्न आरुढ़जातक, कालचक्र, क्रिया-कैरवचन्द्रिका, जातक कलानिधि, जातक सरसी, जातकसार वा लघुजातक, दैवज्ञव-ल्लभा, प्रश्नचन्द्रिका, बृहद् अष्टकवर्ग, बृहद्-यात्रा, मयूरचित्रक, मुहूर्तग्रन्थ, योगयात्रा योगार्णव, वटकलिका, सारावली ★ और वराहमिहिरीय नामक कई ग्रन्थ इन्हीं के बनाये हुए हैं।

卐

## दैवज्ञ के गुण

पवित्र, बात-चीत करने में निपुण, तुरत बुद्धि, देश काल का ज्ञाता, कपटहीन, निर्भीक एवं चतुर वक्ता, सहपाठियों से सम्मानित अर्थात उनकी योग्यता एवं विद्वता के प्रभाव से दबने वाला न हो, सब प्रकार के व्यसनों से रहित, शान्तिक, पौष्टिक, अभिचार और स्नान आदि विद्याओं का ज्ञाता, अपने कार्य में दक्ष, देवपूजन, व्रत, और उपवास करने में तत्पर, दूसरे के मन के भाव का ज्ञाता, ग्रह गणित के बल पर चमत्कारपूर्ण परिणामों का वक्ता, सभी प्रकार के प्रश्नों का उत्तर देने में निपुण, उत्पात आदि से उत्पन्न अशुभ फलों के निवारण हेतु उपाय आदि बताने में प्रवीण, त्रिस्कन्ध ज्योतिष अर्थात सिद्धान्त, संहिता एवं होरा का ज्ञाता—आदि-आदि गुणों से युक्त दैवज्ञ (ज्योतिषी) ही वास्तव में दैवज्ञ कहलाने का हकदार है।

—आचार्य वराहमिहिर

---

★ सारावली वराहमिहिर की कृति नहीं है इसके रचयिता कल्याण वर्मा हैं।

—सम्पादक

# भविष्य पुराण में वराहमिहिर

●

पुराण केवल धार्मिक दृष्टि कोण से ही महत्वपूर्ण हैं ऐसा नहीं है इनका ऐतिहासिक, सांस्कृतिक एवं राजनैतिक महत्व भी बहुत ज्यादा है। आधुनिक विद्वान पुराणों का रचना काल ईसा से बहुत पूर्व और महाभारत काल के पश्चात का मानते हैं। मुख्य रूप से पुराणों की संख्या अठारह है किन्तु उप–पुराणों की संख्या भी लगभग इतनी ही मानी गयी है। अठारह पुराणों में भविष्य पुराण एक ऐसा ग्रन्थ है जिसमें इसके रचना काल के बाद में होने वाले भारतीय शासकों एवं महा पुरुषों का वर्णन भी किया गया है और इसी कारण इसका नाम भविष्य बताने वाला पुराण अर्थात भविष्य पुराण ही रखा गया है। इसी भविष्य पुराण में तीसरे प्रतिसर्गपर्व के आठवें अध्याय के ९९ से लेकर १२५ श्लोकों में आचार्य वराहमिहिर के विषय में वर्णन किया गया है जिसे सार रूप में यहां प्रस्तुत किया जा रहा है:—

प्राचीन काल में सुरम्य काञ्चीपुर नगर में वेदज्ञ राजा सत्यदत्त का शासन था और ब्राह्मणों में श्रेष्ठ राजा का पुरोहित उसका ज्योतिषी था। एक समय उस बुद्धिमान ज्योतिषी ने राजा सत्यदत्त से कहा कि मुहूर्तों में श्रेष्ठ अभिजित मुहूर्त पुष्य नक्षत्र से युक्त होकर आरहा है अतः यदि इस शुभ मुहूर्त में आप व्यापार (दुकान) करें तो बहुत ही धन लाभ होगा। सत्यदत्त राजा ने अपने पुरोहित के वचन सुनकर नगर में डोंडी पिटवा दी कि नगर में राजा की ओर से एक ऐसी दुकान (व्यापार केन्द्र) खुलने जा रही है जिसमें बाजार में विक्रय न होने वाला सभी प्रकार का सामान खरीद लिया जावेगा। शूद्र लोग जिनका सामान बाजार में नहीं बिका करता था, उन्होंने अपनी समस्त वस्तुएं राजा की दुकान पर बेच-बेच कर खूब धन एकत्रित कर लिया और वैश्यों (व्यापारियों) ने भी अपनी समस्त वस्तुओं को अच्छे दामों पर वहाँ विक्रय कर दिया और राजा की दुकान एक बहुत बड़ा व्यापारिक स्थल बन गई।

एक समय एक व्यक्ति ने लोहार की लोहरूपिणी दरिद्रता को किसी आकार में बनाकर राजा के व्यापार केन्द्र में जाकर उस समय की प्रचलित सौ मुद्राओं में उसे विक्रय कर दिया और मुद्राएं लेकर स्वयं घर चला गया। चूंकि राजा की ऐसी ही आज्ञा थी कि जिस वस्तु का विक्रय नगर में कहीं भी न हो सके उसे वह स्वयं खरीद लेगा। इसी वास्ते राजा को लोहार का दारिद्रय भी सौ मुद्राओं में खरीदना पड़ा जिसे राजा के कोषागार में स्थापित कर दिया गया।

जिस दिन से लोहार के दारिद्रय को राजा ने मोल लेकर अपने खजाने में रखा,

खड़े हो । अपने नामकी महिमा अभी से दिखा दो। सूर्य के समान तेजस्विता मैं अभी से तुम्हारे में देखना चाहती हूँ।— और इसमें कौनसी बात है, अभी गणना करते हैं। गणना कर खना ने उसे सुनाया— "सुनो, बड़े ही उच्च कुल में तुम्हारा जन्म हुआ। परम पंडित ज्योतिर्विद्या विशारद तुम्हारे पिता हैं' पुण्यवती स्वर्गवासिनी तुम्हारी माता । दुर्दैव के कारण सिंहल में तुम प्रतिपालित हुए हो।

बात बहुत बढ़ती है, चर्चे उठते हैं। राजा चन्द्रचूड़-चित्रावती से सलाह करते हैं, चित्रावती कठोर भूणण के लिए तैयार नहीं है। परन्तु खानदानी रीत को कैसे तोड़ें, तो पुरंजय से सलाह करते हैं। पुरंजय कहते हैं—"महाराज, भूषण अल्प आयु है। मिहिर के प्राण लेने जायेगा, स्वयं मारा जाएगा विवाह के लिए मिहिर से अच्छा वर कहीं नहीं मिलेगा।"

खना-मिहिर को भी सब बातें ज्ञात हो जाती हैं। मनुष्य जीवन इसी तरह पराधीनता की जंजीर से जकड़ा हुआ है। मन के ऊपर जिसका कुछ भी अधिपत्य नहीं है, वरन् मन ही उस पर सदा अधिकार जमाये रखता है। चर्चों को सुनकर चन्द्रचूड़ ने दोनों का मिलना-जुलना कम कर दिया था, पर पुरंजय की बात से फिर उन्होनें पूर्ण इजाजत दे दी।

एक दिन शाम के समय मिहिर बाग में था। तभी वहाँ भूषण आया और बेतुकी बातें करने लगा—"क्या तुम अपने माता-पिता का परिचय दे सकते हो, अपनी जाति और वंश बता सकतें हो।" छिपी खना यह सब विधियां देख सुन रही थी,उसने देव वाणी की तरह कहा—"क्यों नहीं ? उज्जयिनी के राजराजेश्वर विक्रमादित्य के महापंडित उच्च कुल भूषण ज्योतिर्विद्या विशारद इनके पिता और स्वर्गवासिनी माता हैं।"

मिहिर विस्मित हुए और सब कुछ भूल अपनी जन्म भूमि देखने की कल्पना करने लगे, पर भूषण खना को देखकर घबरा गए। अपने उत्तर से खना ने भूषण को इस तरह परिजित किया कि भूषण सोचने लगे कि कपट से इस उच्च वस्तु का मिलना कठिन है। अपमानित होकर भूषण की कुटिलता उग्र हो गई। उसने मिहिर के मारने का जाल बिछा दिया। चारों तरफ मौत के पहरे बैठा दिए और अपने नौकर दूषण को साथ ले चल दिया।

नगर से डेढ़ कोस दूर शैलेश्वर नाथ का मंदिर, पर साधारण। सिंहल के सारे शैवधर्मावलम्बी लोग, आबाल वृद्ध वनिता सभी शिव की पूजा करते हैं। राजा-रानी भी तैयारी कर रहे थे, मिहिर का जन्मवृतांत मालूम होने की खुशी में। खना और मिहिर भी प्रसन्न थे। उनका प्रोग्राम पूजा के बाद घूमना और शिकार करना था।

तीर-धनुष साथ ले, पूजा के बाद वे जंगल में प्रवेश कर गए। समय का तीसरा पहर बीत चला। एक दो हिरण का शिकार किया। इसी तरह संयोग-वियोग की बातें करते दोनों आगे बढ़ गए। तभी—बाप रे! मरा रे! बचाओ!!! की दर्दनाक आवाज सुनाई दी।

खना ने धनुष खींच लिया और मिहिर से बोली—"मिहिर यहीं खड़े हो जाओ, मैं जब तक न लौटूं यहाँ से एक पैर मत बढ़ाना सावधान रहना।" खना पलक मचकते ही ओझल हो गई और भूषण व दूषण नौकर को अच्छा मौका मिल गया। दूषण ने मिहिर को वार्तालाप में उलझाकर दुखित

कर दिया, वह घबरा गया, तभी वहाँ भूषण आ गया और नौकर से बोला — "दूषण, धनुष लेलो।" मिहिर को धोखा दिया गया। पल मात्र की ही देरी थी कि छुरा मिहिर की छाती पार कर जाता, इसी समय काले भयंकर सर्प ने आकर प्रचन्ड वेग से पापी भूषण को डंस लिया। सहसा अचूक निशाने के साथ वहीं से तीर आकर भूषण-दूषण दोनों का भेदन कर गए। मिहिर आकस्मिक घटना से चकित हुए। क्या किसी देवता का साकार रूप है यह ? उन्होंने सोचा, पर वहाँ खना दिखाई दी।

भूषण आखरी सांस गिन रहा था। उसके मन का मैल धुल गया था और मरते समय उसे आशीर्वाद दिया–"खना, आशीर्वाद देता हूं, तुम दोनों सुखी रहो, जोड़ी अचल रहे, सुहाग बना रहे। मुझे क्षमा —।" पर साथ ही खना भी बोली - "अभागे पुरुष, तूने मुझे आशीर्वाद तो दिया, पर सुखी न हूंगी, तुम्हारी तरह ही कष्ट भोगते हुए, वरन् इससे भी अधिक, मेरी आयु शेष होगी।"

मिहिर खड़ा-खड़ा सोचता है, दुखी होता है, पर खना कहती है —'मिहिर, आज हमारा विवाह है इसी समय। इसी पार्वत्य शमशान पर भूषण की प्रेतात्मा को साक्षी देकर। यदि तुम अपनी जन्मभूमि जाना चाहते हो, तो विवाह तुरन्त करो। चारों ओर सख्त पहरा है। भागना भी संभव नहीं है। मेरे पिता तुम्हें नहीं जाने देंगे।'

भूषण की शवदेह का आसन बनाकर दोनों बैठ गए और स्वयं ही विवाह के मन्त्र पाठ हुये। ऊपर देवता और नीचे पृथ्वी। दोनों अपने आप को और भूषण की देह को साक्षी मानकर भूषण के रक्त का तिलक करते हैं और विवाह बन्धन में बन्ध जाते हैं। दोनों मंदिर जाते हैं। जंगल की घटना पुरंजय को सुनाते हैं। पुरंजय घर जाने को कहते हैं, परन्तु खना मना करती है। वह कह देती है मैंने अपने को उत्सर्ग कर दिया, मैं विवाहित हूं सब कुछ मिहिर के ऊपर निर्भर है, पर चन्द्रचूड़ सब सुन लेते हैं और खना को बहुत बुरा भला कहते और आशीर्वाद की जगह शाप देते हैं। रोते पीटतें हैं, लेकिन खना को रोकने में असमर्थ रहतें हैं।

सब प्रकार के बन्धनों से मुक्त हो दोनों राज्य से चलतें हैं। पुरंजय तीन पुस्तकें खना को भेंट करते है, जो ग्रन्थों का हार हैं और आशीर्वाद देकर विदा करते हैं।

शुभ महेन्द्र काल की यात्रा थी। आगे-आगे खना पीछे-पीछे मिहिर। खना एक पल समुद्र तीर पर ठहरी। उसे अपशकुन दिखाई दिए, पर जाहिर नहीं किया। फिर उसने मल्लाह को पुकारा और शिव का नाम लेकर नौका में बैठ गई। मिहिर भी शिव का नाम लेकर नौका पर चढ़ गया। नाव तीर वेग से उत्तर की ओर चल पड़ी। उसी भयंकर विशाल समुन्द्र की गोद में— केवल दो आरोहियों के साथ एक दिन वही समुद्र मृत्यु की दाड़ था, आज वही जीवन की गोद है। ऊपर अनन्त नील आकाश और नीचे असीम नील समुद्र। मानों दोनों अनन्त नीलिमा राज्य को भेदन करते हुए, वह नौका मन्द पवन के मीठे स्वर में खोई-सी, नए जीवन से तरंजित सी लहरों पर हिलोरे भरती बढ़ी जा रही थी। अचानक प्रकृति ने अपना रंग बदला। चाँद-तारे जाने कहाँ छिप गए। अंधकार ने प्रलय का रूप लेलिया, तो पानी और तूफान में युद्ध ठन गया।

नौका उठती-गिरती-बढ़ती, फिर दो-गुनी पीछे लौट जाती । इस विराट के सामने नौका की क्या मजाल । मल्लाह डर गए लेकिन खना और मिहिर शान्त-ईश्वर प्रार्थना में लीन थे । एका-एक नौका टूटकर बिखर गई । दोनों लठ्ठों के सहारे तैरने लगे । अथाह सागर के जल में बहते-बहते उन्होंने हजारों मील के मार्ग को तय कर लिया । अन्त में सागर शान्त हुआ । यह ईश्वर लीला थी ।

एक वणिक, जो भयंकर तूफान के कारण समुद्र पार नहीं जा सका था और शान्ति से एक जगह ठहर प्रलय का दृश्य देख रहा था । उसकी दृष्टि लकड़ी के सहारे बहते हुए दो प्राणियों पर पड़ी । वणिक की आज्ञा से उसके मल्लाह तुरन्त उनको अपनी नाव पर ले आए । सेवा और उपचार के बाद दोनों ने आंखें खोल दी । वणिक भी सन्तानहीन था । पुत्र-पुत्री के सम्बोधन से संतुष्ट हो दोनों ने अपनी बातें तथा अपना उद्देश्य वणिक को बताया ।

वणिक उज्जयिनी का ही निवासी था, कभी-कभी सिंहल में भी व्यापार को जाता था । इससे नवदम्पति प्रसन्न हुए । उसने दोनों को अपने साथ ले लिया और तीनों उज्जैन की ओर बढ़ने लगे । सारे रास्ते गणना और उसके फल आदि पर वार्तालाप करते-करते उज्जैन पहुंच गए ।

खना और मिहिर दोनों ही नगरी को देख विस्मित और चकित हुए । इतनी वैभव शाली नगरी । दोनों वणिक की सहायता से ज्योतिषियों के वेश में राजसभा में उपस्थित हुए । उस समय महाराजा विक्रमादित्य सिंहासन पर बैठे हुए नवरत्नों के साथ शास्त्र चर्चा में लीन थे । नव युवक-युवती को देख सब चकित हो देखने लगें । राजा के पूछने पर दोनों ने अपना उद्देश्य तथा ज्योतिर्विद्या, को अपना व्यवसाय भी बताया । राजा बहुत प्रसन्न हुए और उनके विश्राम का प्रबन्ध वराह के ऊपर सौंप दिया ।

वराह ने राजा की आज्ञा मानी, परन्तु वे बोले—"महाराज, बिना जाँच किए मैं किसी अज्ञात कुलशील वाले दम्पति को अपने यहाँ स्थान कैसे दूं ?" परन्तु मिहिर अपने पिता को देखते ही रोमांचित हो उठे । मन ही मन सोचा अभी मैं चुप रहूंगा, मेरी कामना अवश्य पूर्ण होगी ।

एकाएक विदूषक शिवराम बोल उठा-"महाराज, वराह महाशय का अभिप्राय है—कि नये ज्योतिषी महाराज अपनी विद्या का प्रत्यक्ष प्रमाण दें तथा गणना का चमत्कार दिखावें ।"

राजा ने यह प्रस्ताव भी मान लिया और यह बात भी वराह के ऊपर छोड़ दी । तभी वराह मन ही मन रूखे हो गये । शायद यह समझ कर कि कहीं ये नव दम्पत्ति मेरे प्रतिद्वन्दी न हो जाएं, अथवा इतने अल्प व्यस्त वालों को समव्यवसायी कहकर आदर करना अपने वृद्धत्व और पद की प्रतिष्ठा के प्रतिकूल होगा ? वराह तुरन्त अपनी नीति से बोले—"महाराज किसी दूसरे को यह काम सौंपे, बूढ़ा हूं, पता नहीं क्या कह डालूं ।" तीक्ष्ण बुद्धि वाले राजा वराह के मन की दुर्बलता भाँप गये । वे मन ही मन दम्पति के मंगल की कामना करने लगे कि भगवान के जीर्ण-शीर्ण वराह के स्थान को पूर्ण करने के लिए नवरत्नों की सभा में भेज दिया, पर वराह की प्रतिष्ठा बचाए रहे । तभी विदूषक शिवराम ने महाराज से प्रश्न पूछने की अनुमति लेली; क्योंकि वराह दोनों बार उसे इशारे से समझा चुके थे । शर्मा जी ने प्रश्न पूछा—'हे नवागत ज्योतिर्विद्या

दम्पति ! इस समय मेरे मन में प्रश्न उठा है— ।"

मिहिर बीच में ही बोल उठे—"कि यहाँ कितने मनुष्य उपस्थित हैं तथा कितनी आंखें देख रही हैं ?" मिहिर के इस निर्णय पर सब स्तंभित हो जाते हैं और मिहिर गणना करके बताता है कि एक हजार उन्नीस मनुष्य तथा दो हजार बाईस आँखें देख रहीं हैं। इनमें कुछ मनुष्य जन्म से अंधे हैं और कुछ ऐसे जिनकें एक ही आँख हैं ।"

सभा में मिहिर को सब पागल बताते हैं, पर राजाज्ञा से द्वार बन्द हो जाता है और गिनती शुरू हो जाती है; लेकिन गणना गलत, दो आँखें कम । एक बार नहीं दो बार नहीं, तीन बार, लेकिन गणना फिर भी गलत । मिहिर पर गालियाँ पड़ती हैं, चर्चाएं होती हैं, तब अन्त में राजा गिनते हैं, पर गणना फिर गलत । मिहिर क्रोध और अपमान से लाल हो गये । तभी खना सिंहिनी की तरह गरज उठती है—"पूरब का सूर्य पश्चिम में उदय हो सकता है, पर गणना मिथ्या नहीं हो सकती । देखिए उस कोने में दुष्ट कापालिका की झोली में क्या है ?" हलचल से बच्चा रोने लगता है। चारों ओर सभा में खना-मिहिर की जयकार होती है और स्वयं राजा मिहिर को आलिंगन कर मान बढ़ाते हैं तथा खना को मुक्त कंठ से कहते हैं—"देवी, तुमने मृत्यु मुख से बच्चे की रक्षा की है तथा अद्‌भुत शक्ति का परिचय दिया है । तुम सदा राज्य में देवी की तरह पूजी जाओगी । आज से तुम राज्य में सदा स्थायी रुप से विराजमान रहोगी ।"

दोनों एक ही दिन सुविख्यात हो गए । यश प्रकाश की तरह उनके चारों ओर फैल गया । राजा ने सम्मान सहित उनकी सेवा, आराम आदि का प्रबन्ध कर दिया, पर वराह को यह सब न भाया । वे बड़े विरक्त हुए और सोचने लगे मैंने जन्मभर हांड-मास गलाकर जो कुछ पैदा किया, आज सब व्यर्थ गया । मेरा ताज और गौरव भी इन्हीं दम्पत्ति को मिलेगा। आज वे अपने पुत्र के बारे में सोचते हैं। जो इनसे भी गुणी होता । दुनिया इन्हें ही कहती है, जिधर देखो उधर इन्हीं की चर्चा है, यही सोचकर वराह भीतर ही भीतर प्रतिहिंसा की ज्वाला से जल-जल कर भस्म होने लगे ।

वराह ने अपने कौशल का जाल बिछाना आरम्भ किया । इधर पिता मिलन कें लिए मिहिर बहुत व्याकुल थे । वराह को अपने स्थान पर आया देख सोचने लगा चलो रास्ता स्वयं साफ हो रहा है, लेकिन वराह ने मन ही मन जो जाल बिछाया था, उसके अनुसार बोले—"आपकी प्रतिष्ठा से हमें सुख मिलता है । अतः आप लोगों से मेरा ही नहीं सभी का यही निवेदन है कि मेरे घर एक दिन का आतिथ्य ग्रहण करें ।"

खना-मिहिर दोनों ने उसी दिन वराह का आतिथ्य स्वीकार किया । भोज हुआ और दिन का समय शास्त्रार्थ में व्यतीत हो गया । रात के समय वराह ने मिहिर से कहा—"महाश्य, आप स्त्री सहित हैं, घर में जगह कम है । यदि आप अनुमति दें, तो आपकी शैय्या, सामने महाराजा का पुराना पर सुन्दर मकान है, उसमें लगा दी जाए ।" मिहिर ने कहा—"जैसा आप उचित समझें ।" उस मकान में 'गिरता हूँ, गिरता हूँ" की आवाज आया करती थी । वराह ने सोचा, वहाँ रहने पर वह मकान इनकें ऊपर गिर पड़ेगा ।

अर्धरात्री के समय जब वहाँ दोनों सो रहे थे, तो वही आवाज आई । खना-मिहिर

उस रात्रि को राजा के देखते-देखते कर्म एवं धर्म पुरुष रूप धारण कर राजा के निवास स्थान से बाहर चले गये। इसी मध्य सत्यपुरुष अर्थात सत्यनारायण भगवान एव लक्ष्मी भी राजा के यहाँ से यह कहकर बाहर जाने लगे कि जहाँ दारिद्रय होगा वहाँ हम नहीं ठहरेंगे। उनके इस प्रकार के वचन सुनकर उनसे अनेक यत्नों द्वारा राजा ने अपने यहां सदा के लिए ठहरने का वचन ले लिया। राजा अपने ज्योतिषी के आदेशानुसार व्यापार न करता तो वह लोहार के दारिद्रय को भी न खरीद पाता तथा लक्ष्मी एवं सत्यपुरुष का वास भी उसके यहां न रहा पाता। अतः राजा ने अपने उस शुभचिन्तक ब्राह्मण को सादर बुलाकर उसे एक सौ स्वर्ण मुद्राओं से पुरस्कृत किया।

राजा सत्यदत्त के इसी ज्योतिषी के यहां मार्गशीर्ष मास में एक पुत्र ने जन्म लिया जिस का का नाम पूषा था और इस पुत्र के जन्मोत्सव पर ही राजा द्वारा मिली समस्त स्वर्ण मुद्राओं को इस ब्राह्मण ने व्यय कर दिय था। पूषा भगवान सूर्य देव का परम उपासक था और सूर्य देव की भी उस पर विशेष कृपा थी। मृत्यु के पश्चात जब पूषा ब्राह्मण, सूर्य देव का आराधक होने के कारण सूर्य लोक में पहुंचा तब सूर्य देव ने उसे वरदान दिया कि तुम्हारा जन्म अब उज्जयिनी में रुद्रपशु नामक श्रेष्ठ ब्राह्मण के घर होगा और तुम्हारा नाम संसार में मिहिराचार्य के नाम से ज्योतिष शास्त्र के प्रवर्त्तक के रूप में विख्यात होगा।

पूषा का दूसरा जन्म उज्जयिनी में पंडित रूद्रपशु के यहां हुआ। बालक मिहिराचार्य का मूल गंडान्त योग में जन्म होने के कारण रूद्रपशु ने अपने यहां जन्में पुत्र को महान अशुभ जानकर उसे तुरन्त त्याग देने का विचार किया। एक लकड़ी की पिटारी में नवजात शिशु को बन्द करके रात्रि के समय नदि में बहा दिया गया। नदि में बहता हुआ वह बालक लङ्का के तट पर जा पहुंचा जहां पर राक्षसों द्वारा उसे काठ की पिटारी से बाहर निकाल कर उसका पालन-पोषण हुआ। और वहीं पर उस बालक मिहिराचार्य ने खगोल विज्ञान एवं फलित ज्योतिष का अध्ययन किया।

लङ्का में रहते हुए जब मिहिराचार्य ने समस्त ज्योतिष शास्त्र का भली प्रकार से अध्ययन कर लिया तब लङ्का पति राक्षस राज महाराजा विभीषण के पास पहुंच कर उनसे विनम्र प्रार्थना करते हुए मिहिराचार्य ने कहा कि हे भक्त राज विभीषण आप भगवान विष्णु के प्रिय हैं अतः आप को बारम्बार नमस्कार है। मैं राक्षसियों द्वारा आपकी नगरी लङ्का में दैव योग से आ गया हूं और अब आपकी शरणागत हूं। महाराजा विभीषण ने हरि भक्त उस श्रेष्ठ ब्राह्मण मिहिराचार्य को सादर उसकी जन्मभूमि में भेज दिया।

वराहमिहिर आचार्य ने अपनी जन्म भूमि (उज्जयिनी) पहुंच कर मलेच्छों द्वारा पवित्र वेदों के प्रमुख अङ्ग ज्योतिष (ज्योतिष को वेदाङ्ग कहा गया है) का जो विनाश किया गया था, उसे फिर से प्रकाश में लाया और त्रिस्कन्ध ज्योतिष के रूप में उसका पुनोंद्धार किया। वही त्रिस्कन्ध ज्योतिष इस समय सिद्धान्त, संहिता एवं होरा के नाम से प्रसिद्ध है। इन तीनों स्कन्धों पर आचार्य वराह मिहिर द्वारा रचित तीन ग्रंथ ("पञ्चसिद्धान्तिका", "बृहत्संहिता" एवं "होराशास्त्र") भी हैं।

# विदुषी खना : वराह और मिहिर

बात बहुत पुरानी है। आज से लगभग सवा दो हजार वर्ष पूर्व भारत की राजधानी उज्जैन और उसके सम्राट महाप्रतापी राजराजेश्वर विक्रमादित्य। उज्जयिनी नगरी की अलौकिक शोभा अपने यौवन पर थी, पर साथ ही साथ काव्य कला में ही नहीं ज्योतिर्विद्या भी उस समय बड़ी ही बढ़ी-चढ़ी थी और इस विद्या के रत्न थे, आचार्य वराह, जिसकी समता करने वाला कोई नहीं था उस समय।

वराह के घर पुत्र जन्मा। बहुत सोच-विचार कर गणित किया, जन्मपत्र बनाया, पर दैवज्ञ से दैव बड़ा निकला। गणित में कहीं भूल रह गई और ऐसी भूल, जिसको एक बालक भी नहीं कर सकता और जिसका संसार के इतिहास में कोई जोड़ नहीं।

गणित फल था बालक अल्प आयु है। कल मरेगा दुख देगा, फिर क्या लाभ इसके पालन-पोषण से और वराह ने बच्चे को ताम्रपात्र में रखकर क्षिप्रा नदी में बहा दिया। दूसरों का भाग्य बताने वाला वराह अपने भाग्य की कठपुतली बन गया।

क्षिप्रा अपनी सखी-सहेलियों से मिलती-जुलती सागर में जा मिली। पात्र सागर में तैरने लगा। कहाँ सागर, कहाँ छोटा-सा पात्र, पर यह इतिहास की रचना नहीं, उपन्यास की कहानी सुना रही हूं। एक लहर ने दूसरी को और दूसरी ने तीसरी को यह पात्र दिया और यों ही लहरों के हाथों उठता-गिरता सिंहल द्वीप के तट जा लगा। अनेकों जंगली स्त्रियां पुरुष वहां क्रीड़ा कर रहे थे। उनकी दृष्टि उस पात्र पर पड़ी, उसे निकाल लिया। इसे कौन ले इस पर वे झगड़े, पर अन्त में किसी समझदार की सलाह से उस पात्र को खोला गया, तो उसमें सोना चाँदी नहीं, एक सुन्दर स्वस्थ बालक सबको टुकर-टुकर झांकता मिला। जिसकी पालने में ही मर जाने की कल्पना थी, वह तूफानों में भी जीवित रहा।

उनमें से एक सद्य प्रसूता स्त्री ने उसे उठा लिया और अपनी छाती का अमृत पिलाया। यह भाग्य की कहानी है। लड़ाई झगड़े की खबर सुनकर कोतवाल आ पहुंचा और उसने बालक को सिंहल के राजा चन्द्रचूड़ की सेवा में प्रस्तुत कर दिया।

चन्द्रचूड़ सन्तानहीन थे। राक्षस होने पर भी वे स्नेह शील, धर्मनिष्ठ तथा आश्रितों के प्रतिपालक थे। वे उस समय ज्योतिर्विद्या के महान विद्वान अपने कुल पुरोहित पुरंजय* से कोई परामर्श कर रहे

*सम्भव है "शम्भुहोराप्रकाश" ज्योतिष ग्रन्थ के रचयिता सिंहल निवासी यही पुरंजय ही रहे हों जिन्हें "शम्भुहोराप्रकाश" में पुञ्जराजाचार्य के नाम से सम्बोधित किया गया है।
— सम्पादक

थे। तभी वह बालक घटना सहित सामने आया। पुरंजय ने गणना की। भाग्य का चमत्कार कि यहाँ दूसरे फल निकले। पुरंजय ने घोषणा की कि यह बालक दीर्घ आयु होगा और देश-विदेश में इसका यश फैलेगा। यह ईश्वर रक्षित रत्न है। महाराज ने बालक को महल में भेज दिया और वहीं उसका लालन-पालन होने लगा।

जिसे कुटीर ने ठुकराया था, उसे राज-महल ने स्नेह से अपना लिया। राजा चन्द्र-चूड़ और रानी चित्रावती प्राणपन से बालक का पोषण पुत्र की भाँति करने लगे और समय आने पर कुलगुरू पुरंजय ने बालक का नामकरण किया 'मिहिर'।

ग्रहों के चक्र और समय के साथ-साथ मिहिर बढ़ने लगा और अपने जीवन के दो वर्ष व्यतीत किये। तभी चित्रावती ने कन्या को जन्म दिया विधि का विधान, सपना सच्चाई बन गया। कन्या का नाम 'क्षमा' रखा गया, जो वहाँ की भाषा में खना बन गया।

(वराहमिहिर एवं खना से सम्बन्धित कथाएं बंगला लोक साहित्य में ही अधिक-तर उपलब्ध हैं। प्रस्तुत लेख भी बंगला उपन्यास 'विदुषी खना' के श्री विश्व कृत हिन्दी अनुवाद का सार है जिसके मूल लेखक श्री रक्षित हाराणचन्द्र हैं। उपन्यास इस समय अप्राप्य है, लेकिन इसकी एक प्रति श्री विश्वनाथ शुक्ल (प्राचार्य: बी० एस० एम० कालेज रूड़की उ० प्र०) के सौजन्य से साभार प्राप्त हुई है।

कलकत्ता स्थित ऑल इण्डिया एस्ट्रॉनोमिकल एण्ड एस्ट्रॉलोजिकल सोसायटी के अध्यक्ष श्री पं० रमेश चन्द्र भट्टाचार्य ने विदुषी खना एवं वराहमिहिर के विषय में जो जानकारी भेजी है उसमें तथा प्रस्तुत कथा में थोड़ा ही अन्तर है। श्री भट्टाचार्य के अनुसार मिहिर के पिता पंडित वराह मूल रूप से सागर तटवर्ती चुम्बी नगर (मालाबार) के निवासी थे और मिहिर की माता का नाम धरणी देवी था। शेष समस्त कथा 'विदुषी खना' उपन्यास सरीखी ही है केवल श्री भट्टाचार्य ने खना द्वारा काटी गई उसकी जीभ का मिहिर द्वारा अपने परिवार में सुरक्षित न रख पाने का उल्लेख अवश्य किया है। खना ने अपनी जीभ काटने से पूर्व मिहिर को चेतावनी दी थी कि जब तक उसकी जीभ मिहिर के परिवार में सुरक्षित रहेगी, तब तक उस परिवार में भविष्य ज्ञान का बोध बना रहेगा। खना की कटी हुई जीभ को चींटियां खा गईं, जिससे भविष्य ज्ञान का बोध चींटियों को तो प्राप्त हो गया, मगर मिहिर के परिवार में शनैः शनैः समाप्त हो गया।

"हिन्दी विश्व कोष" में खना और मिहिर के सम्बन्धों की कई रूपों में चर्चा की गई है। "सान्दीपिनी कुलोद्भव श्री १०८ वराहमिहराचार्य वंशावली" में वराहमिहिर की मित्रता एवं विवाह का वर्णन सिंहलद्वीप के मय दानव की पुत्री छाया से होना बताया गया है। सम्भव है खना का एक नाम छाया भी हो जिस प्रकार से खना का मूल नाम 'विदूषी खना' उपन्यास में क्षमा बताया गया है। 'भविष्यपुराण' में वराहमिहिर का लङ्का में पहुंचने तथा वहां पर ज्योतिष विद्या को अध्ययन करने के बाद भारत लौटने का वर्णन तो जरूर है किन्तु लङ्का में विवाह आदि की चर्चा नहीं की गयी है।

'जातक तत्व' ग्रन्थ के हिन्दी टीकाकार पं० श्रीनिवास पाठक ने उक्त ग्रन्थ के पृष्ठ ३२३ पर खना का उल्लेख किया है; किन्तु उन्होंने खना को बंगाल का एक प्राचीन

प्रसिद्ध व्यक्ति बताया है जबकि खना एक स्त्री थी और वह सिंहलद्वीप (लङ्का) की रहने वाली थी। सम्भव है बंगाल में 'खना' उपनाम वाला कोई अन्य विद्वान बहुत बाद में हुआ हो जिसने खना के साहित्य का अध्ययन कर बंगला में उसे प्रकाशित किया हो और वह स्वयं खना नाम से हो प्रसिद्ध हो गया हो या फिर श्री पाठक भूलवश ऐसा लिख गए हों, यह भी सम्भव है। —सम्पादक)

खना का जन्म पत्र बना। पुरंजय ने घोषणा की कि कन्या ज्योतिषशास्त्र की चरमसीमा को पहुंचते हुए उसकी महिमा का प्रचार भी करेगी। यही नहीं यह एक दिन प्रतिभा से गुरू को परास्त करेगी, संसार इसको पूजेगा। हममें कोई भी इसकी समता का नहीं। मैं भी मानों समुद्र में एक जल बूंद मात्र हूं। इसलिए इसको तो शिक्षा-दीक्षा भी देने की जरूरत नहीं; फिर भी मैं इसको शिक्षा दूंगा।

मिहिर और खना दोनों साथ-साथ पलने-बढ़ने लगे। साथ खेलते–साथ पढ़ते चन्द्रचूड़-चित्रावती की आंखें ठन्डी करते।

दिन-सप्ताह-महीने फिर साल बीतने लगे। खना ज्योतिष विद्या में गुरू से भी बढ़ गई और अगले पिछले जन्मों की बातें करना तो उसका ऐसा मनोरंजन बन गया जैसे लक्ष्मीबाई का बचपन में दुर्ग तोड़ना और किले ढाना था। हर बात में मिहिर उससे मात खाता।

समय के साथ दोनों की उम्र जोर पकड़ गयी। बचपन की आंख-मिचौनी ने दोनों के मन में प्रेम का बीज बो दिया। यहीं नहीं एक चांदनी रात में खना ने घोषणा कर दी–"मिहिर, सुनो तुम्हारे साथ ही मेरा विवाह होगा, यह विधाता की विधि लिखी है। तुम मेरे स्वामी हो, मैं तुम्हारी धर्मपत्नी हूँ। इसे ब्रह्मा की लकीर समझना।" दोनों की बढ़ती एकता को देखकर हिंगना, (चन्द्रचूड़ के छोटे भाई की स्त्री) के मन में राक्षसी संस्कार ने उग्रता ले ली। हिंगना अपने पुत्र भूषण से जो राक्षसों की तरह कठोर था, खना का विवाह करना चाहती थी। यदि भूषण का विवाह खना से हो जाए, तो चन्द्रचूड़ की जगह राजा बनेगा और मिहिर उसकी आंखों में कांटे की तरह खटकने लगा।

भूषण और हिंगना को, मधुर पवित्र प्रेम का समुद्र विष के ज्वालामुखी सा लगा और अपनी नीति से उसने षडयंत्र रचा। भूषण ने मिहिर को पत्र लिखा जिसमें—जन्मवृत्तान्त, उसके माता-पिता की बातें बड़ी अश्लील भाषा में थी और मिहिर को "जारज पुत्र" सिद्ध किया। पत्र मिहिर तक पहुंचा दिया। मिहिर ने पत्र पढ़ा, सब बातें सर्प की तरह उसे लगी। पढ़ते ही वह तिलमिला गया। भूषण का उद्देश्य मिहिर को हताश करना ही था।

खना ने मिहिर को मुँह लटकाए देखा, तो उसने उससे पूछा। बहुत प्रयत्न करने पर भी मिहिर छुपा न सके -"खना, तुम लोगों के सिवा मेरा है ही कौन ? फिर भी, मेरी कौन माता है, कौन पिता है और कहाँ अपनी वह प्यारी जन्मभूमि है—यह सब मैं नहीं जानता- इस समय यह सब जानने की जरूरत आ पड़ी है, मैं संकट में हूं।"

घृणा से चिट्ठी फाड़कर खना ने मिहिर को समझाया–"मिहिर, ये भूषण के कारनामे हैं। यह तो सूचना मात्र है। दुष्टों के लिए अभी से छाती ठोक लो। पीछे न हटो, पहाड़ की तरह अचल एवं निर्भय

दोनों शैया पर बैठ गए। उन्होंने तुरन्त गणना की। गणना करते ही वे खुश हो गए। बोले—"उपयुक्त समय है, तो गिरो।" इतना कहते ही मकान से रत्नों की झड़ी लग गई।

वराह खुश थे कि दम्पति के पंचतत्व धूल में मिल गए होंगे, पर जब उन्होंने प्रातः काल खिड़की से झाँका तो दम्पति की स्पष्ट आवाज सुनकर ऐसे मलिन हो गये, जैसे चन्द्र-सूर्य को ग्रहण लगता है, कुछ बोल न सके। तभी उनके शिष्य नीलकंठ ने आकर कहा कि दोनों आपसे मिलना चाहते हैं। खना-मिहिर वराह का आशीर्वाद ले चरणों में बैठ गए, तो उन्होंने रात की घटना सुनी, सब सम्पत्ति लेने को कहा। तब वराह बोले—"मैं क्या करूंगा?" नदी का बांध टूट जाने पर जिस प्रकार पानी एकदम हरहराकर बहने लगता है, उसी तरह मिहिर के प्रश्नों और वार्तालाप से वराह के हृदय का बांध भी टूट गया। मिहिर ने गणना-फल निकाले और वराह को सब कहना पड़ा। अन्त में फल यह निकला कि वराह ने मिहिर को अपना बेटा स्वीकार लिया।

अंधकार घट गया। तन-मन की कलुषता धुल गई थी। पिता-पुत्र के असाधारण आनन्द से चारों ओर प्रकाश था। अंधेरे में भटकती आत्मा प्रकाश को पा चुकी थी। सुनकर राजा विक्रमादित्य भी वराह से मिलने आए और आशीर्वाद दिया।

× × ×

वराह के दिन सुख से बीतने लगे। आज्ञाकारी पुत्र-पुत्रवधू। यह राज सम्मान। कोई अभाव दुःख या ताड़ना नहीं। मन में जितनी साधें थी पूर्ण हुईं और अब चाहिए ही क्या? किन्तु यह सब ज्यादा देर स्थायी न रहा। वराह जादूमंत्र की तरह बदल गये। त्याग की जगह भोग ने अधिकार जमा लिया। वह आलसी, अकर्मण्य और निर्बोध हो गए। अध्ययन, अध्यापन, शास्त्रचर्चा और विचार सब लोप होगए।

दूर-दूर से आये प्रश्न कर्त्ताओं को वराह ठीक उत्तर और फल न बता पाते। तब मिहिर उनको हल करता, वह कभी गलत होता कभी ठीक, तृप्ति किसी को न मिल पाती। फिर खना उसको हल करती, जिसका उत्तर सदा ठीक होता और तुरन्त फल भी देता। सत्य का प्रकाश जल्दी ही फैल जाता है। खना की प्रतिभा ने सबको चका-चौंध बना दिया। अतः राजा ने खना को ही नवरत्न के उपयुक्त समझा।

एक दिन अचानक एक घटना घटी। सभा में बुध मंडलियों के साथ बैठ शास्त्र सम्बन्धी बातचीत चल रही थी और अद्भुत गणना विद्या की बात थी। ऐसे में ही शिवराम विदूषक बोले—"महाराज, आकाश में कितने नक्षत्र हैं—क्या आपके इन दिग्विजयी पंडितों में कोई बता सकता है? यदि हाँ, तो हम मूर्खों को भी समझाएँ?"

राजा ने सोचा मेरा उद्देश्य भी सफल होगा तथा रहस्य का उद्घाटन भी। राजा ने प्रश्न सामने रखा और यह भी घोषणा की कि जो सही उत्तर देगा वही नवरत्न के स्थान पर रहेगा। सुनते ही सबके मुँह सूख गए। वराह को भी घर से बुलाया गया, किन्तु वे भी घबरा गए और एक दिन की इजाजत लेकर घर आ गये।

पुत्र से पूछा, उसे मालूम न था। बोला—"पिताजी, आपकी पुत्रवधू खगोल विद्या जानती है।" यह सुनते ही वराह ने खाना-पीना छोड़ पहले विद्या पूछी। खना

ने सांकेतिक गणना वराह को बता दी, पर वराह ने तुरन्त खना से प्रतिज्ञा कराई कि रहस्य किसी को ज्ञात न हो और न ही यह रहस्य कि मैंने तुमसे यह विद्या सीखी है। वराह भोजन करते हुए, खना को यह कह ही रहे थे कि शिवराम विदूषक सब सुन लेते हैं और राजा की खबर दे देते हैं।

राजा तुरन्त वराह को बुलाकर एकान्त में उनसे यह विद्या पूछते हैं—और अन्त में स्पष्ट कह देते हैं कि यह कृति या गौरव आपका नहीं—आपकी पुत्र वधू का है। आप चिन्तित न हों।"

वराह अपमान और आत्म ग्लानि से खुद ही अपना पाप राजा के सामने स्वीकारते हैं। वराह के चारों ओर सृष्टि घूम गई, अंधकार छा गया, मोह दूर हो गया, स्वप्न भंग हो गया। सरदर्द का बहाना ले वहाँ से तुरन्तु आ गए।

घर आकर वराह खना को मन ही मन गालियां देते हैं। जब तक यह डायन न मरेगी मेरी आत्मा में ठंडक न पड़ेगी। और उन्होंने तुरन्त नीलकंठ शिष्य को बुलाया योजना बनी कि रात को खिड़की से खना के कमरे में सांप फेंका जाए, पर प्रयत्न फैल हो गया। अब वराह स्वयं ही षडयंत्र रचाने लगे और यही षडयंत्र रचाते-रचाते सो गए।

सुबह को वराह ने मिहिर को बुलाया अपने रचे जाल के अनुसार, बहुत लाड़-प्यार से, शब्दों के जाल से और उसके कोमल व कठोर भाव-भंगिमा को चतुराई से देखते हुए उसे पढ़ाया—"बेटा, मैं तुम्हारे उज्जवल भविष्य के लिए ही कहता हूँ कि बहू के बारे में सावधान हो कर रहना चाहिए। मैंने अपनी आंखों देखा है कि वह रात को अकेले में आकाश की ओर देखते हैं। स्वयं से जंगली भाषा में बात करती है। कभी रोती है, कभी हंसती है। बेटा, स्त्रियों का चरित्र तो देवता भी नहीं समझ सके। जो स्त्री घी खिला सकती है, वह जहर भी पिला सकती है। यह तुम अपनी आंखों देख लेना। यहीं नहीं वह जादूगरनी रात को तुम्हारे पास आती है और तुम्हारे मुंह के पास आकर 'बुदबुद' करती है।" और वराह इतना कहकर खुद ही रोने लगे और मिहिर को अपने षडयंत्र का शिकार बनाकर चले गए। तीर निशाने पर बैठा, मिहिर का विश्वास चोट खा गया।

थोड़ी देर बाद वराह पुत्र की आंख बचाकर पुत्रवधू के कमरे में गए और यहाँ भी जाल फेंका—"बेटी, मिहिर को एक रोग है। सोते समय उसके मंह से भयंकर दुर्गन्ध' निकलती है। इसलिए तुम गंभीर रात्री के समय, जब मिहिर गहरी नींद में सोया हो, उसकी शैय्या पर जाना। दिया न जलाना। मैं जो दवाई तुम्हें देता हूँ—इसे अपने दांतों से काटकर दांतों से ही उसके नाक के पास रख देना। और देखो सावधान। यह बात मिहिर पर भी प्रगट न होने पावे।"

जीवन रक्षा के लिए खना ने यह स्वीकारा और कूटनीतिज्ञ वराह दोनों के लिए जाल बिछाकर शिकार फंसने का इन्तजार करने लगें। खना और मिहिर दोनों को ही इस षडयंत्र का भास तक न हुआ। वराह पर इतनी श्रद्धा थी कि गणना तो किसी का ख्याल ही न गया। वराह के अनुसार यही क्रम चलता और मिहिर को विश्वास हों कि पिता सत्य कहते हैं। इधर यह षडयंत्र हो रहा था, उधर महाराजा विदुषी खना को वराह के स्थान पर नवरत्न बनाने का पैगाम, मंत्री द्वारा वराह के घर भेज चुके थे।

ईर्ष्या और पद लिप्सा की आग में जलते हुए वराह यहीं नहीं रूके । उन्होंने अपने धूर्त्त शिष्य नीलकंठ को एक नाटक के लिए तैयार किया, जिससे खना डायन के साथ दुश्चरित्र भी सिद्ध हो जाए ।

पूर्णिमा की रात में वराह चन्द्र ग्रहण के विज्ञान पर बात करने के बहाने मिहिर को छत पर ले गये । आधी रात का समय था । उसी समय नीलकंठ स्त्री के वेश में खना के कमरे की खिड़की के पास बाहर गया। मिहिर ने पिता से पूछा "यह कौन है ?" वराह ने सरल भाव बनाकर कहा—बहू की दासी होगी ।

कुछ देर बाद बाग की तरफ से मूछदाढ़ी वाला एक युवक अपने को साड़ी में लपेटे खना की खिड़की पर आया । वराह ने पट्टी पढ़ायी, मिहिर प्रतिहिंसा की आग में जल उठा । दोनों में निर्णय हुआ कि दुश्चरित्र खना का वध ही व्यभिचार का सही दण्ड है । उत्तेजित मिहिर पिता से शस्त्र ले, खना के कमरे की ओर चले ।

एकाएक मिहिर रूक गए । हृदय की गति मानों बन्द हो जाएगी । द्वार के कुंए पर मिहिर ने मूंछ-दाढ़ी, साड़ी-चोली पड़ी देखी, तो उनके सामने सारी पृथ्वी घूम गई । सब समझ गए । धोखे का पर्दा हट गया । नीलकण्ठ घबराहठ के कारण इन चीजों को वराह के निर्देशानुसार कुएं में न डाल बाहर ही फेंक गया था । मिहिर जल्दी ही खना के पूजा गृह में गए । सामने आसन पर भैरवी कपालिनी की मूर्तियां रखी हैं । अधर हिलते हैं, शब्द फूटते हैं—"माँ अब विदा दो । जन्मान्तर में फिर तुम्हारे दर्शन करूंगी ।" तभी वह पीछे देखती है । मिहिर को देखकर बोली—"भूल ज्ञात हो गई स्वामी । मैं अविश्वसनिय नहीं हूं, तुम स्वयं ही समझ गए । माँ का धन्यवाद अब मैं सुख से मर सकूंगी ।"

मिहिर रोते-रोते क्षमा याचना करता है, पर खना कहती है—"स्वामी, मोह माया को मत बढ़ाओ, मेरे सुख के मरण में बाधा न डालो । तुम भूल गए—मैं इसी प्रकार मरूंगी और माता-पिता का शाप सहूंगी, यही कहकर सिंहल से चली थी । हतभागे भूषण से मरते हुए जो कहा था, वह भी तुम भूल गये । अतः तुच्छ है यह नवरत्नों का आसन । मेरा आसन परलोक में है । लाओ यह पिता का दिया अस्त्र दो । आज मैं अपनी विधिलिपि को स्वयं पूर्ण करुंगी ।

मिहिर मूर्च्छित होते हैं, खना मूर्च्छा दूर करती है और उसे धीरज देती है । मिहिर होश में आता है । खना फुर्ति के साथ प्रतिमा के हाथ से तलवार लेकर अपनी जीभ काटकर मिहिर के चरणों में रख देती है ।



मिहिर जोर-जोर से रोते हैं, चीखते हैं,—"खना, तुमने यह क्या किया ?" खना अपने मस्तक पर हाथ रखकर इशारे से कहती है—"भाग्य !"

# आचार्य वराह मिहिर की जन्म भूमि

●

जिस प्रकार से महाकवि कालिदास के जन्म स्थान एवं काल के विषय में अनेक प्रकार के मत प्रचलित हैं, ठीक उसी प्रकार से इनके समकालीन विश्व विख्यात ज्योति-विज्ञानाचार्य आचार्य वराहमिहिर के जन्म स्थान एवं जन्म काल के बारे में विद्वानों के भिन्न-भिन्न विचार हैं। हमारे लिए कितने दुख: की बात है कि राष्ट्र की इन दानों विभूतियों का सही जन्म स्थान एवं जन्म काल हम लोगों से अभी तक निश्चित नहीं हो पाया है। इस कार्य में सबसे बड़ें बाधक तो धर्मान्ध विदेशी आक्रमण कर्ता हैं जिन्होंने हमारे समस्त साहित्य को ही जला कर भस्म कर दिया ताकि न रहेगा बाँस और न बजेगी बाँसुरी। यदि थोड़ा बहुत साहित्य येन-केन प्रकारेण इन लोगों के क्रूर हाथों से बच भी पाया है तो अंग्रेजों ने उसे कूट और जाली घोषित करके उसका महत्व ही समाप्त करने की भरसक कोशिश की है। हम लोग अंग्रेज की गुलामी में इतने मस्त हो गये थे कि हमारे देखते-देखतें ही उसने हमारे सभी गौरवमय इतिहास को इस प्रकार से दूषित कर दिया कि हमें यह याद ही नहीं रहा कि हमारे अमुक महान पुरुष या विज्ञान वेत्ता कब और कहाँ हुए हैं। इन बातों का स्मरण रहने से भारतीय पुनः उस गौरव को याद करके कहीं गुलामी के विरुद्ध आवाज न उठावें, इसलिए अंग्रेज ने अपने कुचक्रों द्वारा यह तमाम परिवर्तन कर दिये थे। यही कारण हैं कि भारत विभूति आचार्य वराहमिहिर के जन्म एवं काल के विषय में अनेकों मतभेद हमारे सामने मौजूद हैं। यहाँ पर केवल आचार्य वराहमिहिर की जन्म-भूमि के विषय में ही चर्चा की जावेगी जो कि अब तक विवादस्पद है।

आचार्य वराहमिहिर ने अपने जन्म स्थान एवं पिता आदि का उल्लेख 'बृहज्जातक' के २८ वें अध्याय के नवम श्लोक में किया है: —

**आदित्यदासतनयस्तवाप्तबोधः,**
**कापित्थके सवितृलब्धवरप्रसादः।**
**आवंतिको मुनिमतान्यवलोक्य सम्यग्,**
**होरां वराहमिहिरो रुचिरां चकार॥**

अर्थात आवन्तिक (उज्जैन) देश के अन्तर्गत कापित्थक ग्राम के निवासी वराह मिहिर ने अपने पिता पण्डित आदित्य दास से बोध प्राप्त कर एवं भगवान सूर्य नारायण से वर-प्रसाद पाकर पूर्व ऋषियों द्वारा प्रणीति ज्योतिष ग्रन्थों का भली भांति अवलोकन कर इस होरा शास्त्र "बृहज्जातक" नामक जातक ग्रन्थ की रचना की है।

इस श्लोक में "कापित्थक" नामक स्थान का उल्लेख है जो कि अवन्तिक (आधुनिक उज्जैन) के निकटवर्ती क्षेत्र में उपस्थित है। कुछ विद्वानों ने इस श्लोक का यह अर्थ किया है कि आचार्य वराह मिहिर का मूल जन्म स्थान कापित्थक अवश्य है, किन्तु बाद में वह अवंति

(उज्जैन) में आकर रहने लगे थे जहां पर आज से लगभग ढाई हजार वर्ष पूर्व होने वाले महान हिन्दू सम्राट विक्रमादित्य के राज्याश्रय में रहकर उन्होंने "बृहज्जातक" एवं अन्य ग्रन्थों की रचना की। इनके मत से कापित्थक भारत के किसी भी प्रान्त का उस समय एक ग्राम या नगर हो सकता हैं। यह जरूरी नहीं है कि कापित्थक ग्राम अवन्तिक (उज्जैन) के निकट या अंतर्गत ही रहा हो।

कुछ विद्वानों ने इस श्लोक में वर्णित "कापित्थके" शब्द को ही अशुद्ध बताया है और उनके मतानुसार यह शब्द 'काँपिल्यके' है। इस मत की पुष्टि करने वालों में सबसे अग्रणीय काशी निवासी महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी हैं जिन्होंने भारत के ज्ञातव्य ज्योतिषियों का परिचय लिखते समय "गणक तरंगाणी" पुस्तक में आचार्य वराह मिहिर का परिचय देते हुए आचार्य वराह मिहिर का मूल स्थान "कांपिल्यके" लिखा है। उनके मतानुसार यह स्थान उ० प्र० के जिला झांसी अंतर्गत वर्तमान कालपी ही हो सकता है। यह विचार इस कारण मान्य नहीं हो सका क्योंकि कालपी का प्राचीन नाम 'कालप्रिय' था न कि "कांपिल्यके" था। "भारतीय ज्योतिष" में डा० नेमीचन्द जैन ने भी इस मत का प्रतिपादन किया है—

"कांपिल्य" (कालपी) नगर में सूर्य से वर प्राप्त कर अपने पिता आदित्यदास से ज्योतिष शास्त्र की शिक्षा प्राप्त की . . . ।" ध्यान रहे कि जिस श्लोक की व्याख्या करते हुए डा० जैन ने कांपिल्य (कालपी) नगर लिखा है उस श्लोक में आपने कापित्थ के स्थान पर "काम्पिल्लके" लिखा है। इससे इनके अपने ही कथन में भेद होने से शंका खड़ी हो जाती है।

"कापित्थके" शब्द ही शुद्ध है और यह स्थान अवन्ती पुरी (आधुनिक उज्जैन) के अन्तर्गत है, इस मत की पुष्टि सर्व प्रथम आचार्य वराहमिहिर के समस्त साहित्य (पंचसिद्धान्तिका को छोड़कर) का संस्कृत भाष्य करने वाले महान आचार्य उत्पल भट्ट (भट्टोत्पल) ने की है। यह उल्लेखनीय है कि भट्टोत्पल का समय आचार्य वराह मिहिर से लगभग तीन सौ वर्ष बाद का ही है। "बृहज्जातक" के इस श्लोक की व्याख्या करते हुए भट्टोत्पल ने लिखा है—

**"कापित्थाख्ये ग्रामे योऽसौ भगवान् सविता सूर्यस्तस्माल्लब्धः प्राप्तो वर प्रसादो येन। आवन्तिकः आवन्तिके देशे उज्जयिन्यां वास्तव्यः। कोऽसौ ? वराहमिहिरः।"**

इस व्याख्या में "कापित्थाख्ये" शब्द का ही उपयोग किया गया है किन्तु कापित्थक स्थान का उज्जैन से कोई सम्बन्ध नहीं बताया गया है।

"भारतीय ज्योतिष" (ज्योतिष का इतिहास) लिखने वाले सर्व प्रथम भारतीय विद्वान श्री शंकर बाल कृष्ण दीक्षित ने आचार्य वराहमिहिर के विषय में इस प्रकार लिखा है कि —

"इससे ज्ञात होता है कि इनके पिता का नाम आदित्यदास था और इन्होंने ज्ञान उन्हीं से प्राप्त किया था। कापित्थक में इन्हें सूर्य का वर प्रसाद प्राप्त हुआ था और ये अवंती के निवासी थे। अवन्ती के पास कापित्थक नाम का कोई ग्राम होगा और वहां वे कुछ दिन रहे होंगे।"

"हिन्दी विश्व कोष" में भी इनके मूल निवास स्थान को कापित्थ ही बताया गया है—"उक्त श्लोकानुसार वराहमिहिर के पिता का नाम आदित्यदास था। वे

अवन्ती वासी थे। कापित्थ नामक स्थान में उन्होंने सूर्यदेव को प्रसन्न कर वर लाभ किया था।"

"हिन्दी शब्द सागर" के इस कापित्थ शब्द की विववेचना करते हुए डा० गोरख प्रसाद ने "भारतीय ज्योतिष का इतिहास" के पृष्ठ ११६ पर लिखा है। "सम्भवतः यह कापित्थ-ग्राम है जो उज्जैन के निकट (आज भी) कायथा के नाम से विद्यमान है।"

प्रसिद्ध लेखक प्रो० वी० सूर्य नारायण राव (संस्थापक एस्ट्रालोजिक्ल मैगजीन) ने "बृहज्जातक" का अंग्रेजी भाष्य करते समय कई स्थानों पर आचार्य वराहमिहिर का जन्म स्थान कापित्थ ही लिखा है। "बृहज्जातक" के श्लोक का अनुवाद करते समय इन्होंने स्पष्ट रूप से लिखा है—**"बारन इन कापित्था, ए टाउन इन दी कांटरी ऑफ आवन्ती·····।"**

"बृहज्जातक" के दूसरे अंग्रेजी टीकाकार बैंगलूर निवासी श्री वी० सुब्रह्मण्यम् शास्त्री ने भी इस शब्द को कापित्थ ही बताया है—**"थरो दी बलेसिंग ऑफ दी सन इन दी विलेज ऑफ कापित्था।"**

प्रसिद्ध हिन्दी टीकाकार टिहरी (गढ़वाल) निवासी पं० महीधर शर्मा ने भी "बृहज्जातक" की हिन्दी टीका करते समय आचार्य वराहमिहिर को कापित्थ ग्राम का निवासी बताया है—। "आवन्तिक देश में उज्जनयी नामक नगर के कापित्थ नामक ग्राम का रहने वाला आदित्यदास ब्राह्मण का पुत्र वराहमिहिर।"

"बृहज्जातक" की संस्कृत व्याख्या पं० शिवलाल पाठक ने भी की है जो अभी तक अप्रकाशक ही है और उसकी हस्त लिखित प्रतिलिपि "ओरियन्टल लायब्रोरी", उज्जैन में सुरक्षित रखी है। इस भाष्य में श्री पाठक ने कांपिल्य एवं कापित्थक दोनों नामों को ठीक बताया है और यह सिद्ध किया है कि मालवा (उज्जैन) में ही यह दोनों स्थान हैं। अर्थात आचार्य वराहमिहिर चाहे "कांपिल्य" ग्राम के निवासी थे और चाहे "कापित्थक" ग्राम के रहने वाले थे। वह अवन्ती (उज्जैन) पुरी के ही वासी थे। मालवा अन्तर्गत आधुनिक कंपल एवं कायथा ही प्राचीन कांपिल्य एवं कापित्थक स्थान हैं—

**"कांपिल्यकेति पाठे कंपले इति ख्यातः। कापित्थकेति पाठे कायथा वा। इमौ ग्रामौ समीपगताववंत्याः प्रसिद्धौ च।"**

कुछ विद्वानों ने आचार्य वराहमिहिर को पटना (बिहार) का निवासी सिद्ध करने का प्रयास किया है और उनका मत है कि विश्व विख्यात ज्योतिषी आर्यभट एवं विश्व विख्यात खगोलवेत्ता आचार्य वराह मिहिर मूल रूप से पटना के ही निवासी थे और बाद में आजीविका के लिए आचार्य वराहमिहिर उज्जैन चले गये। श्री बलदेव मिश्र ने, 'आर्य भट्टीयम्' की भूमिका में इस विषय पर इस प्रकार लिखा है कि—"चूंकि वराहमिहिर ने शक ४२७ में "पंचसिद्धान्तिका" लिखी और आर्य भट ने शक ४२१ में 'आर्य भट्टीय' इसलिए दोनों करीब-करीब एक ही समय के हैं। चूंकि वराहमिहिर ने आर्यभट की चर्चा की है, आर्यभट के ग्रन्थ का खण्डन किया है और छह वर्ष के अन्दर उन्हें आर्यभट के ग्रन्थ का विषय मालूम हो सका जिसका उन्होंने खण्डन किया है, इसलिए टीकाकार का अनुमान है कि वे दोनों एक ही नगर के रहने वाले थे। वराहमिहिर को मगध की राजधानी पटना में होने का और भी कारण

है। प्रथम यह है कि वराहमिहिर के 'पंचसिद्धान्तिका' को छोड़कर प्रायः अन्य सभी ग्रन्थों पर टीका लिखने वाले मशहूर पंडित भट्टोत्पल (८८८ शक) ने "बृहत्-संहिता' की टीका में वराहमिहिर को "मगधद्विज" सा "मगद्विज" कहा है। अर्थात ये मगध के ब्राह्मण या शाकद्विपीय ब्राह्मण थे। इनके शाकद्विपीय होने में एक प्रमाण यह भी है कि ये सूर्योपासक थे। अपने सभी ग्रन्थों के मंगल श्लोकों में श्री सूर्य नारायण की ही इन्होंने स्तुति की है। इनके पिता का नाम सूर्यदास था। अपने नाम के अन्त में सूर्य (मिहिर) लगाया था। सूर्य की ही उपासना से सब कुछ मिल सकता है ऐसा इनका विश्वास था। इसलिए वे शाकद्विपीय थे। बिहार राज्य में शाक-द्विपीय ब्राह्मण बहुत देखें जाते हैं। जीविका की दृष्टि से पीछे उज्जैन चले गये थे। उनके पटना के होने का कारण यह भी जान पड़ता है कि उस समय ग्रीक लोग पटना में थे, क्योंकि पटना नगर उस समय तक महान साम्राज्य की राजधानी थी। यहीं वराहमिहिर का यवनों से सम्पर्क हुआ होगा और उनसे कुछ बातें ली होंगी। वे अपनी "बृहत्संहिता" में लिखते हैं—

**म्लेच्छाहि यवनास्तेषु**
**सम्यक् शास्त्रमिदं स्थितम्।**
**ऋषिवत्तेऽपि पूज्यन्ते किं**
**पुनर्दैवविद्द्विजः॥**

इस प्रकार आर्यभट और वराहमिहिर दोनों पटना (बिहार) के थे। उनके उज्जैन जाने के प्रसंग में ऐसा भी सोचा जा सकता है कि आर्यभट की प्रख्याति से वे यहाँ रह कर जीविकोपार्जन में कठिनाई का अनुमान किये होंगे और अपना कर्म क्षेत्र स्थानान्तर करने का निश्चय कर उज्जैन गये होंगे।"

'श्री १०८ वराहमिहिराचार्य वंशावली' ग्रन्थ के ४३वें श्लोक में आचार्य वराहमिहिर का जन्म पटना में हुआ था। ऐसा लिखा हुआ है—

**प्रासूत सादित्य वधूरिहवै**
**महाप्रसूतिर्महनीयपुत्रम्।**
**आदित्यतेजोंशभरं दधानं**
**ज्योतिः कलाराशिमहानिधानम्॥**

अर्थात "इसी पटना नगर ही में आदित्य-दास जी की भार्या ने महामहिम शाली सूर्य तेज के अंश को धारण करने वाला और ज्योतिःशास्त्र कला के समूह की भारी निधि स्वरूप पुत्र रत्न उत्पन्न किया।"

"विदुषी खना" उपन्यास के पृष्ठ चार पर आचार्य वराह मिहिर का जन्म उज्जैन में लिखा है—"अतः एक दिन इसी उज्जयिनी राज्य के सभापंडित वराह के घर एक पुत्र रत्न ने जन्म लिया। अतः उसी पुत्र को मिहिर के नाम से संसार में विख्यात होने के पहले उसे जिस एक महा-दुर्घटना में पतित होना पड़ा, उसी का वर्णन अब यहाँ पर किया जायेगा।"

"भविष्य पुराण" के अष्टम अध्याय के ११८वें श्लोक में आचार्य वराहमिहिर का जन्म उज्जैन में हुआ था ऐसा वर्णन मिलता है—

**उज्जयिन्यामहं देवा यास्ये रूद्रपशोर्गृहे।**
**नाम्ना च मिहिराचार्यो ज्योतिश्शास्त्र**
**प्रवर्त्तकः॥**

आज से लगभग ३३ वर्ष पूर्व बम्बई से एक पुस्तक "दैवज्ञवलभा" प्रकाशित हुई थी जिसके रचयिता आचार्य वराहमिहिर सिद्ध किये गये हैं। आचार्य वराहमिहिर द्वारा लिखित ग्रन्थों की सूची में इस पुस्तक का कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता है, मगर

इस पुस्तक का अन्तिम श्लोक वही है जो "बृहज्जातक" के २८वें अध्याय का नवम श्लोक है। अन्तर केवल उतना है कि इस श्लोक में "कापित्थके" के स्थान पर 'कापित्थतः' है और 'सम्यग् होरा' के स्थान पर 'यत्नादेतां' है, एवं 'रुचिरांचकार' के स्थान पर 'रचयांचकार' है।

**आदित्यदासतनयस्तदवाप्तबोधः**
**कापित्थलः सवितृलब्धवरप्रसादः ।**
**आवंतिको मुनिमतान्यवलोक्य यत्नादेतां**
**वराहमिहिरो रचयांचकार ॥**

अर्थात 'अवंति नगर निवासी आदित्य दास का पुत्र और कापित्थल गोत्रोत्पन्न तथा सूर्य से कृपा पूर्वक वर प्राप्त हुआ है जिसको वराहमिहिराचार्य अपने पिता से ज्ञान पाकर मुनियों के मतों को प्रयत्न से देखकर इस ग्रन्थ को रचता हुआ।" इस श्लोक में हमें 'कापित्थे' या 'कापित्थके' के स्थान पर 'कापित्थलः' शब्द के दर्शन होते हैं जो टीकाकार के मतानुसार किसी ग्राम का नाम न होकर आचार्य वराहमिहिर के गोत्र का सूचक है। टीकाकार ने आदित्यदास को अवंति नगरी (उज्जैन) का निवासी बताया है। यह ग्रन्थ सत्य है या जाली इस पर विद्वानों को खोज करनी चाहिए। 'बृहज्जातक' में वर्णित श्लोक की साम्यता से यहां हमें एक नया ही रूप मिलता है।

डा० अजय मित्र शास्त्री ने जनरल ऑफ दी ओरियंटल इन्स्टीट्यूट' बड़ौदा की जिल्द XV, नं० ३-४ (मार्च-जून १९६६) में प्रकाशित होने वाले लेख "फ्रेश लाईट ग्रीन दी लाईफ ऑफ वराहमिहिर" में सातवीं शताब्दी (ईस्वी) में भारत भ्रमण करने वाले चीनी यात्री यूआनचुआंग के यात्रा संस्मरणों 'सी-यू-की' के अनुसार उत्तर प्रदेश के जिला फरूखाबाद अन्तर्गत वर्तमान संकिस को ही प्राचीन कापित ग्राम माना है, क्योंकि उस समय इसे चीनी यात्री के कथनानुसार खपित या 'कपित' कहा जाता था। उनके मतानुसार 'कपित' शब्द "कपिथ" से बहुत ज्यादा मिलता-जुलता है। वर्तमान "संकिस" ही मौर्यकाल का "सांकाश्य" स्थान है जहाँ पर अशोक महान ने स्तम्भ आदि गड़वाए थे। चीनी यात्री ने जब इस स्थान की यात्रा की तब भी यहां बौद्ध भिक्षु और उनके लगभग एक हजार शिष्य तथा दस ब्राह्मण धर्मावलम्बी देवालय मौजूद थे। अतः डा० शास्त्री इसी "संकिस" को चीनी यात्री के कथनानुसार वराहमिहिर का जन्म स्थान कापित्थक मानते हैं, परन्तु कोई ठीक प्रमाण उनके पास इस विषय में नहीं है जिससे इसे वास्तविक "कापित्थक" ही मान लिया जाये।

इस प्रकार से हम देखते हैं कि आचार्य वराहमिहिर के जन्म स्थान के विषय में विद्वानों के भिन्न-भिन्न मत हैं और सभी अपने-अपने मत पर दृढ़ हैं। वास्तव में आचार्य वराहमिहिर का जन्म आवन्तिक देश का ही है और यहीं पर उनका सम्राट विक्रमादित्य की सभा का नवरत्न होने का वृत्तान्त भी सही मिलता है। यदि उनका जन्म या किसी भी प्रकार से कुछ सम्बन्ध पाटली-पुत्र या मगध से होता तो वह इसका उल्लेख अवश्य करते।

वर्तमान उज्जैन से चौदह मील दूर उज्जैन-मक्सी रोड पर छोटी काली सिन्ध नदी के किनारे एक गाँव कायथा है जिसकी लगभग दो हजार जनसंख्या है। इसे आचार्य वराहमिहिर की जन्मभूमि होने का गौरव प्राप्त है। इस गाँव का उल्लेख सर्व प्रथम उज्जैन निवासी पद्मभूषण डा० सूर्यनारायण व्यास ने "विक्रम स्मृति ग्रन्थ" के ३५७ पृष्ठ पर किया है—"आज तो सन्देह

के लिए भी अवसर नहीं है कि वराहमिहिर कापित्थक (कायथा) ग्रामवासी और उज्जैन मण्डलान्तर्गत ही थे।"

इसके बाद पुनः डा० व्यास ने सन् १९४८ में "ज्योतिर्विद्" पत्रिका में उस गाँव के विषय में सविस्तार लेख लिखा था, जिसमें उन्होंने आचार्य वराहमिहिर द्वारा वर्णित स्थल कापित्थक को ही वर्तमान कायथा, गाँव सिद्ध किया था। इस लेख से प्रभावित होकर श्री वी० एस० वाकङ्कर ने सर्व प्रथम १७ सितम्बर १९६४ को इस गाँव की ऐतिहासिक दृष्टि से यात्रा की और उन्हें यहाँ पर उस समय कुछ महत्व-पूर्ण सामग्री भी हाथ लगी। इसके पश्चात विक्रम विश्वविद्यालय के कुलपति डा० शिव मंगल सिंह 'सुमन', विश्वविद्यालय के पुरातत्व विभाग तथा मध्य प्रदेश सरकार के सहयोग से श्री वाकङ्कर ने पुनः १९६५ से १९६७ ई० तक यहीं उत्खनन कार्य कर वाया। इस बार उन्हें यहाँ पर पूर्व हड़प्पा कालीन सभ्यता की महत्वपूर्ण सामग्री के अतिरिक्त पूर्व मालवा सभ्यता तथा परमार राजाओं एवं ईस्वी अठारहवीं शताब्दी तक के अन्यकाल की भिन्न-भिन्न सामग्री प्राप्त हुई। इस उत्खनन से 'कायथा' का सम्बन्ध ईसा पूर्व लगभग दो हजार वर्ष पूर्व की सभ्यता तक पहुंच जाता है, इससे सिद्ध होता है कि यह स्थान वास्तव में ही तब बड़ा महत्वपूर्ण रहा होगा।

ऋग्वेद में 'अवन्ता' का उल्लेख है और तभी से इस प्रदेश का नाम अवन्ती पड़ गया था। अवन्ती प्रदेश की प्राचीन राजधानी महिषमति थी जिसके पतन के बाद वह स्थान उज्जैन को मिला। इसी कारण आचार्य वराहमिहिर ने अवन्ती का उल्लेख किया है, इस विषय का विस्तृत वर्णन वाकङ्कर द्वारा विक्रम विश्वविद्यालय की पत्रिका 'विक्रम' के 'कायथा विशेषाँक' में किया गया है।

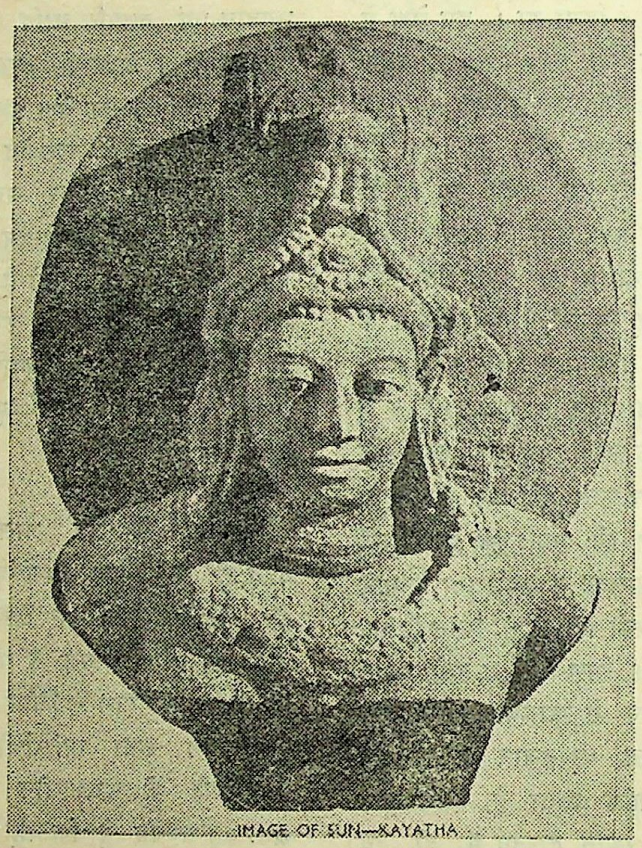
आचार्य वराहमिहिर से सम्बन्धित प्राप्त सामग्री में वहां से उत्खनन द्वारा सूर्य भगवान की लगभग छह प्रतिमाएं प्राप्त हुई हैं। वैसे अन्य देवी देवताओं की भी अनेक मूर्तियाँ इस खुदाई से मिली है जिनमें भगवती महिष मर्दिनी एवं शेषशायी भगवान एवं गणपति आदि की मूर्तियाँ भी शामिल हैं। आचार्य वराहमिहिर सूर्य भगवान के उपासक थे। अतः यह जरूरी बात है कि उनके इष्ट-देव भगवान सूर्य देव की प्रतिमा यहाँ पर अवश्य रही हो। उस विषय में हमें भट्टोत्पल के यह वाक्य बड़े ही सहायक सिद्ध होते है कि कापित्थक एक ऐसा ग्राम था जहाँ पर भगवान सूर्य का मन्दिर था·····"कापित्थाख्ये ग्रामे योऽसौ भगवान सविता सूर्यस्तस्मालब्धः प्राप्तो वरप्रसादो येन।"

खुदाई में एक लाल पत्थर की बहुत ही सुन्दर एवं आकर्षक सूर्य भगवान की एक बड़ी प्रतिमा मिली है जिसका नीचे का भाग गायब है और इसी मूर्ति का उल्लेख भट्टोत्पल ने किया हैं। इस मूर्ति की निर्माण कला एवं शैली को आचार्य वराहमिहिर के समकालीन माना गया है। अतः यह सम्भव है कि वह मूर्ति उस समय किसी भव्य मन्दिर में रही हो। इस मूर्ति के गले में हार एवं मुकुट एवं किरीट बड़े ही कलात्मक ढंग से निर्मित है। श्री डा० शिव मंगल सिंह 'सुमन' (कुलपति विक्रम विश्वविद्यालय) ने मुझे १५ जनवरी १९६९ के एक पत्र में इस मूर्ति का उल्लेख करते हुए लिखा था–"सम्भवतः आपने पत्रों में पढ़ा होगा कि विक्रम विश्वविद्यालय ने वराह मिहिर की जन्म भूमि कायथा ग्राम में पिछले दो वर्ष में कुछ उत्खनन कार्य कर-

वाया है, जहाँ हमें पुरातत्व की बहुमूल्य सामग्री प्राप्त हुई है। भगवान सूर्य की मूर्ति भी प्राप्त हुई हैं। बहुत सम्भव है कि आचार्य वराहमिहिर इसी की आराधना करते रहे हों।"

दिनांक ९ जुलाई १९७१ के एक पत्र में म० प्र० प्रशासन के शिक्षा विभाग के सचिव मान्य श्री ल० ओ० जोशी महोदय ने भी कायथा को ही आचार्य वराहमिहिर की जन्म भूमि होने की पुष्टि निम्न शब्दों में की है—

"कायथा, जिला उज्जैन में पुरातत्व का शोध कार्य पिछले कुछ ही वर्षों में बहुत आगे बढ़ा है और वहां जो सूर्य की प्रतिमा




**कायथा में उत्खनन द्वारा प्राप्त आचार्य वराहमिहिर के आराध्य भगवान सूर्यनारायण की कलात्मक एवं भव्य मूर्ति**

प्राप्त हुई है वह बहुत सुन्दर कलाकृति भी है तथा आचार्य वराहमिहिर के नाम के दूसरे अंश के अर्थ (मिहिर का अर्थ सूर्य है) को भी प्रकाशित करती है।"

इससे सिद्ध होता है कि वर्तमान कायथा ग्राम ही प्राचीन कापित्थक है जहाँ आचार्य वराह मिहिर ने जन्म लिया था।

इतने पुष्ट प्रमाण इस दिशा में भारत के किसी स्थल पर आज तक नहीं मिल सके हैं। आज से लगभग दो वर्ष पूर्व जब मैंने "वराहमिहिर स्मृति उत्सव" मनाने की योजना बनाई, तब मुझे पद्मभूषण डा० सूर्य नारायण व्यास ने उज्जैन से एक पत्र लिखा था जिसमें कायथा के बारे में इस

प्रकार से स्पष्ट संकेत था। "आप वराह मिहिर की जयन्ती मनाने का विचार कर रहे हैं। मुझे बहुत प्रसन्नता हुई। वराहमिहिर की जन्म या अवसान तिथि दुर्लभ है, किन्तु कापित्थक (कायथा) में पिछले ३ वर्षो से हम लोग यह स्मृति पर्व मना रहे हैं।"

अतः वर्तमान कायथा ही प्राचीन कापित्थक है जहाँ आचार्य वराहमिहिर ने जन्म लिया था और भगवान सूर्य की आराधना से वर प्राप्त किया था। प्राचीन अवन्ती पुरी ही आज की उज्जैन पुरी है और यहीं पर सम्राट विक्रमादित्य संवत प्रवर्तक का राज्य था। कापित्थक नाम ही कालान्तर में बिगड़कर कायथा हो गया है। यह बात युक्ति संगत भी है। उज्जैन के इतिहास में मुगल-मराठा राज्यों के उदय एवं पतन का उल्लेख मिलता है और इसी काल में "कापित्थक" के स्थान पर अपभ्रंश होकर "कायथा" एवं 'कायता' का प्रयोग होता रहा है। ऐसा यहां से प्राप्त प्राचीन अभिलेखों से सिद्ध होता है।

इसी सिलसिले में इन पंक्तियों के लेखक ने मई ७१ में उज्जैन की यात्रा की। तब आचार्य वराहमिहिर की जन्म भूमि के विषय में बहुत से सुदृढ़ प्रमाण मिले जिनका समाचार १२ मई ७१ के दैनिक नवभारत टाइम्स, एवं दिनांक १४ मई ७१ के दैनिक हिन्दुस्तान में विस्तृत रुप से इस प्रकार प्रकाशित हुआ था—

**आचार्य वराहमिहिर की जन्मभूमि कायथा**

दिल्ली स्थित मेरु स्तम्भ (कुतुबमीनार) के आदि निर्माता, विश्व के महान खगोलवेत्ता एवं संवत प्रवर्तक सम्राट विक्रमादित्य की सभा के नवरत्न आचार्य वराहमिहिर के जीवन एवं उनके कार्य कलापों के अन्वेषक ज्योतिर्विज्ञानाचार्य श्री केदार नाथ प्रभाकर ने मई के प्रथम सप्ताह में आचार्य वराह मिहिर की जन्म भूमि कायथा (उज्जैन) की यात्रा की।

विक्रम विश्वविद्यालय के उपकुलपति डा० शिवमंगल सिंह 'सुमन', डा० सूर्य नारायण व्यास एवं पंडित आनन्द शंकर व्यास आदि विद्वानों द्वारा उन्हें दुर्लभ एवं महत्व पूर्ण सामग्री प्राप्त हुई है।

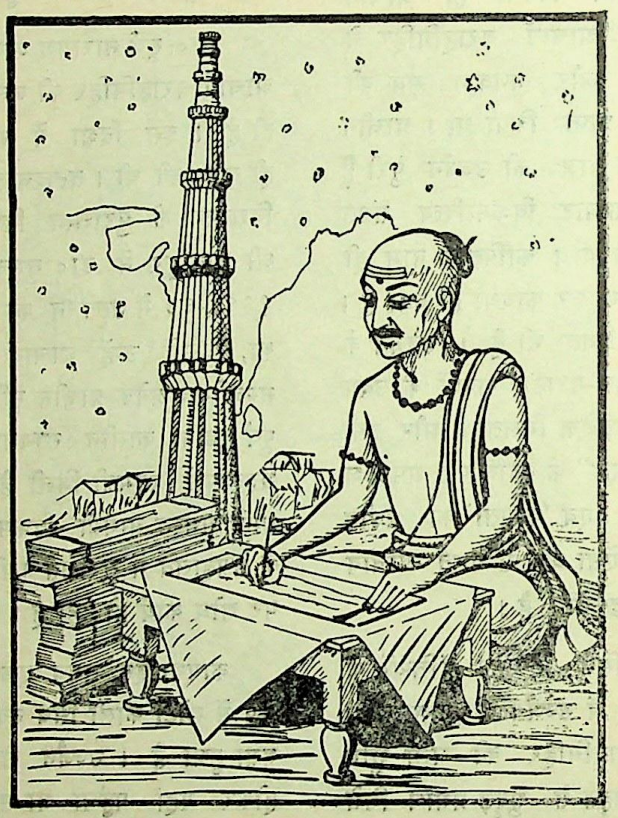
डा० सूर्य नारायण व्यास ने बताया कि आचार्य वराहमिहिर की जन्म भूमि कायथा ही है। इस दिशा में सर्व प्रथम उन्होंने ही खोज की थी। तत्पश्चात विक्रम विश्व-विद्यालय के पुरातत्व विभाग के अध्यक्ष श्री वाकङ्कर ने डा० सुमन की प्रेरणा से १९६५-६६ में उत्खनन का कार्य करवाया था, जिसमें उन्हें आचार्य वराहमिहिर से सम्बन्धित अनेक प्राचीन मूर्तियों के अलावा पूर्व हडप्पा कालीन सभ्यता से सम्बन्धित महत्वपूर्ण सामग्री मिली है। उत्खनन से प्राप्त समस्त सामग्री विक्रम विश्वविद्यालय के संग्रहालय में सुरक्षित रखी है और उस पर शोध कार्य हो रहा है।

कायथा इस समय एक छोटे से गांव के रूप में छोटी काली सिंध नदी के तट पर बसा हुआ है। उज्जैन से मक्सी तराना होकर यहां पहुंचा जा सकता है। दूरी केवल १४ मील है। स्वयं आचार्य वराह मिहिर ने अपनी प्रसिद्ध कृति 'बृहज्जातक' में अपनी जन्म-भूमि को आवन्तिका (उज्जैन) के अन्तर्गत कापित्थक ग्राम लिखा है। जो बिगड़ कर अब कायथा हो गया है।"

अतः यह निष्कर्ष निकलता है कि आचार्य वराहमिहिर का जन्म स्थान वर्तमान कायथा ही है और उनका जन्मस्थान किसी अन्य स्थान जैसे कालपी, संकिसा अथवा पटना इत्यादि से सम्बन्धित नहीं है।

# साहित्यिक परिचय

卐



**वराहमिहिर** द्वारा रचित साहित्य कौन-कौन सा है और उसका वैज्ञानिक, साहित्यिक, ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक महत्व क्या है, किन-किन विद्वानों ने कब-कब उनके साहित्य की व्याख्याएँ एवं अनुवाद किए हैं, इस समय उनके कौन-कौन से ग्रन्थ उपलब्ध हैं और कौन-कौन से ग्रन्थ अप्राप्य हैं—आदि-आदि उनके समग्र साहित्य के विषय में समस्त जानकारी को इन पृष्ठों में प्रस्तुत किया गया है।

—सम्पादक

# ज्योतिष साहित्य में वराहमिहिर का स्थान

भारत में फलित एवं खगोलीय ज्योतिष साहित्य के इतिहास में वराहमिहिर का स्थान अनूठा है। वराहमिहिर ने अपनी विलक्षण योग्यता के द्वारा ज्योतिष की तीनों शाखाओं (सिद्धान्त, संहिता एवं होरा) पर ग्रन्थ लिखे हैं। यही कारण है कि पूर्व काल में होने वाले उन सभी लेखकों को वराहमिहिर से मात खानी पड़ी जिन्होंने ज्योतिष की किसी एक या दो शाखाओं पर ग्रन्थों की रचना द्वारा प्रसिद्धि प्राप्त की थी। कहा गया है व्याकरण में पाणिनी का, धर्म शास्त्र में मनु का, राजनीति विज्ञान में चाणक्य का, नाट्य शास्त्र में भरत का जो स्थान है, ज्योतिष में वही स्थान वराह मिहिर का है। वराहमिहिर की श्रेष्ठ योग्यता एवं चतुर्दिक कीर्ति तथा ज्योतिष में पूर्ण प्रवीणता के फलस्वरूप ही इनसे पूर्व की सभी मौलिक कृतियों की अपेक्षा की जाने लगी और इन्हें सदैव कृतज्ञता पूर्ण स्मरण किया जाने लगा— *

श्रो मद्वराहमिहिरार्यभटाद्यभीष्ट-शब्दार्थ-
रीति-विरहश्शुभदोऽत्र नूनम्।

—सद्रत्नमाला

वराहरचिताध्याने ज्योतिषामयने घने।
यथा यथार्थबुद्धिस्स्यात् तथानुज्ञापय प्रभो॥

—हलधर संहिता

विलक्षण विद्वता एवं योग्यता द्वारा वराहमिहिर के समग्र साहित्य को अमर करने वाले विख्यात पण्डित उत्पल (भट्टोत्पल) ने तो 'बृहत्संहिता' का संस्कृत में भाष्य लिखते समय वराहमिहिर को साधारण मनुष्य न बता कर सूर्य भगवान का अवतार सिद्ध किया है—

यच्छास्त्रं सविता चकार विपुलैः स्कन्धैस्त्रिभिर्ज्यौतिषं, तस्योच्छित्तिभयात् पुनः कलियुगे संसृत्य यो भूतलम्। भूयः स्वल्पतरं वराहमिहिरव्याजेन सर्वं व्यधा-दित्थं यं प्रवदन्ति मोक्षकुशलास्तस्मै नमो भास्वते॥

—भट्टोत्पल

भट्टोत्पल ने तो वराहमिहिर के समग्र साहित्य को ही विशाल समुद्र बताया है :—

वराहमिहिरोदधौ सुबहुभेदतोयाकुले
ग्रहर्क्षगणयादसि प्रचुरयोगरत्नोज्ज्वले।
भ्रमन्ति परितो यतो लघुधियोऽर्थलुब्धाः

—भट्टोत्पल

---

* आचार्य वराहमिहिर के जीवन काल में ही इन्हें बहुत आदर एवं सम्मान प्राप्त होने लग गया था। आचार्य वराहमिहिर के समकालीन महाकवि कालिदास ने अपनी प्रसिद्ध कृति 'ज्योतिर्विदाभरण' में आचार्य वराहमिहिर के मत को बड़ा आदर दिया है—

अन्यासद्युक्तिविहितोद्गमपक्षराशीन् व्यर्थानहं विरचयामि वरोतियुक्तैः।
मत्वा वराहमिहिरादिमतैरनेकैर्ज्योती वदाभरणमप्यनं सन्मतार्हम्॥

—सम्पादक

यही नहीं वराहमिहिर को सूर्य भगवान का अवतार सिद्ध करने की चर्चा तो उत्पल के बाद में होने वाले अन्य लेखकों द्वारा भी की जाने लगी :— *

**पूर्वं पूर्वमुनिं (निः) ससर्ज विविधं यज्ज्योतिषां विश्वसृट् सारोद्धारपरौ ततोऽप्यभिमतां दैत्येन्द्रयोर्मन्त्रिणौ ।**

**तस्माद् गर्ग-पराशरादिमुनिभिः प्रोक्तं तदल्पं पुनः संक्षिप्तं कृतवान् वराहमिहिरोऽर्कांशावतारोऽखिलम् ॥**

—ज्योतिष चन्द्रोदय

**मिहिरं वराहमिहिरं वन्दे सन्देहवेदिनं जगताम् । ज्योतिश्चक्रविभावनहेतुं जगदेकचक्षुरक्षुद्रम् ॥**

—बीजपल्लव

**ज्योतिश्शास्त्रमिदं विधाय विपुलं त्रिस्कन्धभिन्नं पुरा लोकानां मतिमान्ह्यतः कलियुगे तत्पातभीत्या पुनः । स्वल्पं तत् सकलं ततो रचितवानादित्यदासात्मजः भूत्वा यो मिहिरो वराहमिहिरं नाम्ना नमस्कुर्महे ॥**

—दशाध्यायी

ब्रह्मगुप्त, जो प्राचीन ग्रन्थों के रचयिताओं की कटु आलोचनाएं करने में प्रसिद्ध हैं, उन्होंने भी वराहमिहिर के विषय में कोई गम्भीर आक्षेप नहीं लगाया है । 'सारावली' के प्रसिद्ध लेखक कल्याण वर्मा (६५०-७२५ ई०) ने भी वराहमिहिर के होरा शास्त्र को महानता दी है—

**विस्तरकृतानि मुनिभिः परिहृत्य पुरातनानि शास्त्राणि । होरातन्त्रं रचितं वराहमिहिरेण संक्षेपात् ॥**

—सारावली

विख्यात ज्योतिषी भास्कराचार्य ने भी वराहमिहिर की कृतियों से लाभान्वित होने का उल्लेख किया है:—

**कृति जयति जिष्णुजो गणकचक्र चूडामणिर्जयन्ति ललितोक्तयः प्रथितसन्त्र स्द्युक्त्यः । वराहमिहिरादयः समवलोक्य येषां कृतीः कृती भवति सादृशोऽप्यतनुतन्त्र बन्धेऽल्पधीः॥**

—सिद्धान्त शिरोमणी

शतानन्द (१०९८ ई०) ने तो अपने "भास्वती करण" की रचना ही वराहमिहिर कृत 'पंचसिद्धान्तिका' के आधार पर ही की है ऐसा उन्होंने स्वयं लिखा है—

**नत्वा मुरारेश्चरणारविन्दं श्रीमान् शतानन्द इति प्रसिद्धः । तां भास्वतीं शिष्यहितार्थमाह शाके विहीने शशिपक्षरवैकैः अथ प्रवक्ष्ये मिहिरोपदेशात् तत्सूर्यसिद्धान्तसमं समासात् ।**

—भास्वती-करण

श्रीपति, श्रीनिवासमिश्रात्मज, श्री निवासाचार्य और नारायणदास आदि-आदि ने अपनी-अपनी ज्योतिष शास्त्र की प्रसिद्ध रचनाओं में अपने आपको वहारमिहिर का ऋणी माना है—

---

* एक समय ऐसा भी था जब ज्योतिष के विद्वानों की सभा में वही व्यक्ति प्रति-ष्ठित हो सकता था जो वराहमिहिर द्वारा रचित ग्रन्थों का ज्ञाता होता था । अर्थात ज्योतिष में योग्यता प्राप्त करने का माप दण्ड वराहमिहिर के साहित्य में प्रवीणता ही मानी जाने लगी थी । "प्रश्न मार्ग" के रचियता ने लिखा है:—

**होरां वराहमिहिरास्यविनिर्गतां ये मालामिवादधति दैवविदः स्वकण्ठे ।**
**कृष्णीयशास्त्रमपि भर्तृमतीव सूत्रं तेषां सभासु महती भवतीह शोभा ॥**

—सम्पादक

विलोक्य गर्गादिमुनिप्रणीतं वराह-लल्लादिकृतं च शास्त्रम् । दैवज्ञ कण्ठाभरणार्थमेषा विरच्यते ज्योतिषरत्नमाला ॥

—ज्योतिषरत्नमाला ।

महामुनीन्द्रैर्बहुतत्वदर्शिभिर्वराहमुख्यै रचितानेकधा । प्रबन्धसारान् समवेक्ष्य सन्ततं करोम्यहं ज्योतिषतत्वकौमुदीम्

—ज्योतिषतत्व कौमुदि

अस्तङ् गतवति मिहिरेऽति मलिनदोषाकुले च गोविभवे । उद्वाहादिषु शुद्धिग्रहणार्थं दीपिका क्रियते ॥

—शुद्धिदीपिका

श्री ब्रह्मदासनयजाततनयः सुविद्वान् श्रीमानगस्त्यकुलो यदुनाथभक्तः वाराहताजिकमुकुन्दमतं समीक्ष्य नारायणः परमशास्त्रमिदंचकार ।

—प्रश्नप्लव या वैष्णवशास्त्र

गणेश दैवज्ञ ने भी यह महसूस किया है कि 'जब फलित एवं खगोलीय ज्योतिष के पराशर एवं आर्यभट आदि द्वारा प्रतिपादित नियम गलत सिद्ध होने लग गये, तब वराहमिहिर ने उन्हें अपनी बुद्धि द्वारा शुद्ध किया ।'

ईसा की ग्यारहवीं शताब्दी में भारत आने वाले अरबी यात्री अल्बेरूनी ने भी वराहमिहिर का बड़ा आदर किया है और उनकी स्तुति की है । जहां कहीं उसे वराहमिहिर के ग्रन्थों में कोई दोष नजर आया तो उसने उसे वराहमिहिर का दोष न ठहरा कर यह सिद्ध करने की कोशिश की है कि इसका कोई और छिपा हुआ अर्थ हो सकता है जो हमारी समझ से बाहर है । अल्बेरूनी ने एक स्थान पर लिखा है:-

'वराह के कथन सत्य पर आश्रित हैं परमेश्वर करे कि सभी बड़े लोग उसके आदर्श का पालन करें ।' अल्बेरूनी ने इस बात का भी दुख प्रकट किया है कि लोगों ने वराहमिहिर का अनुकरण नहीं किया है । ब्रह्मगुप्त के कपट भरे आरोपों की अल्बेरूनी ने घोर निन्दा की है ।

बहुत बाद में तो वहारमिहिर को फलित एवं खगोलीय ज्योतिष के पाण्डित्य का आदर्श माना जाने लगा था । कलचूरी रत्नदेव से प्राप्त पत्रों में किसी पद्मनाभ नामक विद्वान की तुलना वराहमिहिर से की गई है:—

यः सिद्धान्तद्वयं वेत्ति होरासागरपारगः संहिताशास्त्रतत्वज्ञो वराहमिहिरोपमः ॥

दुःस्वनदुर्विचिन्तितदुष्प्रेक्षितदुष्कृतानि कर्माणि । क्षिप्रं प्रयान्ति नाशं शशिनः श्रुत्वा भसंवादम् ॥

—वराहमिहिर

अशुभ स्वप्न, अशुभ विचार, अशुभ दृश्य और अशुभ कर्म केवल दैवज्ञ (ज्योतिषी) के मुख से चन्द्रका नक्षत्रसंवाद (नक्षत्रों में परिभ्रमण) सुनने से ही सब नष्ट हो जाते हैं । अर्थात ज्योतिषी द्वारा पंचाङ्ग (तिथि, वार, नक्षत्र, योग एवं करण) सुनने से सभी प्रकार के अशुभ फल नष्ट हो जाते हैं ।

# वराहमिहिर का साहित्य और उसका महत्त्व

हमारे महर्षियों ने पवित्र ज्योतिष शास्त्र को सिद्धान्त, संहिता एवं होरा नाम से तीन स्कन्धों में बांटा है:—

**सिद्धान्त संहिता होरा रूपम् स्कन्ध-त्रयात्मकम् । वेदस्य निर्मलम् चक्षुर्ज्योतिः शास्त्रमकल्मषम् ॥**

ज्योतिष के प्रथम स्कन्ध अर्थात सिद्धान्त के अन्तर्गत, सभी प्रकार के सिद्धान्त एवं गणित सम्बन्धी सभी विषय आ जाते हैं। द्वितीय स्कन्ध अर्थात संहिता के अन्तर्गत ग्रह एवं ग्रहण आदि के शुभाशुभ प्रभाव के अतिरिक्त प्राकृतिक विज्ञान आदि से सम्बन्धित सभी विषय आ जाते हैं। तृतीय स्कन्ध अर्थात होरा के अन्तर्गत जन्म कालीन ग्रहों की ग्रहस्थिति के अनुसार जीवन में होने वाले सुख-दुख का विचार तथा मुहूर्त्त प्रश्न एवं इस से सम्बन्धित सभी विषय आ जाते हैं। ज्योतिष के इन तीनों स्कन्धों पर अलग-अलग ग्रन्थ तो अनेक पूर्वाचार्यों ने लिखे हैं; किन्तु इन तीनों स्कन्धों पर अधिकार पूर्ण ग्रन्थ लिखने वाले व्यक्ति एक मात्र आचार्य वराहमिहिर ही हुए हैं और यही कारण है कि इन्हें 'त्रिस्कन्ध-ज्योतिषाचार्य' कहा जाता है। यही नहीं विश्वभर में आपकी टक्कर का आज तक कोई विद्वान नहीं हुआ है और इसी कारण इन्हें "भारत विभूति" कहकर सम्मानित किया जाता है। राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त ने आचार्य वराहमिहिर सरीखे भारतीय विद्वानों के अद्भुत ज्ञान एवं उनकी मौलिक उपलब्धियों के विषय में सत्य ही लिखा है—

आये नहीं थे स्वप्न में भी
जो किसी के ध्यान में,
वह प्रश्न पहले हल हुए थे
एक हिन्दुस्तान में।

वृत्तान्त पहले व्योम का
प्रकटित हमीं ने था किया,
वह क्रांति मंडल था हमीं से
अन्य लोगों ने लिया ॥

थे आर्यभट, आचार्य भास्कर-तुल्य
ज्योतिर्विद यहां,
अब भी हमारे "मान मन्दिर"
वर्णनीय नहीं कहां ?

-भारत-भारती

वराहमिहिर द्वारा रचित उपरोक्त तीनों स्कन्धों के ग्रन्थों की नामावली इस प्रकार है:—

सिद्धान्तः—पञ्चसिद्धान्तिका ।

संहिताः—बृहत्संहिता एवं समास-संहिता ।

होरा—होरा शास्त्र ( बृहज्जातक ), लघुजातक, बृहद्यात्रा, योगयात्रा एवं विवाहपटल ।

उपरोक्त ग्रन्थों के रचनाकाल की दृष्टि से 'पञ्चसिद्धान्तिका' इनका सबसे

प्रथम ग्रन्थ माना जाता है और 'बृहत्संहिता' सबसे अन्तिम कृति स्वीकार की जाती है। शेष ग्रन्थों का रचनाकाल उपरोक्त दोनों ग्रन्थों के मध्य में आता है जिनमें 'होरा-शास्त्र' इनकी तृतीय रचना है।

वराहमिहिर द्वारा रचित उपरोक्त आठ ग्रन्थों के अतिरिक्त निम्न ग्रन्थों का सम्बन्ध भी वराहमिहिर से जोड़ा जाता है–

१. वतर्कणिका, २. शृंगार तरंगणी, ३. पञ्चपक्षी, ४. दैवज्ञवल्लभा, ५. प्रश्न चूड़ामणि, ६. प्रश्न महोदधी, ७. प्रश्न चन्द्रिका, ८. अङ्क चूड़ामणि, ९. जातकार्णव संग्रह, १०. योगार्णव, ११. ज्योतिषार्णव १२. सूतिकाध्याय, १३. पुष्करणादि पद्धति, १४. तड़ाग - पद्धति, १५. जातकाभरण, १६. दशा-चिन्तामणि।

इन ग्रन्थों के अतिरिक्त "बृहत्संहिता" के कई एक अध्यायों को स्वतन्त्र ग्रन्थों में कई विद्वानों ने सम्पादित किया है। ऐसे अनेक ग्रन्थ हस्तलिखित भी हैं और कुछ एक प्रकाशित भी हो चुके हैं। इनके नाम इस प्रकार हैं—

१. म्यूर चित्रक, २. उदकार्गल शास्त्र एवं ३. प्रासाद लक्षण।

अल्बेरूनी ने वराहमिहिर द्वारा रचित दो ग्रन्थों के नाम और दिये हैं। उनमें से एक ग्रन्थ का नाम तो "होरापञ्चहोत्र" है तथा दूसरा ग्रन्थ वास्तु विद्या ( भवन निर्माण) से सम्बन्धित है लेकिन उसका नाम अल्बेरूनी तथा भट्टोत्पल दोनों ने ही नहीं लिखा है। इससे ज्ञात होता है कि वराहमिहिर ने वास्तु शास्त्र पर भी एक स्वतन्त्र ग्रन्थ लिखा था जो अल्बेरूनी के काल तक भारत में प्राप्य था। अल्बेरुनी द्वारा वर्णित ग्रन्थों के अतिरिक्त उपरोक्त सोलह ग्रन्थों के रचयिता स्वयं वराहमिहिर ही हैं या कोई अन्य व्यक्ति हैं यह कहना कठिन है। हो सकता है इन ग्रन्थों में कुछ एक ग्रन्थ वराहमिहिर द्वारा रचित ही हों जो किन्हीं कारणों से प्रकाश में न आ सके हों। यह भी हो सकता है कि वराहमिहिर का नाम लिख कर समय-समय पर अन्य लोगों ने इनकी रचना कर डाली हो। जो कुछ भी है यह विद्वानों के लिए खोज और अध्ययन से सम्बन्ध रखता है।

## पञ्चसिद्धान्तिका:

सिद्धान्त विषयक इस प्रसिद्ध ग्रन्थ में प्राचीन पांच सिद्धान्तों का वर्णन है जो वराहमिहिर के काल तक ही लगभग भारत में अप्राप्य हो गये थे:—

**पौलिशरोमकवासिष्ठसौर-**
**पैतामहास्तु पञ्चसिद्धान्ताः।**

अर्थात पौलिश, रोमक, वासिष्ठ, सूर्य एवं पैतामह यह पांच सिद्धान्त हैं। आधुनिक काल में प्राप्त सिद्धान्तों की उपरोक्त सिद्धान्तों से किसी भी प्रकार से समानता नहीं है। "पञ्चसिद्धान्तिका" के प्रथम अध्याय में वराहमिहिर ने कहा है:—

**पौलशति विस्फुटोसौ**
**तस्यासन्नस्तु रोमकः प्रोक्तः।**
**स्पष्टतरः सावित्रः परिशेषौ**
**दूरविभ्रष्टौ ॥**

अर्थात "पञ्चसिद्धान्तिका" काल में पौलिश सिद्धान्त बहुत स्पष्ट थां अर्थात उससे दृक्प्रतीति होती थी और रोमक उसके आस-पास था। सूर्यसिद्धान्त उन दोनों की अपेक्षा अधिक स्पष्ट था तथा पैतामह एवं वाशिष्ठ सिद्धान्तों में बहुत अन्तर पड़ चुका था। अर्थात उनके गणित द्वारा लाई हुई स्थिति का आकाशीय स्थिति से मेल नहीं खाता था। इससे स्पष्ट होता है कि "पञ्च-

सिद्धान्तिका" के रचना काल के समय पैतामह एवं वासिष्ठ सिद्धान्त सबसे प्राचीन सिद्धान्त थे। इन सिद्धान्तों में रोमक सिद्धान्त के मूल रचयिता कोई यवन (ग्रीक) विद्वान हैं क्योंकि यह सिद्धान्त भारतीय ऋषियों द्वारा प्रतिपादित नहीं है।

इस सिद्धान्त में आचार्य वराहमिहिर ने यवनपुर का भी उल्लेख किया है जो सम्भवतः उस काल के यवन देश का कोई प्रसिद्ध नगर रहा होगा। 'भारतीय ज्योतिष का इतिहास' के पृष्ठ १०७ पर डॉ० गोरख प्रसाद द्वारा यवनपुर (अलेक्जैंड्रिया) का वर्णन इस प्रकार है:—

"सन ३३२ ई० पू० में इस नगर की नींव अलेक्जैंडर महान (सिकन्दर) ने डाली थी और अब यह मिश्र देश (ईजिप्ट) का प्रमुख नौकाशय (बन्दरगाह) है। नींव पड़ने के सौ वर्ष के भीतर ही यह बहुत बड़ा शहर हो गया था। यह यूरोप तथा अरब और भारतवर्ष के बीच वाणिज्य का केन्द्र था। यहां पर यवनों का सबसे बड़ा विश्वविद्यालय था। परन्तु सन् ८० ई० पू० में यह रोमन लोगों के हाथ में चला गया। ऑगस्टस सीजर के काल में इसकी जनसंख्या ३ लाख थी। सन ६१६ में इस पर अरब वालों का अधिकार हो गया। अरब सेनापति 'अम्र' ने अपने नरेश को अलेक्जैंड्रिया जीतने पर लिखा था कि यहाँ "४,००० महल, ४,००० स्नानागार, १२,००० तेल बेचने वाले, १२,००० माली, ४०,००० यहूदी जो कर देते हैं और ४०० नाट्य शालाएँ हैं।"

सम्भवतः यह प्रसिद्ध ग्रीक ज्योतिषी हिपार्कस के ग्रन्थानुसार निर्मित किया गया हो जिनका काल १५० ई० पू० का है। हिपार्कस द्वारा वर्णित वर्षमान ३६५ दिन १४ घटी ४८ पल सरीखे वर्ष मान का ही रोमक सिद्धान्त में उल्लेख किया गया है। हिपार्कस का कोई ग्रन्थ भी इस विषय में उपलब्ध नहीं है। वराहमिहिर ने यवन ज्योतिष का भी गहरा अध्ययन किया था और उन्होंने यवन ज्योतिषियों का अपने अन्य पूर्वाचार्यों की भाँति ही आदर किया है—

**म्लेच्छा ही यवनास्तेषु सम्यक् शास्त्रमिदं स्थितम्।**

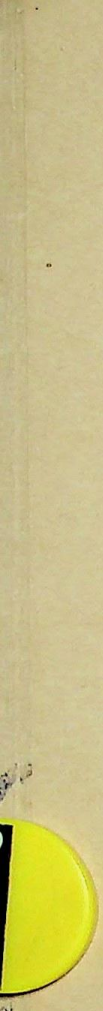
**ऋषिवत्तेऽपि पूज्यंते किं पुनर्दैवविद्द्विजः॥**

—बृहत्संहिता

"पञ्चसिद्धान्तिका" की हस्तलिखित प्रतियाँ अपने देश में बहुत ही कम हैं। काश्मीर के डाक्टर बुल्हर द्वारा लाई हुई "पञ्चसिद्धान्तिका" की दो हस्तलिखित प्रतियां डेक्कन कॉलेज के सरकारी पुस्तकालय में सुरक्षित हैं जिन्हें वह क्रमशः सन १८७४-७५ एवं १८७९-८० में लाये थे। संस्कृत कालेज बनारस के तत्कालीन प्रिंसिपल डॉ० जी० थीबो ने सन १८८९ ई० में उपरोक्त प्रतियों के आधार पर "पञ्चसिद्धान्तिका" को काशी निवासी महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी के सहयोग से प्रथम बार इंगलिश एवं संस्कृत में छपवाया था। चूंकि डेक्कन कालेज की हस्तलिखित दोनों प्रतियाँ अत्यन्त ही अशुद्ध थीं इसलिए उन्हें शुद्ध करने में काफी परिश्रम करना पड़ा। ग्रन्थ इस समय उपलब्ध है।

"पञ्चसिद्धान्तिका" में आर्यभट, लाटदेव (लाटाचार्य), प्रद्युम्न, विजयनन्दी, सिंहाचार्य और उनके गुरू (नाम नहीं लिखा है) का वर्णन आता है। यवनपुर नामक ग्रीक देश या नगर और लङ्का के नाम भी वराहमिहिर ने इस ग्रन्थ में लिखे हैं। इससे सिद्ध होता है कि आर्यभट एवं





लाटाचार्य आदि प्रसिद्ध भारतीय ज्योतिषी वराहमिहिर से पूर्व काल में विद्यमान थे।

## बृहत्संहिता

'बृहत्संहिता' को 'वराही संहिता' भी कहते हैं और वराहमिहिर का संहिता स्कंध पर यह विश्व प्रसिद्ध अधिकार पूर्ण विशाल ग्रन्थ है। वास्तव में भारत के गौरवमय साँस्कृतिक इतिहास से सम्बन्धित महत्वपूर्ण जानकारी प्रदान करने वाले विश्वकोष का नाम ही 'बृहत्संहिता' है ऐसा विद्वानों का मत है। इस ग्रन्थ में वर्णित विषय एक प्रकार से गागर में सागर ही हैं।

श्री ए० एस० आयंगर के मतानुसार 'बृहत्संहिता' के वराहमिहिर के वर्णनानुसार एक सौ अध्याय हैं जबकि उत्पल ने एक सौ छह अध्यायों की व्याख्या लिखी है। इस समय उपलब्ध सभी बृहत्संहिताओं में एक सौ छह अध्याय ही मिलते हैं। प्रारम्भ के दो अध्यायों में वराहमिहिराचार्य ने एक अच्छे ज्योतिषी की योग्यता एवं गुणों का वर्णन किया है और यह भी लिखा है कि जिस ज्योतिषी में यह गुण नहीं होंगे वह केवल "नक्षत्र सूचि" है और उसे विद्वानों की पंक्ति में बैठने का अधिकार नहीं है।

"बृहत्संहिता" के शेष अध्यायों में प्राकृतिक विज्ञान से सम्बन्धित ऐसा कोई भी विषय नहीं है जो वराहमिहिर की लेखनी से छूट गया हो। उन्होंने क्रमशः इन विषयों का अपने ग्रन्थरत्न में समावेश किया है:—

आदित्यादि नवग्रहचार, अगस्त्यचार, सप्तर्षिचार, कूर्म विभाग, नक्षत्र व्यूह, ग्रह-युद्ध, ग्रह फल, ग्रहण, उल्का, भूमिकम्पन, दिग्दाह वृष्टि, इन्द्रायुध आदि के लक्षण, सामुद्रिक, वास्तुविद्या, वृक्षायुर्वेद, पशु लक्षण, रत्नपरीक्षा, शकुन, वैवाहिक, जातक एवं गोचर आदि-आदि।

आचार्य वराहमिहिर के चार सौ वर्ष बाद होने वाले प्रसिद्ध विद्वान उत्पल भट्ट (भट्टोत्पल) ने "बृहत्संहिता" की सर्वप्रथम संस्कृत व्याख्या लिखकर इसे अमर कर दिया है। वास्तव में यदि उत्पल भट्ट जैसे धुरन्धर विद्वान वराहमिहिर के समस्त साहित्य (पञ्चसिद्धान्तिका को छोड़कर) पर अपनी विद्वतापूर्ण विस्तृत संस्कृत व्याख्या न लिखते तो शायद वराहमिहिर के साहित्य से हम लोग इतने लाभान्वित न हो पाते।

'बृहत्संहिता' पर उत्पल की संस्कृत टीका पर बाद में भास्कर नाम के किसी विद्वान ने, जो कुमार का पुत्र एवं राम का पौत्र था, एक संक्षिप्त व्याख्या भी लिखी थी जो अब तक अप्रकाशित ही है। ईसा की ग्यारहवीं शताब्दी में भारत भ्रमण करने वाले प्रसिद्ध अरबी यात्री अल्बेरूनी ने "बृहत्संहिता एवं "लघुजातक" का अरबी में अनुवाद किया था जो कि ऐतिहासिक दृष्टिकोण से बहुत महत्व रखता है। अल्बेरूनी ने वराहमिहिर की बहुत प्रशंसा की है तथा उन्हें एक महान ज्योतिषी, इंजीनियर एवं अनेक गुणों का भण्डार बताया है। मुगल काल में सोलहवीं शताब्दी (ईस्वी) में "तांजिक नीलकण्ठी" के प्रसिद्ध टीकाकार विश्वनाथ ने "बृहत्-संहिता" की संस्कृत में टीका की थी। सन १८६४ ई० में विदेशी विद्वान डा० एच० कर्न ने अंग्रेजी में (८४ अध्यायों की) कलकत्ता से तथा सन १८९५-९६ ई० में पं० सुधाकर द्विवेदी ने बनारस से संस्कृत में (उत्पल की टीका सहित) "बृहत्संहिता" को प्रकाशित किया था। "बृहत्संहिता" का श्री वी० सुब्रह्मण्यम कृत अंग्रेजी अनुवाद

सन १९४७ ई० में बैंगलोर से तथा बलदेव प्रसाद मिश्र कृत हिन्दी अनुवाद सन १८८८-८९ ई० में बम्बई से भी प्रकाशित हो चुका है। "बृहत्संहिता" की आधुनिक काल में और ज्यादा प्रसिद्धि तब हुई जब सन १९६२ ई० में श्री अजय मित्र शास्त्री (नागपुर विश्वविद्यालय के प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरात्तत्व विभाग के रीडर) ने "बृहत्संहिता" पर शोध करके पी० एच० डी० की डिग्री प्राप्त की। उन्होंने "बृहत्संहिता" के द्वारा वराहमिहिर कालीन भारत का विस्तृत विवरण प्रस्तुत करके इस महान ग्रन्थ के ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक महत्व को प्रकाश में लाया है।

वराहमिहिर की "बृहत्संहिता" के अध्ययन से यह भी मालूम होता है कि वराहमिहिर का ज्ञान केवल एक खगोलवेत्ता एवं फलित ज्योतिषी तक ही सीमित न था बल्कि वह संस्कृत काव्य के भी प्रकाण्ड विद्वान थे। ग्रन्थ में वर्णित लगभग ६३ प्रकार के भिन्न-भिन्न छन्दों [आर्या (पथ्या, विपुला, चपला, मुखचपला, जघनचपला, गीति, उपगीति, उद्गीति, आर्यागीति), शार्दूलविक्रीडित, स्रग्धरा, सुवदना, सुवृत्ता या मेघविस्फूर्जिता, शिखरिणी, मन्दाक्रांता, वृषभचरित या हरिणी, उपेन्द्रवज्रा, प्रसभ, मालतीअपरवक्त्र, विलम्बितगति या पृथ्वी, पुष्पिताग्रा, इंद्रवंशा, स्वागता, द्रुतपद, रूचिरा, प्रहर्षिणी, दोधक, मालिनी, भ्रमरविलसित, मत्तमयूर, मणि-गुणनिकर, हरिणप्लुता, ललितपदा, शालिनी, रथोद्धता, विलासिनी, वसन्ततिलक, अनवसित, लक्ष्मीवती, प्रमिताक्षरा, स्थिर या प्रमाणिका, त्रोटक, वंशपत्रपतित, धीरललित, भुजङ्गप्रयात, श्रीपुट, वैश्वदेवी, उर्मिमाला, मेघवितान, भुजङ्ग विजृम्भित, उद्नता, नर्क्कुटक, विलास, वक्त्र, वैतालीय, औपच्छन्दसिक, चण्डवृष्टिप्रयात, वर्णदंडका और समुद्रदण्डक) से मालूम होता है कि संस्कृत कविता—लेखन में वराहमिहिर का स्थान महान कवि कालिदास से कम नहीं है। अतः यदि हम 'बृहत्संहिता' को संस्कृत का महाकाव्य कहें तो गलत नहीं होगा। वराहमिहिर उस समय की प्रचलित भारतीय भाषाओं एवं विदेशी भाषा (यवन भाषा) के भी महान पण्डित थे ऐसा हमें "बृहत्संहिता" के अध्ययन से मालूम होता है। बड़ी मजे की बात है कि क्षेमेन्द्र द्वारा विरचित 'औचित्य-विचार-चर्चा" ग्रन्थ में वराहमिहिर का परिचय एक कवि के रूप में ही दिया गया है।

## होराशास्त्र

"होराशास्त्र" का नाम "बृहज्जातक" ही अधिक प्रसिद्ध है और यह ज्योतिष के तृतीय स्कंध अर्थात होरा पर वराहमिहिर की विख्यात कृति है। 'होरा' के अन्तर्गत जातक, प्रश्न, मुहूर्त्त एवं निमित्त को ही होरा स्कन्ध का ग्रन्थ माना जाता है। वास्तव में "बृहज्जातक" तो जातक विषय पर ही अधिकार पूर्ण ग्रन्थ है लेकिन चूंकि इसमें विद्वान लेखक ने जातक के अतिरिक्त 'होरा' के अन्य तीन भागों के सम्बंध में भी सार रूप में बहुत कुछ लिखा है इसलिए इसे सम्पूर्ण होरा स्कंध का ग्रन्थ ही माना जाता है।

वराहमिहिर ने "होराशास्त्र" सरीखे महान विषय को अपनी अलौकिक प्रतिभा के द्वारा एक छोटे से किन्तु अधिकार पूर्ण ग्रन्थ" "बृहज्जातक" में इस प्रकार से संकलित कर दिया है जैसे दूध में से चिकनाई निकाल ली जाती है। उन्होंने स्वयं भी कहा है कि मैंने "होराशास्त्र" रूपी गहन समुद्र को पार करने के लिए एक ऐसे ग्रन्थ की नाव तैयार की है जिसमें विचित्र छन्दों से युक्त श्लोक तो बहुत थोड़े

हैं किन्तु उनका अर्थ बहुत बड़ा है:—

**होराशास्त्रमहार्णवप्रतरणे भग्नोद्यमानामहं ।**
**स्वल्पं वृत्तिविचित्रमर्थबहुलं शास्त्रपल्वं प्रारभे ।।**

—बृहज्जातक १-२

"बृहज्जातक" के अन्तिम अध्याय ("उपसंहार अध्याय") को छोड़कर इसमें कुल २७ अध्याय ही हैं। जिस प्रकार से अभिजित नक्षत्र को मिलाकर चान्द्र नक्षत्रों की संख्या २८ हो जाती है और वैसे चान्द्र नक्षत्र जो व्यवहार में लिये गये हैं वह २७ ही हैं, ठीक इसी प्रकार से "बृहज्जाक" के अध्यायों की संख्या भी इन्हीं नक्षत्रों के समान ही आचार्य वराहमिहिर ने रखी है। एक विद्वान ने लिखा है कि यह बड़ी विचित्र बात है कि वराहमिहिर ने उपरोक्त ग्रन्थ में ३८४ श्लोकों की ही रचना क्यों की है। वराहमिहिर ने "होराशास्त्र" के प्रथम अध्याय में बारह राशियों के गुण-शील का वर्णन केवल २० श्लोकों में किया है जबकि तीसरे अध्याय में ग्रहों के विषय में वर्णन १९ श्लोकों में किया है। जातक विभाग में राशि एवं ग्रहों का आपसी मेल ही समस्त फलादेश का कारण है यह बात सर्व विदित है। अतः इन दोनों अध्यायों के श्लोको की संख्या को आपस में गुणा करने पर (२० × १९) ३८० श्लोक होते हैं। वराहमिहिर ने उपसंहार अध्याय के तीसरे श्लोक में लिखा है कि मैंने होरा शास्त्र में २५ अध्याय लिखे हैं और अब मैं यात्रा सम्बन्धी शेष अध्यायों के नाम लिखता हूं—

**अध्यायानां विंशतिः पञ्चयुक्ता**
**जन्मन्येतद्यात्रिकं चाभिधास्ये ।।**

'बृहज्जातक' के इन २५ अध्यायों के श्लोकों की संख्या भी ३८० ही है क्योंकि इन अध्यायों में जातक सम्बन्धी सभी कुछ आ गया है। २६ वें अध्याय में केवल तीन श्लोक ही है जिन्हें ३८० में जोड़ने से ३८३ संख्या हो जाती है। ध्यान रहे वराहमिहिर ने 'बृहज्जातक' के प्रथम अध्याय के दूसरे श्लोक में "बहुल" शब्द का प्रयोग किया है जिसका अंक मान ३-८-३ होता है। 'बृहज्जाक' के सूर्य से वर प्राप्ती वाले श्लोक को जोड़ने पर जो ग्रन्थ के अन्त में दिया गया है, श्लोकों की संख्या ३८४ हो जाती है जो कि 'बृहज्जातक' के सातवें अध्याय के दशवे श्लोक के "भदन्त" शब्द के अङ्क मान के अनुसार (भ=१२, दन्त=३२, भदन्त=१०×३२=३८४) ठीक बैठती है। ग्रन्थ में वर्णित अन्तिम श्लोक जो कि ग्रन्थ से कोई विशेष सम्बन्ध नही रखता है यदि उपरोक्त संख्या में जोड़ दिया जाय तो कुल संख्या ३८५ हो जाएगी। ३८५ का सम्बन्ध ग्रन्थ का प्रथम श्लोक जिस छन्द में हैं उस छन्द (शार्दूल) के नाम के अंक मान के समान ही है अर्थात शार्दूल = ३-८-५। अतः "बृहज्जातक" के श्लोकों की संख्या का भी विशेष महत्व है जिसे महान विद्वान वराहमिहिर ने गुप्त रूप से प्रदर्शित किया है।

सड़क पर दूरी ज्ञात करने के संकेत प्रत्येक दस मीटर के अन्तर पर लगे रहने से लम्बी यात्रा करने वाले यात्रियों को कोई सुविधा प्राप्त नहीं हो सकती हैं। यदि यही निशान एक-एक कि.मी. की दूरी पर लगे हों तो यात्रियों को अवश्य ही लाभ होगा। इसी प्रकार शास्त्रों में वर्णित श्लोक भी सड़क पर लगे पत्थर की तरह काम देते है और विस्तृत होरा शास्त्र को पार करने के लिये वराहमिहिर ने ३८४ श्लोक सड़क पर लगे पत्थर के निशान की तरह ही दिये हैं।

"बृहज्जातक" होराशास्त्र का तो अनुपम ग्रन्थ है ही किन्तु इसके साथ साथ

आचार्य वराहमिहिर की अद्भुत काव्य रचना का भी इसमें समावेश हो जाने से संस्कृत काव्य में भी इसको बहुत महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। आचार्य वराहमिहिर ने इतने छोटे से ग्रन्थ की रचना में लगभग ३४ प्रकार के भिन्न-भिन्न छन्दों का बड़े पाण्डित्य के साथ प्रयोग किया है जो निम्न हैं—

शार्दूलविक्रीडित्, इन्द्रवज्रा, वसंत तिलक, त्रोटक, पुष्पिताग्रा, आर्या, मन्दाक्रान्ता, शालिनी, उपजाति, स्वागता, वंशस्थ, प्रहर्षिणी, मालिनी, वैतालीय, वैश्वदेवी, उपेन्द्रवज्रा, कुटक-वृत्तम्, दोधक-वृत्तम्,हरिणीवृत,अनुष्टुप,विद्युन्माला, पृथ्वी छन्द, अपरवक्त्र, भ्रमरविलसित, शिखरिणी, उपछन्द, द्रुतविलंबित, औपच्छन्दसिक, स्रग्धरा, विलसित, चित्रता, रथोद्धता, एवं हरिणी।

"बृहज्जातक" जितना छोटा ग्रन्थ है उतना ही इसका अर्थ गूढ़ है। यही कारण है कि अनेक विद्वानों ने अपनी-अपनी बुद्धि अनुसार इसकी व्याख्या करके इसके गूढ़ रहस्य को समझाने की चेष्टा की है। इतनी अधिक व्याख्याएँ होने के बाद भी "बृहज्जातक" के गूढ़ रहस्य तक अभी तक पहुंचा नहीं जा सका है।

यही कारण है कि 'प्रश्न मार्ग' के रचयिता ने स्पष्ट ही लिख दिया है कि भट्टोत्पल आदि विद्वानों द्वारा की गई "बृहज्जातक" की व्याख्या के अवलोकन के बिना इस ग्रन्थ के रहस्य को समझना कठिन है—

**भट्टोत्पलादिरचिता विवृत्तीर्विलोक्य स्पष्टं करोतु हृदि दैवविदर्थमस्याः ।।**

—प्रश्नमार्ग १–२८

"बृहज्जातक' की सर्वप्रथम व्याख्या 'होरारत्न' के रचियता बलभद्र ने की है और उसके कुछ समय बाद ही (वराहमिहिर के लगभग ४०० वर्ष बाद) उत्पल भट्ट (भट्टोत्पल) ने 'बृहज्जातक' की व्याख्या की है। भट्टोत्पल की व्याख्या बहुत विद्वतापूर्ण, विस्तृत एवं ऐतिहासिक दृष्टि से भी बहुत महत्वपूर्ण है। सत्य तो यह है कि वराहमिहिर के साहित्य को यदि अमरत्व प्राप्त हुआ है तो वह केवल भट्टोत्पल की ही व्याख्याओं के कारण हो सका है। "बृहज्जातक" में लगभग ४०० श्लोक हैं और उत्पल ने कुल मिलाकर ८५०० श्लोकों में इनकी व्याख्या की है। इस प्रकार से "बृहज्जातक" के एक-एक श्लोक की व्याख्या में उत्पल ने लगभग इक्कीस-इक्कीस श्लोक लिखें हैं। इतनी विस्तृत व्याख्या करने वाले विद्वान उत्पल सरीखा व्याख्याकार संसार के इतिहास में कोई विरला ही होगा। उत्पल कृत इस व्याख्या का नाम "विवृति व्याख्या" है।

इसके अतिरिक्त 'बृहज्जातक' की 'जगचन्द्रिका' (चिन्तामणी), "जातक विवरण," 'नीलोत्पल्य,' "प्रकाश," "दशाध्यायी", "नौका" (होरा-विवरण या वराह मिहिर होरा तात्पर्य -सागर), "मुद्राक्षरी", 'सुबोधिनी', एवं 'श्रीपत्तीयम' आदि व्याख्याएं भिन्न-भिन्न विद्वानों द्वारा की जा चुकी हैं। मुगल सम्राट जहांगीर के समकालीन ज्योतिषी विश्वनाथ ने भी "बृहज्जातक" की व्याख्या की है। उत्पल की व्याख्या को छोड़कर शेष सभी व्याख्याएं या तो अप्राप्य है और या अप्रकाशित हैं।

आधुनिक काल में सन् १८८४-८५ ई० में महीधर कृत "बृहज्जातक" की हिन्दी व्याख्या बम्बई से प्रकाशित हो चुकी है। प्रो० बी० सूर्य नारायण राव (संस्थापक एस्ट्रालोजिकल मैगजीन) ने "बृहज्जातक"

की सन् १९१९ ई० में अंग्रेजी में व्याख्या करके उसे बैंगलौर से सन् १९२९ ई० में प्रकाशित किया है। श्री वी० सुब्रह्मण्यम शास्त्री ने भी 'बृहज्जातक' का अंग्रेजी में अनुवाद करके प्रकाशित किया है। केरल निवासी श्री ए० एन० एस० आयंगर ने 'वराहमिहिर होराशास्त्रम्' नाम से "बृहज्जातक" के प्रथम दश अध्यायों की संस्कृत में विस्तृत व्याख्या सन् १९५१ ई० में मद्रास से प्रकाशित की है।

## लघुजातक

यह ग्रन्थ "बृहज्जातक" का संक्षिप्त स्वरूप ही है क्योंकि स्वयं वराहमिहिर ने लिखा है:—

**होराशास्त्रं बृत्तैर्मया निबद्धं निरीक्ष्य शास्त्राणि। यत्तस्वार्ष्याभिः सारमहं सम्प्रवक्ष्यामि॥**

—लघुजातक

इस ग्रन्थ में १६ अध्याय हैं। भट्टोत्पल ने इसकी संस्कृत में व्याख्या की है और अल्बेरूनी ने इसका अरबी में अनुवाद किया है। इस समय यह ग्रन्थ काशी से प्रकाशित है एवं पं० सीताराम झा ने इस पर व्याख्या की है।

उपरोक्त ग्रन्थों के अतिक्ति वराहमिहिर द्वारा रचित अन्य ग्रन्थ अप्राप्य हैं। इन ग्रन्थों के नामों का संकेत केवल भट्टोत्पल एवं अल्बेरूनी द्वारा अनुवादित ग्रन्थों में ही मिलता है। "पंचसिद्धान्तिका" को छोड़ कर उत्पल ने वराहमिहिर के समस्त साहित्य पर अपनी व्याख्याएँ लिखी हैं ऐसा उत्पल के वर्णनों से सिद्ध होता है।

वराहमिहिर के पुत्र पृथुयश भी एक विद्वान ज्योतिषी थे। उन्होंने "होरासार" एवं "षटपञ्चाशिका" (प्रश्न ग्रन्थ) की रचना की है। दोनों ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। "षटपञ्चाशिका" की संस्कृत व्याख्या भट्टोत्पल ने की है। "समर-महोदधी" नामक ग्रन्थ को भी पृथुयश की रचना माना जाता है जो अभी तक अप्रकाशित ही है।

卐

**न तत्सहस्रं करिणां जिनां वा चतुर्गुणम्।**
**करोति देशकालज्ञो यदेको दैवचिन्तकः॥**

—वराहमिहिर

देश एवं काल को भली भाँति जानने वाला एक दैवचिन्तक (ज्योतिषी) जो काम करने में सामर्थ्य रखता है, उस कार्य को एक हजार हाथी या चार हजार घोड़े नहीं कर सकते हैं। अर्थात ज्योतिषी के पास वह शक्ति है जो हजारों हाथियों या घोड़ों की शक्तियों से भी प्राप्त नहीं हो सकती। अतः ज्योतिषी एक बहुत बड़ी बौद्धिक शक्ति का स्वामी होता है।

# संस्कृत काव्य एवं ज्योतिष शास्त्र को
# वराहमिहिर की देन

●

वराहमिहिर का नाम न केवल भारत के बल्कि संसार के सभी खगोलवेत्ताओं एवं फलित ज्योतिषियों में सर्वोपरि है। उन्होंने ऐसे समय में ग्रन्थ लिखे जब खगोल विज्ञान एवं फलित ज्योतिष में महत्वपूर्ण उन्नति हो चुकी थी बल्कि व्यवहार में यह दोनों विषय ही एकरूप होते जा रहे थे। अद्भुत अन्तर्ज्ञान एवं अपार बौद्धिक शक्ति के द्वारा वराहमिहिर ने सहज में ही अपने पूर्वजों की पंक्ति से आगे बढ़ कर श्रेष्ठता प्राप्त कर ली थी। वराहमिहिर इस तथ्य से भली-भाँति सचेत थे तभी तो उन्होंने अपने आप को पुर्वाचार्यों से श्रेष्ठता का न सही परन्तु उनकी समानता का दावा करने में कोई हिचकिचाहट नहीं की है—

**क्षितितनयदिवसवारो न**
**शुभकृदिति पितामहप्रोक्ते।**
**कुजदिनमनिष्टमिति वा**
**कोऽत्र विशेषो नृदिव्यकृतेः॥**

बृहत्संहिता १-४

वराहमिहिर समस्त भारतीय ज्योतिषियों में मूर्धन्य हैं यह तो एक साधारण पाठक भी उनके साहित्य का अवलोकन करने के बाद कहने में संकोच नहीं करेगा क्योंकि संस्कृत कविता लेखन में व्याकरण की अशुद्धता पर ध्यान न देते हुए जो कि लगभग सभी ज्योतिष के ग्रन्थ रचयिताओं में विद्यमान है, उनकी निपुणता न केवल ऊंचे स्तर की ही है बल्कि उसमें सच्चे कवित्व के उत्साह का अद्भुत मिश्रण भी है। उन्होंने कविता-लेखन के भिन्न-भिन्न रूपों को बड़ी चतुरता एवं कुशलता के साथ प्रयोग में लाया है। "बृहत्संहिता" के एक पूरे अध्याय (अध्याय १०४) में कविता लेखन सम्बन्धी प्रवीणता का अद्भुत परिचय दिया गया है जिसमें प्रत्येक श्लोक में भिन्न-भिन्न छन्दों का बड़ी कुशलता से प्रयोग किया गया है। ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि शास्त्रीय विषयों के लेखकों की चली आ रही प्राचीन परम्परा को वराहमिहिर द्वारा सरलतम एवं सामान्य प्रकार के छन्दों (अनुष्टुप) में ही श्लोकों की रचना करना केवल उनके द्वारा उनके कविता-लेखन की निपुणता का प्रदर्शन मात्र ही है। लेकिन एक कवि की निपुणता का मापदण्ड केवल उसके द्वारा प्रयोग की गई भिन्न-भिन्न प्रकार के श्लोकों की रचना में कुशलता ही नहीं है। यहाँ तक कि वाल्मीकि एवं व्यास तथा प्राचीन साहित्य के कवि कालिदास की महानता का मापदण्ड भी कविता-लेखन की कुशलता ही नहीं है।

इस प्रकार से हम देखते हैं कि ऐसा करने में वराहमिहिर का उद्देश्य कुछ और ही था जिसका वर्णन आगे किया जाएगा।

कवित्व एवं विज्ञान का सम्मिश्रण किसी विरले ही लेखक में मिलेगा और इन दोनों में निपुणता होना तो बहुत ही दुर्लभ है। वराहमिहिर में यह दोनों ही गुण असाधारण रूप से विद्यमान थे जिसके फलस्वरूप उन्हें प्रसिद्ध विक्रमादित्य की सभा के नवरत्नों में गिना जाना परम-परागत चला आ रहा है।

महान कवियों की श्रेणी में गिना जाना एक दुर्लभ विशेषाधिकार है जो किसी ज्योतिषी को स्वप्न में भी प्राप्त नहीं हो सकता और सच्चाई तो यह है कि वराह-मिहिर को इस दुर्लभ विशेषाधिकार का प्राप्त होना यह सिद्ध करता है कि उनकी कवित्व सम्बन्धी योग्यता किसी भी प्रकार प्राचीन काल के महान कवियों से कम नहीं थी। वास्तव में "बृहत्संहिता" एक महा-काव्य है जबकि अपने विषय का तो यह सबसे महान एवं अधिकार पूर्ण ग्रन्थ है ही।

बेशक विद्वान लोगों को वराहमिहिर की अभूतपूर्व योग्यता का सबसे ऊंचा होने में एवं अपने पूर्वाचार्यों के विरुद्ध अपने विचारों को प्रस्तुत करने में निर्भीक होने में ऐतराज नहीं है; किन्तु वह उन्हें अभ्रान्त नहीं मानते हैं। यह सत्य है कि वराहमिहिर पूर्वाचार्यों के बताए हुए नियमों के आगे झुके नहीं हैं। उन्होंने यह कहने में तनिक हिच-किचाहट अनुभव नहीं की है कि वह लोग बुद्धिमान नहीं हैं जो बृद्धगर्ग के वर्णानुसार ग्रहणों के घटित होने के सिद्धान्त को मान कर इस सम्बन्ध में कुछ कहते हैं—

**पञ्चग्रहसंयोगान्न किल**
**ग्रहणस्य सम्भवो भवति।**
**तैलं च जलेऽष्टम्यां न**
**विचिन्त्यमिदं विपश्चिद्भिः॥**

बृहत्संहिता ५०-१७

लेकिन जब वराहमिहिर पृथ्वी के अपने अक्ष पर घूमने के सिद्धांत का प्रति-पादन करने वाले खगोलवेत्ताओं के विरुद्ध आक्षेप करते हैं कि बाज आदि शिकारी पक्षी तथा अन्य पक्षी अपने-अपने घोंसलों में वापिस किस तरह आ सकते हैं जबकि पृथ्वी लट्टू की तरह अपने अक्ष पर तेजी से घूमती है तब अपने अन्तर्ज्ञान के बारे में यथार्थता से दूर होने की शंका पैदा हो जाती है—

**भ्रमति भ्रमस्थितेव क्षितिरित्यपरे**
**वदन्ति नोडुगणः।**
**यद्येवं श्येनाद्या न**
**खात्स्वनिलयमुपेयुः॥**

—पञ्चसिद्धान्तिका १३-६

यह कभी भी नहीं भूलना चाहिए कि वराहमिहिर न केवल स्वयं स्वतन्त्र विचारक ही थे बल्कि वह दूसरों के मन में भी ऐसे विचारों को जागृत करने वाले व्यक्ति थे। मेरे विचार से यही कारण है कि वह यदा-कदा ऐसे आक्षेपों को खड़ा कर देते हैं जिसका समाधान विषय विशेष के गहरे अध्ययन एवं विचार के बाद ही किया जाना सम्भव हो सकता हैं। उदाहरण के तौर पर उन्होंने ग्रहण होने के वास्तविक कारण का वर्णन करते समय इस सम्बन्ध में प्रचलित पौराणिक विचारों को तिरस्कृत किया है—

**भूच्छायां स्वग्रहणे**
**भास्करमर्कग्रहे प्रविशतीन्दुः।**
**प्रग्रहणमतः पश्चान्नेन्दोर्भानोश्च**
**पूर्वार्धात्॥**

—बृहत्संहिता—५-८

क्या यह सम्भव है कि वराहमिहिर सरीखे हिन्दू धर्म के परम भक्त, जिन्होंने सूर्य भगवान से वरदान प्राप्त किया हो

(सवितृलब्धवरप्रसादः) वह व्यक्ति भी पुराणों में वर्णित ग्रहणों के कारण को तिरस्कृत कर सकता है। क्या पौराणिक मत वास्तव में खगोल विज्ञान के विरोधी हैं ? नहीं ? ऐसा कदापि नहीं है। पौराणिक विचारानुसार एक योगी के शरीर के अन्दर स्थित ग्रह तथा मूलाधार चक्र में स्थित राहु के रूप में कुण्डलिनी विद्यमान है—

**इडायाः कुण्डलीस्थानं**
**यदा प्राणः समागतः।**
**सोमग्रहणमित्युक्तं**
**तदा तत्वविदां वर॥**
**यदा पिङ्गलया प्राणः**
**कुण्डलीस्थानमागतः।**
**तदा तदा भवेत्**
**सूर्यग्रहणं मुनिपुङ्गव॥**

—जाबालदर्शनोपनिषत् ४,४६-४७

लेकिन खगोल विज्ञान का सम्बन्ध तो केवल बाह्य संसार में स्थित ग्रहों आदि से है जो कि एक योगी के आध्यात्मिक शरीर के अन्दर स्थित संसार के अनुरूप ही है। वास्तव में वराहमिहिर ने अपने इस ज्ञान को "होराशास्त्र" (बृहज्जातक) में प्रयोग किया है। वह चाहते हैं कि उनके पाठक ऐसी समस्याओं पर स्वयं विचार करें और उनका सही हल निकालें।

यह बात मस्तिष्क में रखनी चाहिए कि वराहमिहिर ने इस विज्ञान के ज्ञाता अनेकों लेखकों के नामों का उल्लेख करने के बाद भी केवल उन्हीं पूर्वाचार्यों के विचारों का विरोध किया है जो एक लम्बे अध्ययन एवं अनुभव तथा अन्तर्दृष्टि के कारण किसी परिपक्व नीचोड़ पर पहुंच सके हैं। अतः उनका उद्देश्य यह नहीं है कि वह सभी बातों का खण्डन या विरोध करके अपने आपको पाठकों की दृष्टि में ऊंचा उठावें। ज्योतिष केवल एक विज्ञान ही नहीं है बल्कि एक वेदाङ्ग भी है। (**ज्योतिः कल्पो निरूक्तं च शिक्षा व्याकरणं तथा। छन्दोविचितिरेतानि षडङ्गानि विदुः श्रुतेः**) अतः इसमें कई स्थानों पर वर्णित विचार केवल दार्शनिक और धार्मिक भी हैं जैसा कि "सूर्य सिद्धान्त" में प्रतिपादित दर्शन से पता चलता है—

**वासुदेवः परं ब्रह्म**
**तन्मूर्तिः पुरूषः परः।**
**अव्यक्तो निर्गुणः शान्तः**
**पञ्चविंशात्परोऽव्ययः॥**
**प्रकृत्यन्तर्गतो देवी**
**बहिरन्तश्च सर्वगः।**
**सङ्कर्षणोऽयं सृष्टवादौ**
**तासु वीर्यमासृजत्॥**
**तदण्डमभवद्धैमं**
**सर्वत्र तमसावृतम्॥**
**तत्रानिरूद्धः प्रथमं**
**व्यक्तीभूतः सनातनः॥**
**हिरण्यगर्भो भगवानेष**
**च्छन्दसि पठ्यते।**
**आदित्यो ह्यादिभूतत्वात्**
**प्रसूत्या सूर्य उच्यते॥**

—सूर्य सिद्धान्त, गोलाध्याय १२ से १५

इसी प्रकार से ग्रहणों के सम्बन्ध में आधे दार्शनिक एवं आधे ज्योतिष से सम्बन्धित विचार हमें देखने को मिलते हैं। सप्तर्षिचार अर्थात सप्तर्षियों की गति के विषय में वराहमिहिर द्वारा वर्णित विवरण जिससे आधुनिक खगोलवेत्ताओं के मन में घबड़ाहट पैदा हो जाती है, केवल ज्योतिषीय ढंग से प्रस्तुत न करते हुए ऐसी दार्शनिक रीति में बताया गया है जो दिखावे में असत्य प्रतीत होता है।

अतः हमें एक क्षण के लिए भी ऐसा नहीं सोचना चाहिए कि पुराणों में वर्णित

कोई भी विचार गलत होने के कारण त्याज्य है। इसके अतिरिक्त हमारे आदरणीय ऋषियों द्वारा प्रतिपादित विचार सदैव सत्य ही सिद्ध होंगे चाहे उन्हें हम दार्शनिकता अथवा ज्योतिषीय आधारों से अवलोकन करें। इससे स्पष्ट होता है कि वराहमिहिर की प्रेरणा यही रही है कि उसके पाठकों के मन में स्वतन्त्र विचार शक्ति को जागृत किया जाए जिससे समय-समय पर वह स्वयं ही किसी विशेष विचारधारा को ग्रहण कर सकने के योग्य हों।

वराहमिहिर ने 'बृहज्जातक' में पूर्वाचार्यों द्वारा वर्णित वज्र एवं यव आदि योगों का उल्लेख किया है। इसी सम्बन्ध में वराहमिहिर ने आक्षेप किया है कि बुध एवं शुक्र ग्रह सूर्य से चतुर्थ स्थान में कैसे हो सकते हैं जबकि वास्तव में ही ऐसा होना असम्भव है। यह सत्य है कि बुध एवं शुक्र ग्रह सूर्य से चौथी राशि में नहीं आ सकते हैं किन्तु क्या वह सूर्य से चतुर्थ भाव में नहीं हो सकते हैं। केवल वह स्थान जहां पर रेखांश उच्च होता है ऐसा होना सम्भव है। वराहमिहिर इस तथ्य से कदापि अनभिज्ञ नहीं थे क्योंकि राशि एवं भाव के मध्य में भेद कोई नवीन अविष्कार नहीं है। लेकिन वराहमिहिर के मतानुसार राशि एवं भाव का भेद भारतवर्ष में लागू नहीं होता। फिर भी हम यह निश्चय पूर्वक कह सकते है कि बुध और शुक्र ग्रह की कक्षा पृथ्वी के अधिक निकट नहीं आयेगी और बुध एवं शुक्र का सूर्य से चौथे भाव में होना सम्भव हो जाता है। यह सब ऐसी सम्भवता के लिये संकेत मात्र ही है जबकि 'कथम्' शब्द ७१ का सूचक है क्योंकि 'कथम्' शब्द से तात्पर्य मनवन्तर से है जबकि एक मनवन्तर में ७१ युग होते है जो अद्भुत परिवर्तन लाने की क्षमता रखते हैं।

इसी प्रकार से वराहमिहिर ने पृथ्वी के द्वारा अपने अक्ष पर चक्कर लगाने के बारे में उठाये गये आक्षेप की व्याख्या की जरूरत है। योगी के आध्यात्मिक शरीर के अन्दर स्थित सूक्ष्म एवं कोमल नक्षत्र तथा ग्रह मूलाधार पर स्थिर हैं, जिसके चारों ओर सूक्ष्म एवं कोमल नक्षत्र तथा ग्रह भ्रमण करते हैं। वराहमिहिर अपने पाठकों के दिमाग यह बात बिठाना चाहते थे कि हिन्दू धर्म के इस सारभूत सत्य को इस भौतिक एवं मायावी पृथ्वी से सम्बंधित ज्ञान के लिए प्रयोग नहीं करना चाहिए।

फिर भी वराहमिहिर यह चाहते हैं कि पाठक स्वयं सोचकर इसका उत्तर खोजने का प्रयास करें जैसा कि आधुनिक खगोल विज्ञान ने इस विषय में कहा है कि पक्षी इत्यादि किस प्रकार से अपने-अपने घोंसलों में वापिस आ जाते हैं जबकि पृथ्वी बड़े वेग से अहने अक्ष पर चक्कर लगा रही है। यह बात हमें मस्तिष्क में जरूर बिठा लेनी होगी कि वराहमिहिर ने जो कुछ भी लिखा है वह ऊंचे स्तर के बुद्धि जीवी वर्ग के लिए ही लिखा है। उन्होंने कहा भी है—

**"पटुधियां होराफलज्ञप्ते"**

# वराहमिहिर कालीन भारत

जिस प्रकार से बौद्धों के जातक ग्रन्थों, पाणीनि की 'अष्टाध्यायी', कालिदास के 'मेघदूत', जैनियों की 'वृहत्कथा मंजरी' और सोमदेव के 'यशतिलक चम्पू' के अध्ययन से तत्कालीन भारत की भौगोलिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनैतिक, साहित्यिक, आर्थिक एवं धार्मिक दशाओं का पता चलता है ठीक उसी प्रकार से वराहमिहिर की "वृहत्संहिता" के अध्ययन से हमें प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व के भारत (विक्रमादित्य कालीन भारत) के दर्शन होते हैं।

## महान भारत और उसके नवखण्ड

**नक्षत्रत्रयवर्गैराग्नेयाद्यैर्व्यवस्थितैर्नवधा।**
**भारतवर्षे मध्यप्रागादिविभाजिता देशाः।**

—बृहत्संहिता, अ० १४-१

तीन-तीन नक्षत्रों का एक वर्ग होता है। इस प्रकार से नौ वर्ग हैं। इन सब वर्गों का आरम्भ कृत्तिका नक्षत्र से होता है। भारतवर्ष के बीच में प्रदक्षिणा के क्रमानुसार सब देश इसके द्वारा विभाजित हैं। वराहमिहिर ने जिस भारत का वर्णन किया है उसके सुवर्णभू (ब्रह्मा, मलेशिया आदि सतस्त सुदूर पूर्वी प्रदेश) तथा सिंहल (सीलोन) और अफगानिस्तान आदि सभी देश सम्मिलित थे।

वराहमिहिर ने भारतवर्ष के इन खण्डों को कूर्म विभाग की संज्ञा दी है। कूर्म (कच्छुए) के ऊपर का भाग पृथ्वी के गोलार्द्ध की आकृति का होने के कारण ही वराहमिहिर ने भारतयर्ष को कूर्म लिखा है जिसका मुँह पूर्व दिशा में है।

कूर्म विभाग के अनुसार भारतवर्ष को नव खण्डों में बाँटा गया है जिसमें मध्य वाले भाग का नाम मध्यदेश रखा गया है। शेष आठ भाग आठ दिशाओं (पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर तथा आग्नेय, नैऋत्य, वायव्य, ईशान) में बाँट दिये गये हैं।

## विभिन्न भागों के नाम :

आर्यवर्त (अखण्ड भारत का समस्त उत्तरी भाग), मध्य देश (आधुनिक मध्य भारत एवं उत्तरी भारत का कुछ भाग), अन्तर्वेदी (गंगा-यमुना का मध्यवर्ती प्रदेश), दक्षिणापथ (नर्मदा के दक्षिण में स्थित भारत का भू-भाग जिसमें सम्पूर्ण दक्षिण सम्मिलित है), उत्तरापथ (अखण्ड भारत का उत्तर-पश्चिमी भाग), प्राच्य (भारत का पूर्वी भाग)।

## नदियाँ:

आज से दो हजार वर्ष पूर्व भारत की भूमि पर बहने वाली मुख्य-मुख्य नदियों के नाम "वृहत्संहिता" में दिये गये हैं जो निम्न हैं—

भीमरथा (भीमा), चन्द्रभागा (चिनाब) चारूदेवी, देविका (देवक या देग), गाम्भीरिका (यमुना की सहायक नदी), गोदावरी,

मोमती, गुरुहा, इक्षुमती (ईखन), इरावती (रावी) कौशकी, (कोसी या कौसिरिया), कावेरी, लौहित्य (ब्रह्मपुत्र), महानदी, मही, मालती, मन्दाकिनी, नर्मदा, निर्विन्ध्या (चम्बल की सहायक नदी), पारा (पार्वती), पयोष्णी, फल्गुका (फल्गू-कुरुक्षेत्र), रथाह्वा, सरस्वती, सरयू (घाघरा), सतद्रू (सतलुज), सिन्धु, शिप्रा, शोण, (सोन), ताम्रपर्णी, तापी (तवी-जम्मू), वेदस्मृती (वेसुलर), वेणा (वेणगंगा), वेणुमति, वेत्रवत्ती (वेतवा), विपाशा (विआस), वितस्ता (झेलम) और यमुना।

## पर्वत :

आज की तरह ईसा पूर्व काल में भी भारतवर्ष के मुख्य-मुख्य पर्वतों को भिन्न-भिन्न नामों से पुकारा जाता था। वराह-मिहिर ने उन पर्वतों के नाम 'बृहत्संहिता' में इस प्रकार से दिए हैं—

अंजन (सुलेमान), अर्बुद (आबू), अस्तगिरि (काल्पनिक नाम है), दुर्दुर (नील गिरी), चित्रकूट, धनुषमान (उ० भा०), गोमन्त (मैसर), हैमगिरी (कनक-गिरी-मैसूर), हिमवत् (हिमालय), कैलाश, किष्किन्धा, क्रौञ्च (मानसरोवर), क्षुरपिण (प० भा०) कुसुम नग (द० भा०), महेन्द्र (कलिंग), मलयक (मलयगिरी), मालिन्ध (द०भा०), माल्यवान (पू० भा०), मणिमान (प० भा०), मेघवान (पू० भा०), मेंकल (अमर कण्टक), मेरू (विवादस्पद), मुञ्जाद्रि (उ०पू०भा०), पद्म (पद्म-गिरी-मैसूर), परियात्र (म० भा०), सहगिरी (पश्चिमी घाट), शिबिरगिरी (पू० भा०) श्री पर्वत (आन्ध्र प्रदेश) शूर्पाद्रि (द० भा०) उदयगिरी (उडीसा) वसुमान (उ० भा०) प्रशस्त्रद्रि (प० भा०), ऋष्यमूक (द० भारत), फेनगिरी (द०प० भारत), रवैतिक (गिरनार) एवं विन्ध्य (विन्ध्याचल)।

## बन :

ईसा पू० काल में भारत में कई एक मुख्य-मुख्य बन थे और उनके राजा भी अलग ही हुआ करते थे। वराहमिहिर ने निम्न बनों का उल्लेख किया है।

दण्डकारण्य (दक्षिणी भारत में स्थित), धर्माण्य (मध्य भारत में स्थित), महातवी (दक्षिणी भारत में स्थित), नैमिष (आधुनिक नीमसार उ० प्र०) नृसिंह वन (उ० भा०), पुष्कर (आधुनिक पुष्कर राज (राजस्थान) वनराज्य (उ० प्र० भारत) वेणराष्ट्र (उ० पू० भारत), वनगुहा (पश्चिमी भारत) एवं वसुवन (उ० पू० भारत)।

## समुद्र :

"बृहत्संहिता" में केवल याम्योदधि (दक्षिणी समुद्र), महार्णव (महासागर-हिन्द महासागर), पूर्वसागर (बंगाल की खाड़ी) और क्षीरोद-समुद्र (पृथ्वी की मेखला या पेटी के रुप में स्थित समुद्र)।

## नगर :

वराहमिहिर ने "बृहत्संहिता" में तत्कालीन अनेक भारतीय नगरों के नाम दिये हैं जो इस प्रकार हैं—

इक्ष्वाकु (अलकापुरी), अयोध्या, बलदेवपतन (बालायपटनम), मरुकच्छ (बड़ौच), भोगप्रस्थ (उ० भा० का एक प्राचीन नगर), भोगवर्धन (मोकदर्न-महा-राष्ट्र), भूतपुरा (उत्तरीखण्ड), चान्द्रपुरा (पूर्वी खण्ड), दशपुस (मन्दसौर), धर्मपतन (धर्मपुरी-मद्रास), गजाह्व्य (हस्तिनापुर),

गया, गिरिद्वार, गिरिव्रज्य (राजगिरी), गोनर्द (उज्जैयन और विदिशा के मध्य का कोई नगर), हेमकूट (दक्षिण-पूर्व भारत का एक नगर), कालञ्जन (कालन्जर), कालकोटी, कांची, कटकस्थल (आधुनिक घनत शाला), कांतिपुर, कपिस्थल (कैथल-हरियाणा), कार्मणेय (कामरेज-बड़ौदा), काशी, कौशाम्भी (कौसम-प्रयाग), कोल-गिरी, (कोल्हापुर), कृष्णवैल्लूर (कृष्णा नदी और इलौरा), कुञ्जाद्रि (ट्रावन कोर), मध्यमिका (नगरी-राजस्थान), मरुचीपत्तन (मुईर्री-कोट्टा-मालाबार), मथुरा, मिथिला (जनकपुर), नासिक्य (नासक), प्रभास [द्वारका], प्रयाग, पुष्कलावती (चरसद्ध या पेशावर), साकेत, सिंहपुर [पिडंदादनखां-प० पाकिस्तान], सैरिन्ध्र [सरहिन्द-पंजाब], श्रुघन [सुघ-जगाधरी], सूरपार्क [सोपारा-बम्बई], तक्षशिला [टैक्सला], तापासाश्रम [पण्ढरपुर-महाराष्ट्र], ताम्रलिप्ति [तम-लुक या मदनापुर-बंगाल], तालिकट [तलखड या तल्क्काडू-मैसूर], त्रिपुरा [तेंवर-म० प्र०], तुम्बवन [तुमायन-गूना] उज्जयिनी, उज्जिहान [उज्जहाना या उज-हान—बदायूं], वड़वामुख, वनवासी [मिलासा], विराट [बेरात-जयपुर], वर्द्धमान [ बर्द्धमान-बंगाल ], विदिशा [ बेसनगर-मिलसा] एवं यशोवती।

## जातियां :

वराहमिहिर ने "बृहत्संहिता" में लगभग २२३ जातियों के नाम दिये हैं जो उस समय भारत के भिन्न-भिन्न भागों में रह रही थीं। इनमें आभीर, अम्बस्थ, आन्ध्र, अंज, आजुर्नयाण, असिक, अवन्ती, बाहलीक, द्रविड, गांधार, हून, इक्ष्वाकु, कैकेय, कलिंग, काम्बोज, खस, कीरात, कोसल, कुरु, मद्र, मगध, महाराष्ट्र, महिष, मालव, मरू, मलेच्छ, निषाद, पहलव, शूद्र, शूरसेन, उत्कल, वङ्ग, विदेह, यौधेहे एवं युगंधर आदि जातियां विशेष रूप से प्रसिद्ध थीं।

## सामाजिक जीवन

'बृहत्संहिता' में हमें तत्कालीन भारत की सामाजिक दशा की स्पष्ट झांकी मिलती है। वर्ग एवं आश्रम पूर्णरूप से प्रचलित थे। चार वर्णों के अतिरिक्त मिली जुली जातियां भी उस समय थी जिनमें चाण्डाल, डूम्ब, निषाद, पारसव, स्वपश एवं उग्र मुख्य जातियां थी। विदेशी लोग जैसे यवन, शक, हून, पहलव एवं मलेच्छ आदि भी यहां पर निवास करते थे और उनके साथ भारतीयों के सभी प्रकार के सम्बन्ध भी थे।

## धर्म :

'बृहत्संहिता' में हमें वैदिक धर्म का ही पूर्ण रूप से उस समय के भारत में प्रचार मिलता है। इन्द्र, प्रजापति, वरुण, विष्णु, सूर्य, अग्नि, यम, कुबेर आदि वैदिक देवताओं तथा बलदेव, प्रद्युमन, साम्ब, स्कन्ध, गणेश, लोकपाल, नवग्रह एवं मातृ आदि पौराणिक देवी-देवताओं की पूजा का उल्लेख स्पष्ट रूप से मिलता है। अनेक ऋषियों के नाम भी 'बृहत्संहिता' में यत्र-तत्र-सर्वत्र मिलते हैं। कापालिक (अघोरी) पंथ का भी उल्लेख मिलता है। वराहमिहिर के समय में मूर्ति पूजा का खूब प्रचार था ऐसा अनेक स्थानों पर तत्सम्बन्धी वर्णन से मालूम होता है। अनेक प्रकार के होम उस समय किये जाते थे जिनमें 'कोटि होम' ज्यादा प्रसिद्ध था। जैन एवं बौद्ध धर्म के विषय में 'बृहत्संहिता' में कोई विशेष चर्चा नहीं की गयी है और यही कारण है कि वराहमिहिर ने जैन साधुओं को 'निग्रन्थी' एवं बौद्ध भिक्षुओं को वराहमिहिर ने 'साख्य भिक्षु' लिखा है।

## विवाह :

'बृहत्संहिता' में स्त्री पुरुषों की वैवाहिक योग्यताओं का जो वर्णन मिलता है उससे स्पष्ट है कि बाल विवाह का प्रचलन उस समय नहीं था। प्रायः अपनी ही जाति में वैवाहिक सम्बन्ध निश्चित होते थे लेकिन उग्र, निषाद, चांडाल, पारसवा आदि जातियों में अन्तर्जातीय विवाह भी होते थे। विवाह के सन्दर्भ में ही "वरण", "विवाह यात्रा", "मधुपर्क", "पाणिग्रह" आदि का भी उल्लेख मिलता है। सपत्नी का उल्लेख बहुपत्नी प्रथा का होना सिद्ध करता है। विधवा विवाह का संकेत भी स्पष्ट रूप से दृष्टव्य है।

## भोजन

चावल उस युग का मुख्य भोजन था। सीलि, शशटिका, यवक, कलमसालि, पाण्डूक, रक्तसालि, सूवर्क निशपाव आदि चावल के अनेक प्रकार बताये गये है। दालों का प्रचलन भी खूब था। पके भोजन में मसाले डालने की स्थिति भी थी। मसालों के नाम पर लवण, सैन्धव, पिप्पली सूंठी, जीरक, जातिफल, सूक्रशमैला, लवंग, आदि का उल्लेख "बृहत्संहिता" में मिलता है।

आहार में दूध का विशेष महत्त्व था। दधि, तक्र, नवनीत, घृत आदि–आदि दूध से बने पदार्थों की ओर भी संकेत किया गया है। मिठाईयों में मधु, गुड़ शर्करा, आदि का भी उल्लेख है। उस समय त्रिमधु का भी चलन था। त्रिमधु स्वच्छ मक्खन, और शर्करा के मिश्रण से बनाया जाता था।

जिन कुछ व्यंजनों की चर्चा वराहमिहिर के ग्रन्थ में मिलती है, उनमें प्रमुख थे ओदन, मोदक, पलल, [तिलकुट], पायस [खीर], पूप [पुआ], यवायु [लपसी], उल्लोपिका, सूर्प। मांसाहारी व्यंजनों के भी उल्लेख मिलतें है।

## वेषभूशा :

कार्पासिक [सूती कपड़ा] और "और्णिक" [ऊनी वस्त्र] का उल्लेख सिद्ध करता है कि वस्त्रों के क्षेत्रों में ऊन और कपास का प्रयोग अधिक होता था। "कुतुप" एक ऐसा कपड़ा था जिसके निर्माण में बकरी की ऊन प्रयोग में आती थी। ऊन से बने कपड़ों में कम्बल का उल्लेख बार-बार हुआ है। दुकूल, कौशेय, क्षौम पत्रोर्ण की चर्चा भी मिलती है।

पुरुष के ऊपरी कपड़े को "उत्तरीय" और नीचे के कपड़ों को "अन्तरी" कहते थे। उत्तरीय कन्धे पर ही लपेट लिया जाता था। धार्मिक कार्यों में उत्तरीय का पहनना अनिवार्य था। "उशणीश" (पगड़ी) का भी प्रयोग होता था। उस युग में कपड़ों के रंगे जाने की व्यवस्था की ओर भी संकेत मिलते हैं। जूतों के नास पादुका एवं उपान्ह दिए गए हैं।

## आभूषण :

आभूषणवाची "अलंकार", "भूषण" आदि अनेक शब्दों का प्रयोग इस ग्रन्थों में मिलता है। स्त्री और पुरुष दोनों ही आभूषण पहनते थे, लेकिन स्त्री के आभूषणों की संख्या अधिक होती थी। शिरोमणि का प्रयोग केवल राजा करता था। मुकट का उल्लेख भी उसी संदर्भ में मिलता है। "जटा मुकुट", "किरीट मुकुट", "करण्ड मुकुट" आदि-आदि मुकुट में कई प्रकार थे। पगड़ी पर सुनहरी पट्टी के रूप में पट्टा भी बांधा जाता था। पट्टा के पाँच भिन्न-भिन्न मापों का उल्लेख भी "बृहत्संहिता" में मिलता है। अर्धगुच्छ, इन्दुच्छन्द, विजयच्छन्द, देवच्छन्द, हार, अर्द्धहार, रहियकललाय, माणवक, मंडर, हारफलक, मणिसोपानक, एकावली आदि आभूषण उस समय प्रचलित थे।

कुण्डल, केयूर, अंगद, वलय, नूपुर आदि आभूषण स्त्रियों के विशेष आभूषण थे। हीरा, मोती एवं पन्ना आदि मूल्यवान रत्नों के धारण करने का उस युग में खूब प्रचलन था और आचार्य वराहमिहिर ने इन रत्नों के अनेक प्रकार के गुणों एवं दोषों का अपूर्व वर्णन किया है जिससे उस काल के रत्न विज्ञान का पता चलता है।

## नाप एवं तौल :

वराहमिहिर के समय भिन्न-भिन्न प्रकार की वस्तुओं के लिये अलग-अलग प्रकार के नाप एवं तौल का समस्त देश में प्रचलन था। 'बृहत्संहिता' में तुला (तराजु) के निर्माण की विधी भी बतायी गयी है। तण्डुल, सितसर्ष (सफेद सरसों), कृष्णल, माषक, कार्ष, पल, धरण, तुला एवं भार यह तौल रत्न एवं सुवर्ण आदि के तौलने में उपयुक्त होते थे। जल आदि तरल पदार्थों तथा अनाज आदि के नाप के लिये पल, कुडव, प्रस्थ, आढक, द्रोण आदि नाप प्रयोग में आते थे। लम्बाई नापने के लिये अङ्गुल, वितष्ठी, ऊर्तनी, हस्त, णण्ड, धनुष, पुरुष एवं योजन आदि पैमाने थे। साधारण योजन आज के ४.५४ मील के समान होता था।

## कृषि एवं उद्यान

कृषि के विषय में 'बृहत्संहिता' में बहुत विस्तृत जानकारी मिलती है। वर्ष भर में दो फसलें ही लिए जाने का संकेत मिलता है। बीजों का वर्गीकरण, फसलों की बीमारियों तथा भिन्न-भिन्न प्रकार की खादों के निर्माण की विधियों से हमें मालूम होता है कि आज से दो हजार वर्ष पूर्व भारत में कृषि सम्बन्धी कितनी विस्तृत जानकारी थी और उस समय हमारे यहां रासायनिक खादों का निर्माण एवं उपयोग होता था।

'बृहत्संहिता' में प्राकृतिक वन सम्पदा के अतिरिक्त उद्योनों के विषय में बहुत जानकारी मिलती है। भिन्न-भिन्न प्रकार के लगभग १९७ फलदार एवं फूलदार वृक्षों तथा पौधों का उल्लेख 'बृहत्संहिता' में किया गया है। आज के वनस्पति शास्त्र वेत्ताओं को आचार्य वराहमिहिर को महान मार्ग दर्शक मानने पर मजबूर होना पड़ता है जब वह 'बृह संहिता' में वनस्पतियों के बारे में सूक्ष्म एवं वैज्ञानिक जानकारी देखते हैं। 'वृक्षायुर्वेद' का तो वर्णन ही पूरे एक अध्याय में किया गया है जो वृक्षों की बीमारियों एवं उनकी चिकित्सा से ही सम्बन्धित है।

## भवन निर्माण (वास्तु विद्या)

आज से दो हजार वर्ष पूर्व भारत में सुन्दर-सुन्दर एवं अनेक डिजाईनों के भवन, मन्दिर एवं राजप्रासाद बनाने की कला तथा कई-हजार वर्ष तक स्थिर रहने वाले मसालों के निर्माण की विधियों को 'बृहत्संहिता' में देखकर ऐसा लगता है जैसे समस्त संसार में भवन निर्माण विद्या का प्रादुर्भाव भारत में ही हुआ हो। आज भी आचार्य वराहमिहिर द्वारा निर्मित वेधशाला का मध्यवर्ती 'मेरुस्तम्भ' (तथा कथित कुतुबमीनार) आचार्य वराहमिहिर की वास्तु विद्या में अपूर्व निपुणता का जीता-जागता प्रमाण है।

## पशुविज्ञान :

"बृहत्संहिता" में सात अध्याय ही पशुओं के विषय में लिखकर आचार्य वराहमिहिर ने यह सिद्ध कर दिया है कि ईसा पूर्व कालीन युग में भारतीयों को पशुओं के विषय में अत्याधिक जानकारी प्राप्त थी। आचार्य वराहमिहिर ने पशुओं का विस्तृत वर्गीकरण दिया है जिसमें जंगली तथा पालतू

पशुओं की अनेक जातियों और उनके शुभाशुभ लक्षणों तथा अन्य गुणों एवं दोषों का वर्णन किया है। पशुओं के अतिरिक्त पक्षियों तथा कीड़े मकोड़ों और अन्य जीव-जन्तुओं के विषय में भी 'बृहत्संहिता' में बहुत कुछ जानकारी मिलने से हमें उस समय के भारतीयों के अद्भुत पशु विज्ञान का पता चलता है।

## मुद्रा :

आचार्य वराहमिहिर ने रूपक एवं कार्षापण नाम से प्रचलित उस समय की दो मुद्राओं का उल्लेख किया है। बहुत सम्भव है कि उपरोक्त दोनों मुद्राएँ स्वर्ण की ही होंगी क्योंकि उस समय चांदी की मुद्राओं का अधिक प्रचलन न था।

"बृहत्संहिता" में प्राप्त उक्त सूचनाएँ हमारी संस्कृति की समृद्धि की प्राचीनता को जिस स्पष्टता से व्यक्त करती हैं वह प्रकारान्तर से हमारी संस्कृति की श्रेष्ठता एवं उच्चता का ही प्रमाण हैं।

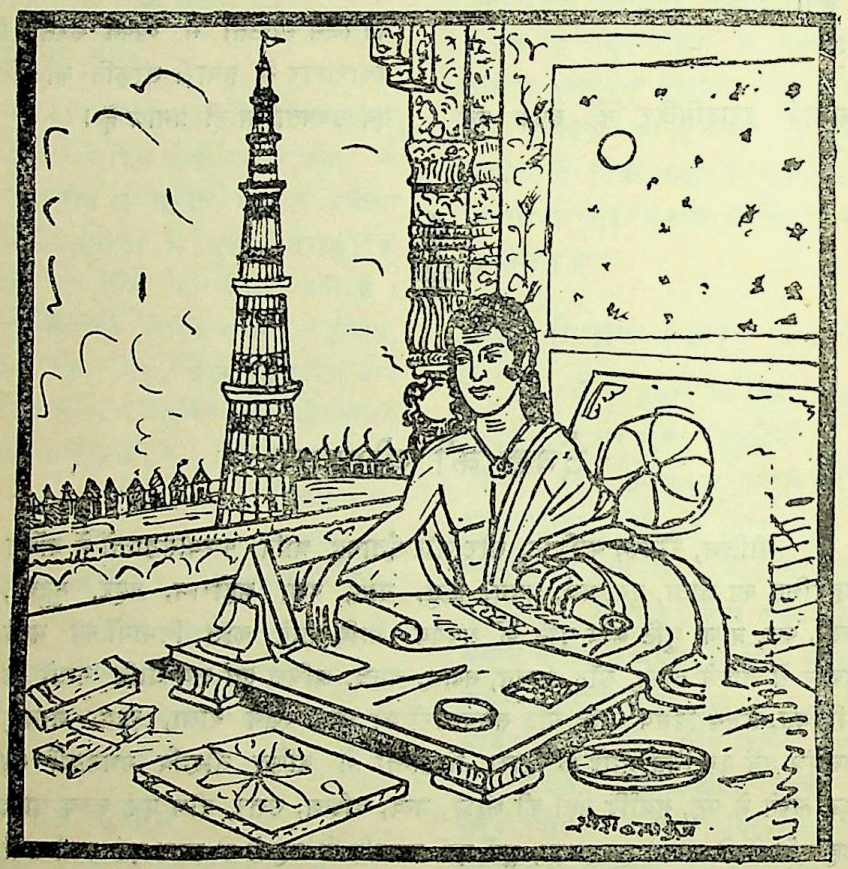


## दैवज्ञ की योग्यता

पौलिश, रोमक, वाशिष्ठ, सौर और पैतामह आदि पञ्चसिद्धान्तों में वर्णित ग्रहगणित का ज्ञाता, युग, वर्ष, अयन, ऋतु, मास, पक्ष, अहोरात्र, प्रहर, मुहूर्त्त, घड़ी, पल, प्राण, त्रुटि और त्रुटि के अवयव आदि-आदि काल विभागों का भली प्रकार से जानने वाला, सौर, सावन, नक्षत्र, चान्द्र, अधिक एवं क्षय आदि मासों से परिचित, प्रभव-विभव आदि साठ समवत्सरों का ज्ञान रखने वाला, छाया साधन, जलयंत्र एवं दृग्गणित आदि के द्वारा सिद्धान्तों में वर्णित सौरादि गणनाओं को शुद्ध करने में पटु, सूर्यादि ग्रहों की शीघ्र, मन्द, दक्षिण, उत्तर, नीच एवं उच्च आदि छह गतियों के कारण का ज्ञाता, सूर्य एवं चन्द्रादि के ग्रहणों के काल एवं स्पर्श तथा मोक्ष आदि को बताने में कुशल, ग्रहयुद्ध, ग्रहचार एवं ग्रहसमागम के काल को बता सकने में निपुण, ग्रहों के अक्षांश, लम्बांश, द्युज्या, चरखण्डकाल, राशियों के उदयमान, छाया, नाड़ी, करण आदि के क्षेत्र एवं काल तथा कारण का ज्ञाता, प्रश्नों के सत्य-सत्य उत्तर कहने में प्रवीण एवं कसौटी, अग्नि तथा शान द्वारा परीक्षा किये गये शुद्ध स्वर्ण के समान शास्त्रों का वक्ता और तन्त्रज्ञ होना ही दैवज्ञ (ज्योतिषी) की योग्यता है।

—वराहमिहिर

# काल निर्णय



**वराहमिहिर** को प्रथम शताब्दि ईसा पूर्व में होने वाले संवत प्रवर्त्तक सम्राट विक्रमादित्य 'शकारि' के स्थान पर ईसा पश्चात छटी शताब्दि में होने वाले सम्राट चन्द्र गुप्त द्वितीय 'विक्रमादित्य' का समकालीन सिद्ध करने का जो षड्यन्त्र प्राच्य विद्या के कहे जाने वाले विदेशी विद्वानों तथा विशेषकर भारत को लगभग दो सौ वर्ष तक परतन्त्र रखने वाले अंग्रेज इतिहासकारों और उनके चापलूस भारतीय अनुयायियों द्वारा रचा गया है, उस षड्यन्त्र का इन पृष्ठों में पर्दाफाश किया गया है।

—सम्पादक

# वराहमिहिर के सही जन्मकाल का निर्णय

वराहमिहिर ने 'बृहत्संहिता' के अन्तिम अध्याय में अपने जन्म स्थान कापिथ का उल्लेख किया है जबकि 'पञ्चसिद्धान्तिका' में उन्होंने अपनी आयु एवं काल का वर्णन किया है। वराहमिहिर के काल के विषय में 'एस्ट्रालोजिक्ल मैगजीन' की जिल्द उन्नीस एवं बीस में प्रकाशित मेरे लेख न केवल निर्णयक, विस्तृत एवं विश्वसनीय ही हैं बल्कि इतने अधिकार युक्त हैं जितना अधिकार युक्त विश्व में कोई अच्छे से अच्छा प्रमाण पत्र हो सकता है। यूरोप के विद्वानों द्वारा वराहमिहिर के काल के विषय में प्रस्तुत की गयी दलीलें दोषयुक्त, अविश्वनीय, अधिकारहीन तथा पूर्ण रुप से हंसी उत्पन्न करने वाली हैं जबकि रचियता स्वयं वराहमिहिर ने कभी भी असत्य न होने वाली खगोलीय प्राकृतिक घटना अर्थात सप्तर्षियों [बृहद् रिक्षमण्डल] की गति के आधार पर 'बृहत्संहिता' के तेरहवें अध्याय के तीसरे श्लोक में उसका स्पष्ट रुप से वर्णन किया है। वराहमिहिर संवत प्रवर्तक सम्राट विक्रमादित्य के समकालीन थे [जिनका चलाया हुआ संवत आज २०२८ है] तथा वह उनकी प्रसिद्ध नव रत्नों की विद्वदमंडली के प्रमुख रत्न भी थे। इन धूर्त एवं ठग साहित्यकारों को जिन्हें उपरोक्त सम्प्रदाय से सम्बन्धित बीसियों अबोध पुरुषों का समर्थन प्राप्त है, भद्दी-जालसाजी के लिये चित्रित की गयी बुद्धि-हीन दलीलों तथा परामर्शों को देने के अतिरिक्त और कोई भी काम नहीं है। न जानें सत्यता को छिपा कर असत्यता की वकालत करने में इन्हें क्यों आनन्द आता है ?

वराहमिहिर के सही काल का निर्णय करने में हमें 'बृहत्संहिता','पञ्चसिद्धान्तिका' "बृहज्जातक", "ज्योतिर्विदाभरण" तथा अन्य कई एक ग्रन्थों एवं घटनाओं पर सूक्ष्म विचार करना पड़ेगा जिसे यहां संक्षेप में प्रस्तुत किया जा रहा है।

**बृहत्संहिता में वर्णित शक काल कौन सा है ?**

बड़े दुःख की बात है कि वराहमिहिर की जन्म तिथि को निश्चित करने में सर विलियम हण्टर, डा० भुलर एच० केर्न, कोलब्रुक, बैंटली, विलफोर्ड, विलसन, कनिङ्घम, वेबर, लेसेन, मैक्समूलर, हॉल, स्टाल-जूलियन एवं रेनॉल्ड जैसे प्रसिद्ध प्राच्य विद्या के विदेशी लेखकों तथा भारतीय विद्वानों ने महान भूलें की हैं जबकि वराहमिहिर ने स्वयं अपनी प्रसिद्ध कृति 'बृहत्संहिता" के तेरहवें अध्याय के तीसरे और चौथे श्लोक में इसी सिलसिले में निम्न संकेत दिया है—

**आसन मघासु मुनियः शासति**
**पृथ्वीं युधिष्ठिरे नृपतौ।**
**षड्द्विकपञ्चद्वियुतः**
**शककालस्तस्य राज्ञश्च ॥**

एन० चिदंबर अय्यर जो कि एक सुयोग्य भारतीय खगोल शास्त्री एवं गणितज्ञ

भी थे, जिन्होंने आज से लगभग ५५ वर्ष पूर्व [प्रस्तुत लेख सन् १९३५ ई० में लिखा गया था] सन् १८८० ई० में "बृहत्संहिता" एवं "बृहज्जातक" का अंग्रेजी में अनुवाद किया था, उन्होंने उपरोक्त श्लोक का अर्थ करते हुए लिखा है कि विक्रम शक के प्रारम्भ के २५२६ वर्ष पूर्व जब महाराजा युधिष्ठिर शासन कर रहे थे तब सप्तर्षि मघा नक्षत्र में भ्रमण कर रहे थे। सप्तर्षि प्रत्येक नक्षत्र में एक सौ वर्ष तक भ्रमण करते हैं जबकि नक्षत्रों की संख्या सत्ताईस है जो उत्तर पूर्व में उदय हुआ करते हैं। मरीचि, वशिष्ठ, अंगरिष, अत्री, पौलस्त्य, पुलह एवं क्रतु सप्तर्षियों के नाम हैं।

विक्रम शक का उल्लेख करके जिसका मूल ग्रन्थ में कोई भी संकेत या उल्लेख नहीं किया गया है, चिदम्बर अय्यर ने एक ईमानदार अनुवादकर्त्ता के लिए निर्धारित की गई सीमा का उलङ्घण किया है। मूल श्लोक का स्पष्ट अर्थ इस प्रकार से है— यदि हम वर्तमान शाका में २५२६ वर्ष जोड़ देवें तो वह युधिष्ठिर शक [संवत] आ जावेगा। ध्यान रहे वराहमिहिर ने शालिवाहन शक [आधुनिक शाका संवत जो विक्रम संवत से १३५ वर्ष एवं ईस्वी सन् से ७८ वर्ष छोटा है] की ओर बिल्कुल संकेत नहीं किया है। उन्होंने तो उस काल में प्रचलित किसी शक का उल्लेख किया है जब वह ग्रन्थ लिख रहे थे। अब प्रश्न यह उठता है कि उस समय कौनसा शक [संवत] प्रचलित था जिसका उल्लेख वराहमिहिर ने किया है। उस समय का प्रचलित शक जिसमें २५२६ जोड़ने पर युधिष्ठिर शक का समय प्राप्त होता था वह विक्रम शक [आधुनिक विक्रम शक] इसलिये नहीं हो सकता क्योंकि विक्रम शक का प्रादुर्भाव वराहमिहिर द्वारा रचित साहित्य के कुछ दशाब्दियों के बाद ही हुआ था।

उस काल की परिस्थितियों का अध्ययन करने से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि वराहमिहिर ने जिस शक का वर्णन किया है वह केवल बुद्ध शक [बुद्ध संवत] ही सकता है। बुद्ध के विषय में कहा गया है कि उनका निर्वाण [मृत्यु] ५३४ ई० पू० से हुआ था और ऐसा माना जाता है कि मृत्यु के समय वह ८० वर्ष के थे। २६ वर्ष की अल्प आयु में ही बुद्ध ने सच्ची मानसिक शांति एवं ईश्वर को जानने के लिये समस्त भौतिक सुखों को छोड़ कर कठिन तपस्या करने के लिये वन गमन किया था। अतः बुद्ध द्वारा राज सिंहासन के त्याग और ईश्वर के विचार मग्नता हेतु वन गमन की घटना का काल ५९९ ई० पू० ही हो सकता है। वराहमिहिर के समय प्रचलित शक काल [५९९-५६] ५४३ ई० पू० था जो कि बुद्ध के वन गमन के समय से शुरू हुआ था। वराहमिहिर के समय शक काल ५४३ ई० पू० में २५२६ जोड़ देने पर [२५२६+५४३] ३०६९ ई० पू० आता है। इस संख्या में १९७२+५६ जोड़ने पर ५०९७ वर्ष अर्थात युधिष्ठिर शक से आज दिन तक का व्यतीत काल आ जावेगा। कलि संवत जो कि युधिष्ठिर संवत का लगभग समकालीन ही है इस समय ५०८१ है अतः इसकी संख्या एवं उपरोक्त [५०९७] आपस में बहुत ही मिलती है।

बड़े आश्चर्य की बात है कि डा० केर्न और उनके साथी किस प्रकार से इस परिणाम पर पहुंचे हैं कि वराहमिहिर का काल सन ५४० ई० है। वास्तव में इस प्रकार के निर्णय एक प्रकार के मस्तिष्क सम्बन्धी व्यायाम ही हैं जिनको यूरोपीय विद्वान ही स्वयं समझा सकते हैं।

बराहमिहिर ने "बृहत्संहिता" एवं "बृहज्जातक" में अनेक ऐसे भारतीय ऋषियों तथा रचियताओं के नाम दिये हैं जिनका काल बराहमिहिर से पूर्व का है और जिन्हें बराहमिहिर ने स्वयं पूर्वाचार्य या पूर्व मुनीन्द्र कहकर स्मरण किया है। बराहमिहिर ने इन पूर्वाचार्यों को अपने साहित्य में अधिकारी पुरुष मान कर सम्मानित किया है। बराहमिहिर का कथन साहित्य की दृष्टि से और भी अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि इनमें से कुछ एक रचियता तो बराहमिहिर के बहुत समय पूर्व होने वाले विख्यात महर्षि ही हैं जिन्होंने अपनी अद्भुत प्रतिभा एवं ज्ञान द्वारा खगोलविज्ञान, फलितज्योतिष, प्राकृतिक विज्ञान, धर्म एवं दर्शन शास्त्र पर बहुत ही महत्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना की है तथा जिनके काल का कई एक विश्वसनीय प्रमाणों द्वारा ठीक-ठीक निर्णय भी किया जा सकता है। बराहमिहिर द्वारा वर्णित कुछ एक पूर्वाचार्यों के नाम निम्न हैं—पाराशर, गर्ग, वृद्धगार्गी, कश्यप, नारद, मनु,बृहस्पति, बादरायण, मय, भारद्वाज, पितामहा,पौलिश, सप्तर्षि, शक्र, विश्वकर्मा, कपिल, चाणिक्य, असित, देवल, ऋषिपुत्र, बलदेव, भागुरी, बृहदरथ, द्रव्यवर्द्धन, गरुतमान, कपिस्थल, ऋषभ, सारस्वत, शुक्र, सिद्धसेन, वज्र, यवन, वृद्धयवन, यवनेश्वर, आर्यभट, मनित्थ, नग्नाजीत, जीवशर्मा, सत्याचार्य सिंहाचार्य, भदित्त, सवित्र, लाटदेव एवं हस्ताब्द ।

केर्न और उनके साथियों का विचार है कि उपरोक्त नामावली में बहुत से ऋषियों के नाम केवल एक कल्पना मात्र ही हैं जबकि उन्हें खगोल विज्ञान एवं फलित ज्योतिष के अनेक सिद्धान्तों के संस्थापक अथवा प्रवर्तक माना जाता है। यूरोप के इन बुद्धिमान पुरुषों के इस कथन ने एक अनोखी समस्या खड़ी कर दी है कि कल्पित व्यक्ति भी गणित की समस्याओं को हल कर सकते हैं अथवा प्राकृतिक नियमों के अध्ययन से आकाशीय पिण्डों का पृथ्वी पर शुभ या अशुभ पड़ने वाले प्रभाव को प्रतिपादित कर सकते हैं। वास्तव में इन विदेशियों में बहुत सी अद्भुत हस्तियां ऐसी भी हैं जो मस्तिष्क की अव्यवस्था के कारण से कई एक रोगों द्वारा पीड़ित हैं और उनको विशेष चिकित्सा की आवश्यकता है। क्या कल्पित कथाओं, अन्धविश्वास एवं मिथ्या वहम द्वारा मानव ज्ञान से सम्बन्धित विषयों पर किसी अधिकार पूर्ण ग्रन्थों की रचना होनी सम्भव है ? यदि सम्भव है तो मैं यह जानना चाहूंगा कि ऐसे ग्रन्थ किस व्यक्ति अथवा संस्था से प्राप्त किये जा सकते हैं ? क्या असंगतवार्ता इतनी ऊंची उड़ान ले सकती हैं कि गणित, फलित एवं मानवीय कार्यों से सम्बन्धित प्रयोगों पर कल्पित कथाओं एवं मिथ्या वहम द्वारा चार लाख श्लोकों की रचना की जा सकती है। ऐसा कहने वाले विशेषज्ञों के मस्तिष्कों को सुरक्षित रखना चाहिए ताकि भविष्य में होने वाली सन्तानें उनका परीक्षण तो कर सकें । महाभारत, रामायण तथा अन्य विस्तृत साहित्य को जनता के सामने लाकर प्रदर्शित करना बहुत ही उपयुक्त होगा ताकि यह भली भांति मालूम हो जावे कि क्या वास्तव में इनकी रचना कल्पित कथाओं या मिथ्या वहम पर आधारित है।

इस प्रकार के विवेकहीन सिद्धान्त को प्रतिपादित करने वाले कोई अन्य लोग नहीं हैं, बल्कि इस प्रकार के अक्षम्य हठधर्मीपूर्ण दुराग्रह केवल यूरोप के विद्वान ही भारतीय विज्ञान के प्रति कर सकते हैं जिसका सीधा कारण केवल इनकी भारतीय विद्वानों के प्रति पक्षपातपूर्ण नीति है। ऐसा जान पड़ता है कि स्वदेशाभिमान एवं दुराग्रह ने इनकी

मस्तिष्क की कल्पना शक्ति को अन्धा कर दिया है।

**पंचसिद्धान्तिका में वर्णित काल कौनसा है ?**

डा० केर्न अपनी प्रसिद्ध कृति "बाइ-बिलयोथिका इन्डिका" के पृष्ठ दो पर लिखते हैं कि वराहमिहिर के जन्मकाल के विषय में हमें उनके समस्त साहित्य में कोई भी संकेत नहीं प्राप्त है। हम वराहमिहिर के जन्म काल के विषय में उनकी महत्वपूर्ण कृति "पञ्चसिद्धान्तिका" में खोज करेंगे क्योंकि हिन्दू वैज्ञानिकों का यह सदा से ही अभ्यास रहा है कि गणित करते समय वह अपना जन्म काल ही बहुधा प्रयोग में लाते हैं।

उज्जैन के हिन्दू खगोलवेत्ताओं के पास अवश्य कुछ ऐसे साधन रहे होंगे जिससे वह वराहमिहिर के काल को निश्चित कर सकें। उज्जैन के खगोलवेत्ताओं ने इस अभिप्राय के लिये एक सूची तैयार करके डा० हन्टर को दी थी जिसे कोलब्रुक ने प्रकाशित किया था। इसमें वराहमिहिर का काल ४२७ शक [५०५ ईस्वी] अंकित था। यहां पर डा० केर्न को एक अक्षम्य एवं आशाहीन भूल का शिकार होना पड़ा क्योंकि शक शब्द का अर्थ यह ही जरूरी नहीं है कि वह विक्रम शक या शालिवाहन शक ही हो सकता है बल्कि मेरे उपरोक्त कथनानुसार वह बुद्ध शक ही हो सकता है। सूची में यह भी कुछ नहीं लिखा हुआ है कि वह विक्रम शक या शालिवाहन शक ही हो सकता है। सूची में यह भी कुछ नहीं लिखा हुआ है कि ४२७ शाके वराहमिहिर के जीवन के किस विशेष वर्ष को सम्बोधित करती है।

उज्जैन से प्राप्त सूची को तो बड़ी कठिनता से प्रदर्शित किया गया मगर अन्य लोगों ने इसे बड़े प्रभावशाली ढंग से मान लिया तथा इसके काल की प्रमाणिकता को भी स्वीकार किया जैसा कि अल्बेरुनी के उल्लेख द्वारा हमें प्राप्त होता है। अरब के इस खगोलवेत्ता अल्बेरुनी ने पूर्ण शुद्धता द्वारा उसी काल को प्रतिपादित किया है जिसे इसके ८०० वर्ष बाद डा० हण्टर ने उज्जैन के हिन्दू खगोलवेत्ताओं की सूची के आधार पर प्रकाशित किया था। ध्यान रहे हिन्दू खगोलवेत्ता वराहमिहिर से अल्बेरुनी तक व्यतीत हुए काल से ज्यादा समय तक भी अपने मत में अपरिवर्तनशील रहे हैं। उज्जैन से प्राप्त सूची में जिसका स्पष्ट उल्लेख नहीं है उस, ४२७ शाके का सम्बन्ध वराहमिहिर की "पञ्चसिद्धान्तिका" से है। यदि हम बुद्ध शक में से ४२७ घटा देवें [५४३-४२७] तो ११६ ई० पू० का समय आता है। विक्रम संवत का आरम्भ ५६ ई० पू० में हुआ था जब विक्रमादित्य के शासन का बारहवाँ वर्ष चल रहा था। अतः ११६ में से ५६+१२=६८ घटाने पर ४८ वर्ष शेष रह जाते हैं जो कि वराहमिहिर की उस समय की आयु को बताते हैं। वराह मिहिर ८० वर्ष की दीर्घ आयु तक जीवित रहे, ऐसी मान्यता है अतः वह विक्रम के नवरत्नों में आयु में सबसे बड़े थे। बड़े दुख से लिखना पड़ता है कि डा० केर्न और उनके साथियों ने वराहमिहिर के काल निर्णय के सम्बन्ध में ऐसी गहरी खाई पैदा कर दी है जबकि "पञ्चसिद्धान्तिका" में हमें उनके काल सम्बन्धी स्पष्ट निर्णय प्राप्त हैं।

**विक्रमादित्य के**
**सुदीर्घ शासन काल की साक्षी**

सम्राट विक्रमादित्य की गणना महाराजा युधिष्ठिर के पश्चात होने वाले महान शासकों में की जाती है। महाकवि कालिदास ने अपनी प्रसिद्ध ज्योतिष कृतियों, "पूर्वा-कालामृत", "उत्तराकालामृत" एवं "ज्योति-

विदाभरण" में उज्जैन की देवी महाकाली एवं सम्राट विक्रमादित्य की बहुत महिमा लिखी है। विक्रमादित्य ने अपना संवत अपने राज्य के बारहवें वर्ष में तब चलाया था जब भारत को पराधीन करने के कुविचार से आक्रमण करने वाले पाँच लाख विदेशी शकों को विक्रमादित्य के हाथों महान पराज्य उठानी पड़ी थी। विक्रमादित्य ने ५६ ई० पू० से ७८ ईस्वी तक अर्थात १३४ वर्ष तक राज्य किया। हमारे इतिहास-वेत्ताओं में कुछ एक ऐसे मूर्ख भी हैं जो मनुष्य के इतने दीर्घकाल तक जीवित रहने पर शंका करते हैं। जब आगाखान १५० वर्ष तक जीवित रह सकता है, थोमसपार की आयु १६२ वर्ष की हो सकती है, एक फ्रांसिसी महिला बारह वर्ष तक गर्भवती रह सकती है जबकि उसकी आयु २०० वर्ष की थी और एक चीनी २५० वर्ष तक जीवित रह कर सत्ताइसवीं बार शादी कर सकता है—तब महान सम्राट विक्रमादित्य की आयु मर्यादा १५० या १६० वर्ष की होने में क्या आपत्ति हो सकती है।* यह कहना कि विक्रमादित्य नाम का कोई भी सम्राट भारत में पूर्व काल में विद्यमान नहीं था विवेकहीनता ही होगी। इसी विक्रमादित्य की राजसभा में धनवन्तरी, क्षपणक,अमरसिंह वेतालभट्ट, शंकु, घटखर्पर, कालिदास, वराहमिहिर एवं वररुचि आदि विख्यात नवरत्नों की एक विद्वदमण्डली थी, ऐसा "ज्योतिर्विदाभारण" में महाकवि कालिदास ने स्वयं लिखा है। अतः विक्रमादित्य का दीर्घ शासन काल जब एक सत्य ऐतिहासिक घटना है तब वराहमिहिर का इस घटनाक्रम के समकालीन होने में कोई शंका नहीं होनी चाहिए।

卐

## चन्द्रमा के प्रकाश का कारण सूर्य

एक घड़े को सूर्य की धूप में रख देने से जैसे उसका वह अर्ध भाग जो सूर्य के सम्मुख रहता है सूर्य की किरण से धौला (सफेद) हो जाता है और दूसरा आधा भाग जैसे अपनी छाया से काला रहता है, वैसे ही सूर्य के निचले भाग में विराजित चन्द्रमा का आधा भाग प्रतिदिन सूर्य की किरण से प्रकाशित होता है और आधा भाग अपनी छाया से ही कृष्णवर्ण (अन्धकारमय) रहता है। जैसे सूर्य के सम्मुख रखे दर्पण के ऊपर सूर्य की किरणों का समूह गिरकर अन्धियारे घर के भीतर घुसकर अपने प्रतिबिंब से घर के भीतर का अन्धकार नाश करता है वैसे ही जलमय चन्द्रमा के ऊपर सूर्य की किरणें गिरकर पृथ्वी पर होने वाली रात्रि के अन्धकार समूह का नाश करती हैं। सूर्य का निचला भाग छोड़ते-छोड़ते चन्द्रमा का पश्चिम भाग सूर्य की किरणों के वश से जितनी शुक्लवर्णता धारण करता है नीचे आदि में वह उतना ही प्रकाशित होता जाता है। इसी भांति प्रतिदिन स्थान विशेष के वश से तीसरे प्रहर के सयय घड़े के समान पिछले भाग में सूर्य के कारण चन्द्रमा की शुक्लता बढ़ा करती है।

—वराहमिहिर

---

* मुगल शाहज़ादा दाराशिकोह के आध्यात्मिक गुरू योगी राज बाबा लालदयाल (बाला लाल या बावा लालदास) तीन सौ वर्ष तक जीवित रहे हैं जिनमें से सौ वर्ष तक तो वह सहारनपुर में अखण्ड तपस्या करते रहे हैं और शेष दो सौ वर्ष धर्म प्रचारार्थ देश एवं विदेश में भ्रमण करते रहे हैं।

—सम्पादक

# वराहमिहिर का जन्म काल
## और
# उनके द्वारा वर्णित शक काल की खोज

वराहमिहिर के जन्म काल के विषय में दो प्रकार के मत प्रचलित हैं। प्रथम मत वाले वराहमिहिर को ईसा की छटी शताब्दी में हुआ मानते हैं जबकि दूसरे मत वाले ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी को वराहमिहिर का काल कहते हैं। अतः यह उचित है कि सबसे पहले दोनों पक्ष के मतों की मुख्य-मुख्य दलीलों की यहाँ विवेचना की जावे।

ईसा की छटी शताब्दी में वराहमिहिर विद्यमान थे, ऐसा मानने वालों के तर्क यह हैं—

१—वराहमिहिर ने अपनी प्रसिद्ध कृति "पञ्चसिद्धान्तिका" में अहर्गन निकालने की विधि में ४२७ शक का उल्लेख किया है—

**सप्ताब्धिश्ववेदसख्यं शककालमपास्य**
**चैत्रशुक्लादौ।**
**अर्धास्तमिते सूर्ये यवनपुरे**
**सौम्यदिवसाद्ये॥**

—पञ्चसिद्धान्तिका १/८

चूंकि शक ४२७ से अभिप्राय ५०५ ई० से है [आधुनिक शक संवत ७८ ई० में शुरू हुआ था] अतः वराहमिहिर इससे पूर्व काल में कदापि नहीं हो सकते हैं।

२—वराहमिहिर ने "बृहत्संहिता" में हमारा ध्यान इस ओर आकर्षित किया है कि उनके युग में सम्पात बिन्दु मकर [धनिष्ठा] एवं कर्क [आश्लेषा] में थे:—

**आश्लेषार्धाद्दक्षिणमुत्तरमयनं रवेर्धनिष्ठाद्यम्।**
**नूनं कदाचिदासीद्येनोक्तं पूर्वशास्त्रेषु॥**
**साम्प्रतमयनंसवितुः कर्कटकाद्यं**
**मृगादितश्चान्यत्।**
**उक्ताभावो विकृतिः प्रत्यक्षपरीक्षणैर्व्यक्तिः॥**

—बृहत्संहिता ३-१/२

अतः इससे स्पष्ट होता है कि वराह मिहिर के काल में मेष राशि का आरम्भ स्थान निश्चित ही अश्विनी नक्षत्र का प्रथम बिन्दु ही था।

आधुनिक खगोल विज्ञान के अनुसार अयनांश की गति प्रतिवर्ष लगभग ५०'.२९" है और इस समय अयनांश लगभग २३° है। अतः छटी शताब्दी ईस्वी के प्रारम्भ में अवश्य ही अयनांश शून्य था। अर्थात वराहमिहिर के कथनानुसार अश्विनी नक्षत्र के प्रथम बिन्दु से मेष राशि का आरम्भ स्थान माना जाता था जो अब बढ़ते-बढ़ते शून्य से २३° तक पहुंच गया है [ध्यान रहे अश्विनी का प्रथम बिन्दु शून्य माना गया है)। इससे सिद्ध होता है कि वराहमिहिर निश्चय ही ईसा की छटी शताब्दी के पूर्वार्द्ध में विद्यमान थे।

३—वराहमिहिर ने अनेक स्थलों पर सौर दिवस के प्रारम्भ के बारे में प्रसिद्ध

ज्योतिषी आर्यभट के मत का विरोध किया है:—

लङ्कार्धरात्रसमये दिनप्रवृत्ति
जगाद् चार्यभटः।
भूयः स एवं चार्कोदयात्प्रभृत्याह
लङ्कायाम् ॥
—पञ्चसिद्धान्तिका १५/२०

इससे सिद्ध होता है कि वराहमिहिर या तो आर्यभट के समकालीन थे और या फिर आर्यभट के पश्चात इनका समय होना चाहिए। आर्यभट ने अपने विषय में लिखा है कि कलियुग के ३६०० वर्ष व्यतीत होने पर मेरी आयु २३ वर्ष की थी। इससे स्पष्ट है कि आर्यभट का जन्म ४७५-४७६ ई० में हुआ था। अतः वराहमिहिर ४७५-७६ ई० से पूर्वकाल में कदापि विद्यमान नहीं हो सकते।

अब हम दूसरे मत वाले पक्ष के तर्कों का विवेचन करते हैं जो इस प्रकार है—

वराहमिहिर ने ४२७ शक का उल्लेख निश्चित हो किया है किन्तु यह तो कहीं भी स्पष्ट नहीं है कि यह शक शालिवाहन शक ही है। इसके अतिरिक्त शक काल वाले श्लोक में कहा गया है कि ४२७ शक की चैत्र शुक्ल प्रतिपदा बुधवार को थी। ज्योतिष के साधारण ज्ञान से यह मालूम होता है कि ४२७ शक की चैत्र शुक्ल प्रतिपदा बुधवार के स्थान पर सोमवार को थी। इस उलझन से छुटकारा पाने के लिए विद्वान लोग "सौम्य" के स्थान पर "सोम" वह कर अपने मत की पुष्टि कर देते है जो कि सरासर एक प्रमाण रहित तर्क है जिसे स्वीकार नहीं किया जा सकता।

इसके अतिरिक्त वराहमिहिर ने स्वयं २५२७ कलि (५७९ ई० पू०) में प्रारम्भ होने वाले एक अन्य शक काल का उल्लेख किया है :

आसन् मघासु मुनयः शासति
पृथ्वीं युधिष्ठिरे नृपतौ।
षड्द्विकपञ्चद्वियुतः
शककालस्तस्य राज्ञश्च ॥
—वृहत्संहिता १३ १३

उपरोक्त वर्णन के अनुसार ४२७ शक केवल १५२ ई० पू० ही हो सकता है (५०५ ई० नहीं) क्योंकि वराहमिहिर ने यह स्पष्ट नहीं किया कि उसने निश्चिय ही शालिवाहन शक को उद्धृत किया है। इस मत की पुष्टि इस लिए भी होती है क्योंकि प्रसिद्ध यूनानी खगोलवेत्ता हिपार्कस ने १६० ई० पू० में यूरोप में सर्व प्रथम सम्पात गति का वेधों के द्वारा अन्वेषण किया था। तभी से यवनों [यूनानियों द्वारा] ने प्रथम वार सम्पात गति को समझा थो। अतः वराहमिहिर ने १५२ ई० पू० काल को ही अहर्गन निकालने के लिए चुन लिया होगा क्योंकि वराहमिहिर यवन ज्योतिष के भी प्रकाण्ड विद्वान थे।

"आसन् मघासु मुनयः" की व्याख्या करने वाले प्रसिद्ध विद्वान भट्टोत्पल ने भी किसी अन्य शक का उल्लेख नहीं किया है। इसलिए यह उचित है कि "वृहज्जातक" की व्याख्या करते समय भट्टोत्पल द्वारा वर्णित उक्त व्याख्या के सम्पूर्ण होने का काल ८८८ शक वास्तव में ३१० ई० ही है। इस दशा में वराहमिहिर को ईसा की छटी शताब्दी में मान लेना विवेकहीनता ही होगा। अवन्ती [उज्जैन] का निवासी होने के कारण वराहमिहिर ने शायद विक्रम शक का उल्लेख ही किया हो। वराहमिहिर द्वारा वर्णित शक को शालिवाहन शक या विक्रम शक मान लेने के लिए हमारे पास कोई ठोस प्रमाण नहीं हैं।

बेशक वराहमिहिर ने यह स्वीकार किया है कि उसके काल में अयन की

गणना मकर एवं कर्क राशियों के प्रारम्भ से हुआ करती थी, किन्तु उसका यह अर्थ नहीं है कि सम्पात बिन्दु ही वहीं पर थे। यह सत्य है कि गत दो हजार वर्ष की ज्योतिष गणनाओं ने यह सिद्ध कर दिया है कि क्रान्तिपात एवं सम्पात बिन्दु प्रति वर्ष लगभग ५० विकला की गति से बढ़ते हैं। लेकिन इसके द्वारा इस निष्कर्ष पर पहुंच जाना एक जल्दी में दिया गया निर्णय ही होगा कि यह दोनों बिन्दु गति करते हुए २५००० वर्षों से एक चक्कर पूरा कर लेते हैं। सम्भव है कि मेष के प्रथम बिन्दु की गति किसी अन्य बिन्दु को झकोर रही हो जिसकी अपनी गति पीछे की ओर है। हिन्दू खगोलवेत्ताओं ने ऐसा विचार किया है चाहे वह गलत है या सही। इसकी सत्यता को देखने के लिए हजारों वर्ष तक प्रतीक्षा करनी होगी। फिर भी वराहमिहिर के श्लोक से यह बात तो निश्चित ही है कि उस काल में मेष का आरम्भ स्थान या बिंदु अश्विनी का प्रथम बिन्दु ही था।

अप्राप्य मकरमर्को विनिवृत्तो
हन्ति सापरां याम्याम्।
कर्कटकमसंप्राप्तो विनिवृत्त-
श्चोत्तरां सैन्द्रीम्॥

—बृहत्संहिता ३।४

उपरोक्त श्लोक की व्याख्या करते हुए भट्टोत्पल ने गर्ग का निम्न श्लोक उद्धृत किया है—

यदा निवर्ततेऽप्राप्तो धनिष्ठामुत्तरायणे।
आश्लेषां दक्षिणेऽप्राप्तस्तदा विन्द्या-
न्महद्भयम्॥

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि मकर का आरम्भ स्थान जैसा कि अब भी है प्रमाणित सम्पात बिन्दु था। इसका पीछे की ओर बढ़ना अशुभ फल का सूचक है तथा इसका आगे की ओर बढ़ना शुभ फल का सूचक। पीछे की ओर गति का फल अशुभ था एवं आगे की ओर गति का शुभ फल था।

वराहमिहिर एवं गर्ग के एक दूसरे के विपरीत विचारों से यही निष्कर्ष निकलता है कि मकर एवं श्रवण के आरम्भ स्थान दो भिन्न-भिन्न युगों के प्रमाणिक सम्पात बिन्दु रहे होंगे।

वराहमिहिर की तिथि का अन्तिम निर्णय करने से पूर्व शक संवत क्या है, इस के सम्बन्ध में जानना वान्छनीय होगा, क्योंकि भारतवर्ष के इतिहास में साधारण रूप से और मुख्यतः होरा शास्त्र (बृह-ज्जातक) के रचियता श्री वराहमिहिर की तिथि निश्चित करने हेतु, यह एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

भारतवर्ष के इतिहास में शक संवत सबसे पेचिदा समस्याओं में एक है। पाश्चात्य विद्ववान इस तथ्य को सन्देह से परे मानते हैं और उनका विश्वास है कि शक संवत ७८ ई० में आरम्भ हुआ था। इसमें कोई संदेह नहीं की कोई एक शक संवत ७८ ई० में आरम्भ हुआ था, परन्तु यह समझना वास्तव में कठिन है, कि क्यों समस्त आन्तरिक प्रमाणों की अवेहलना की जाती है तथा विदेशी प्रमाण भारत के इतिहास निर्माण हेतु गढ़े जाते हैं। यदि ऐतिहासिक अन्वेषण हिन्दुओं के धर्म ग्रन्थों में से किये जायें तो शकों की जो उनमें परिभाषायें दी गई हैं उनको केवल इसलिये मूर्खतापूर्ण कहकर रद्द कर दिया जाये कि एक पूर्व नियोजित सिद्धान्त के अनुसार धर्म ग्रन्थों के शक इन्डो साईथीयन के समान है तथा जो उसी नाम से जाने जाते थे, जैसे कि भारत को भारतवर्ष कहा जाता है यद्यपि यह धर्म ग्रन्थों के भारतवर्ष के अनुरुप नहीं है।

कोई व्यक्ति इस तथ्य से इन्कार नहीं कर सकता कि एक इतिहास के अन्वेषण कर्त्ता के लिये खगोल विद्या का ज्ञान अनिवार्य है क्योंकि खगोल विद्या सम्बन्धी आंकड़े बहुदा प्रमाण के रुप में प्रयोग किये जातें हैं। इस प्रकार से यदि इतिहास का निर्माण उन धर्म ग्रन्थों में से किया जाता है जो ऐतिहासिक एवं भौगोलिक होने के स्थान पर अधिक दार्शनिक एव धार्मिक हैं तो पुरानों का सही ज्ञान अनिवार्य है।

मुख्य आन्तरिक प्रमाण हिन्दुओं के संकल्प द्वारा प्रदान किया जाता है, जो निम्न हैं

**"अद्य ब्रह्मणः द्वितीयपरार्धे श्री श्वेत-वराहकल्पे वैवस्वतमन्वन्तरे अष्टाविंशतिमे कलियुगे प्रथमे पादे जम्बूद्वीपे भारतवर्षे भरतखण्डे मेरोः दक्षिणेः पार्श्वे शकाब्दे अस्मिन्वर्तमाने व्यावहारिके प्रभवादीनां षष्टयाः संवत्सराणां मध्ये·····।"**

इसमें सर्व प्रथम समय दिया जाता है और फिर स्थान जम्बू दीप के आरम्भ के साथ दिया जाता है। शकाब्द के आरम्भ के साथ समय का भी उल्लेख किया गया है जो शकाब्द व्यावहारिक शब्द के बाद आता हैं। यदि संकल्प निरन्तर जारी रहते तो कोई भी सही समय बता सकता था। उदाहरणतः

**विभववर्षे दक्षिणायने वर्षाऋतौ सिंह मासे (या भाद्रपद मासे) शुक्ल पक्षे पञ्चम्यां शुभतिथौ भृगुवासरयुक्तायां रेवतीनक्षत्र युक्तायाम्·····।**

यह कर्मकांड में किये जाने के वास्तविक स्थान का वर्णन करता है। समये एवं स्थान दो अनुभागों में क्यों दिये जाते हैं। वह शब्द व्यवहारिक के द्वारा क्यों अलग किये जाते हैं अतः क्या यह विचार करना तर्क संगत नहीं होगा कि स्थान जो आरम्भ में दिये जाते है वह पारमार्थिक है तथा जो बाद में हैं वह व्यवहारिक ? शब्द शकाब्द परमार्थिक समय से नहीं चलता है परन्तु फिर भी यह व्यवहारिक शब्द से पूर्व आता है तो क्या इसे अर्ध व्यवहारिक और अर्ध-पारमार्थिक समय से अंकित नहीं किया जाना चाहिए। वास्तव में शक व्यवहारिक तथा परमार्थिक के बीच जोड़ने वाली और व्यवहारिक और पर-मार्थिक स्तरों को विभाजित करने वाली कड़ी है।

इतिहास के वर्तमान उच्च वैज्ञानिक अन्वेषण कर्त्ताओं में यह मुख्य दोष है कि वह मान लेते है अथवा निष्कर्ष निकाल लेते हैं कि वह भाग जो उनकी समझ में नहीं आता वह बाद में क्षेपक भरे गये हैं। जबकि यह सत्य है कि धर्म ग्रन्थ भी इस बात से अछूते नहीं है कि वह पूर्व विचार किये गये सिद्धान्तों के अनुसार पाठ में भी परिवर्तन कर लेते थे परन्तु इसके लिये उनको पहले से सही मार्ग अपनाना चाहिये था और जानना चाहिये था कि शक का अर्थ क्या है। श्री रामायण कहती है कि यवन इसलिये कहलातें हैं कि इनका जन्म काम धेनु की योनी से होता है और शक का नाम इसलिये पड़ा क्योंकि वह शकृद्देश (गुदा) से उत्पन्न हुए। हमें पूर्ण विश्वास है कि म्लेच्छ बालों की जड़ों से उत्पन्न हुये हैं।

**योनिदेशाच्च यवनाः**
**शकृद्देशाच्छकाः स्मृताः।**
**रोमकूपेषु च म्लेच्छा**
**हारिताः सकिरातका॥**
—रामायण बालकाण्ड

योनि देश और शकृद्देश, मूलाधार के निकट न केवल आध्यात्मिक सम्बन्ध का

सूचक है बल्कि इसकी शुद्धिकरण की प्रकृति योग का विषय नहीं क्योंकि गोबर तथा मूत्र केवल शूद्ध करते है और वह भोजन नहीं है। अतः शक वह हैं जो अपने शरीर के शुद्धिकरण का प्रयत्न करते हैं और जो मूलाधार के निकट होने के कारण योनि नहीं बन पाये है। वह धीरे-धीरे वासनाओं से छुटकारा पाकर अपने को शुद्ध करना चाहते है। म्लेच्छ जो बालों की जड़ों से उत्पन्न हुए थे, कर्म योग से बहुत दूर होते हुए केवल पुण्य कर्मों को ही सब कुछ मानते हैं। जैसा म्लेच्छ शब्द अर्थात म्लान इच्छा अर्थात व्यवहारिक संसार के समस्त शारीरिक आनन्दों अथवा भोगों से जाना जाता है। यह स्मरण रहना चाहिये कि धर्म ग्रन्थों में वर्णन किये गये समस्त दुष्ट पुरुष, पुण्य कर्मो के क्षेत्र में ही आते हैं, अतः हम उन्हें साधारण बुरे पुरुषों के समान नहीं मान सकते। धर्म ग्रन्थों को पुण्य कर्मों के स्तर से निम्न किसी वस्तु से कोई सरोकार नहीं जो कि कर्म योग के छोटे सम्बन्धी मात्र हैं। अतः यह प्रमाणित होता है कि शकाब्द अर्थ आध्यात्मिक तथा अर्द्ध व्यवहारिक है जो पुण्यकर्मों का शुद्धिकरण करता है और इसकी संकल्प में उपस्थिति सर्वथा उचित है। अतः शक का आध्यात्मिक युग के अतिरिक्त कोई अर्थ नहीं।

रीति रिवाजों के अनुसार कलियुग के छहः राजाओं को पारमार्थिक युग अर्थात शक का संस्थापक माना है वह हैं:—युधिष्ठिर विक्रमादित्य, शालिवाहन, विज्याभिनन्दा, नागार्जुन और क्लकी। इनमें से तीन का अस्तित्व ही नहीं रहा और शेष तीन ने अभी प्रारम्भ होना है।

## पाण्डवाब्द एवं कलियुग

उक्त विभिन्न शकाब्दों में से युधिष्ठिर सर्व प्रथम है। यह कलियुग से एक वर्ष पूर्व प्रारम्भ हुआ माना जाता है जो प्राचीन खगोल विद्या के ग्रन्थों के अनुसार ३१०२ ई० पू० में सोर चैत्र की तृतीया को आरम्भ हुआ था। द्वितीय अर्थात विक्रमादित्य संवत भारत वर्ष के कुछ भागों में ईसा पूर्व ५८ वर्ष के कार्तिक मास से तथा एक भाग में चैत्र मास से प्रारम्भ हुआ माना जाता है। तृतीय शक शालीवाहन शकाब्द है जो ७८ ई० में चैत्र मास से प्रारम्भ होता है। अन्य तीन का अभी जन्म होना है अतः हमें उनसे कोई सरोकार नहीं।

हिन्दू पुराणों में यह वर्णन आता है कि ब्रह्मा, जो इस संसार का जन्मदाता है एक गणना के अनुसार उसका काल सौ वर्ष तक का है जबकि उसका एक दिन एक कल्प के बराबर होता है। ब्रह्मा के एक दिन और रात में तीन लोकों का कोई अस्तित्व नहीं रह जाता है।

कल्प, जिसमें यथाक्रम १००० चतुर्युग (तीन लाख का अर्थात महायुग हैं) चौदह मन्वन्तरों में विभाजित किया गया है। प्रत्येक महायुग में चार युग होते हैं जिसमें सतयुग $४३२ \times १०^{३} \times ४$ वर्षों का, त्रेता युग $४३२ \times १०^{३} \times ३$ वर्षों का, द्वापर युग $४३२ \times १०^{३} \times २$ वर्षों का और कलियुग $४३२ \times १०^{३}$ वर्षों का होता है। प्रत्येक मनु का समय मन्वन्तरों के नाम से प्रसिद्ध है और पुराणों के अनुसार वर्तमान कलियुग श्वेतवराह कल्प के वैवस्वत के २८वें मन्वन्तर (सातवें मनु) में है।

प्रत्येक मन्वन्तर और युग के प्रारम्भ होने का सही समय धर्म ग्रन्थों में वर्णित है। कृतयुग (सतयुग) कार्तिक शुक्ल नवमी बुधवार, श्रवण नक्षत्र एव बृद्धि योग में प्रथम याम में आरम्भ होता है। त्रेतायुग बैशाख शुक्ल तृतिया सोमवार, रोहिणी

नक्षत्र एवं शोभन योग में द्वितीय याम में प्रारम्भ होता है द्वापर युग माघ कृष्ण ३० (अमावस्या) शुक्रवार, श्रविष्ठा नक्षत्र एवं वरियान योग में तृतीय याम में प्रारम्भ होता है। कलियुग भाद्र कृष्णा त्र्योदसी रविवार, कृतिका नक्षत्र एवं व्यतीपात योग में मध्य रात्रि के समय प्रारम्भ होता है। इनमें प्रथम तीन युगों के आरम्भ काल चाहे सत्य हैं और चाहे मिथ्या हैं, खगोल शास्त्रियों को भ्रम में नहीं डाल सकता। जबकि कलियुग के आरम्भ के दिये गये आंकड़े कुछ अट-पटे अवश्य हैं। यदि हम यह मानते हैं कि कलियुग भाद्रपद कृष्ण त्र्योदशी से आरम्भ होता है तब कृतिका नक्षत्र और व्यतीपात योग का होना असम्भव है। परन्तु प्रत्येक पंचाङ्ग में हम देखते हैं कि कलियुग का आरम्भ भाद्रपद कृष्ण त्र्योदसी को ही अंकित किया होता है। एक दूसरी गणना के अनुसार कलियुग का आरम्भ मेषमास (सौर वैशाख) प्रविष्टे ३ को प्रातः साढ़े आठ बजे के लगभग अमावस्या के समाप्त होने पर होता है। इस प्रकार से मेष मास (सौर वैशाख) प्रविष्टे १ चैत्र कृष्ण त्र्योदशी के दिन पड़ता है। अतः यह कहा जा सकता है कि सौर गणना के अनुसार चैत्र कृष्ण त्र्योदसी को कलियुग का आरम्भ होता है। कलियुग के इन दोनों आरम्भ कालों को सम्मिलित करने से ऐसा विश्वास करने में कोई संदेह नहीं रह जाता कि इन दोनों कालों में (भाद्रपद कृष्ण त्र्योदसी एवं चैत्र कृष्ण त्र्योद्रसी) केवल आठ महीनों का मध्यान्तर है। इस उलझन का उत्पन्न होना स्वभाविक है। अतः दो प्रकार के आंकड़े कलियुग के आरम्भ काल के संबन्ध में सम्मिलित किये गये थे। यह बाद में बतलाया जायेगा कि दोनों कालों को आपस में कैसे मिलाया गया।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण से वर्ष सौर चैत्र मास से प्रारम्भ होता है। यह भी विश्वास किया जाता है कि श्री राम ने चैत्र मास में जन्म लिया था अतः इसलिए भी वर्ष का प्रारम्भ चैत्र से माना जाता है। यह मानते हुए कि महाभारत एक ऐतिहासिक ग्रन्थ है, इस बात का अनुमान लगाना सरल प्रतीत होता है कि युधिष्ठिर ने किस समय अपना शकाब्द प्रारम्भ किया। युधिष्ठिर जानता था कि श्री कृष्ण परमात्मा हैं और उनकी कृपा से ही उसने महायुद्ध में विजय प्राप्त की है और उन्होंने श्रावण कृष्णाष्टमी को मध्यरात्रि के समय रोहिणी नक्षत्र में अपने पावन चरणों से इस संसार को पवित्र किया है अर्थात अवतार लिया है। अतः क्या यह आशा करना स्वभाविक नहीं कि युधिष्ठिर ने श्री कृष्ण के जन्म दिवस के एक दो दिन बाद अर्थात किसी सिंह मास (सौर भाद्रपद) प्रविष्टे १ को ३१०३ ई० पू० (कलियुग शुरू होने से ८ मास पूर्व) में अपना संवत प्रारम्भ किया होगा। इसे ही विंध्याचल के उत्तर के निवासी भाद्रपद कृष्णाष्टमी के दिन मनाते हैं जो कृतिका नक्षत्र से युक्त होती है (जबकि रात्रि को रोहिणी नक्षत्र हो जाता है)। क्या यह भाद्रपद नामक पांचवां महीना पाण्डवाब्द का ही सूचक नहीं है (पांण्डव को पांच के अंक के संकेत में भी प्रयोग किया जाता है।)

परन्तु यह समिश्रण व्यतीपात योग को स्वीकार नहीं करता। उत्तर भारत की बार्हस्पत्य गणना के अनुसार सिंह मास (सौर भाद्रपद) प्रविष्टे १ भाद्रपद कृष्णाष्टमी के निकट था, लेकिन चान्द्र गणना के अनुसार यह भाद्रपद कृष्णाष्टमी जिसे सिंहकृष्णाष्टमी भी कहते हैं, व्यतीपात योग से युक्त होकर सिंह मास (सौर भाद्रपद) के अन्तिम दिन में पड़ती

है या उस से कुछ दिन पूर्व वाले रविवार के दिन आती है। अतः उस वर्ष कृष्णाष्टमी सौर महीने के आरम्भ में या अन्त में हो सकती है या जिस किसी भी दिन युधिष्ठिर (यदि वह ऐतिहासिक पुरुष है) ने इसका अनुष्ठान किया। वर्तमान समय में यदि ऐसा होता है तो इस पर विवाद होना स्वाभाविक है और कुछ व्यक्ति निश्चित ही इसे पूर्व वाली श्रावण कृष्णाष्टमी मानेंगे जबकि अन्य लोग इसे बाद वाली सिंह कृष्णाष्टमी मानेंगे। यह स्वीकार किया जाएगा कि युधिष्ठिर ने सिंह मास (सौर भाद्रपद) प्रविष्टे १ (जो श्रावण कृष्णाष्टमी के दिन था जब कलियुग का प्रारम्भ हुआ था किन्तु श्री कृष्ण की उपस्थिति के कारण वह अपना प्रभाव न जमा सका जिसका उल्लेख श्री मद्भागवत पुराण के बारहवें स्कन्ध के द्वितीय अध्याय के तीसवें श्लोक में किया गया है : **"यावत्सपादपद्माभ्यां स्पृशन्नास्ते रमापतिः। तावत्कलिर्वै पृथिवीं पराक्रान्तुं न चाशक्त्।"**) को अपना सम्वत् शुरू किया।

लेकिन सौर एवं कल्प के समाधान के कारण कलियुग का प्रारम्भ सौर वैशाख प्रविष्टे १ को एवं चान्द्र समाधान से सौर वैशाख प्रविष्टे ३ को होने लग गया जब कि इन दोनों प्रारम्भिक कालों (वैशाख से भाद्रपद मास तक) को युग परिवर्तन का काल माना जाता है। सिंह मास (सौर भाद्रपद) प्रविष्टे १ को शुरू होने वाला संवत, कलियुग का पाण्डवाब्द है जबकि मेष मास (सौर वैशाख) प्रविष्टे १ को आरम्भ होने वाला संवत खगोलीय कलियुग संवत है।

**वराहमिहिर ने २५२७ की संख्या का ही क्यों उल्लेख किया है ?**

हिन्दुओं के प्राचीन ज्योतिर्विज्ञान के अनुसार एक सौर वर्ष में चन्द्रमा राशि मण्डल के तेरह चक्कर लगाने के बाद राशि मण्डल के ४.४२५८३ वें भाग तक पहुंच पाता है। उन्नीस वर्ष में चन्द्रमा की मध्यम स्थिति राशि मण्डल के .०९ भाग तक पहुंचने की हो जाती है अर्थात व्यवहारिक दृष्टिकोण से चन्द्रमा पूर्व स्थिति में ही आ जाता है। उन्नीस वर्ष में राशि के .०९ वें भाग में पहुंचने वाला अन्तर क्रमशः बढ़ता ही चला जाता है जब तक कि चन्द्रमा १३३ चक्कर पूर्ण करके पुनः राशि के .०८ वें भाग में पहुंचता है, अर्थात चन्द्र को पूर्व स्थिति में आने के लिए १९×१३३ अर्थात २५२७ वर्ष का समय लगता है। २५२७ वर्ष, का यह काल Chaldaen Saros अर्थात दो ग्रहणों के मध्य का समय (अठारह वर्ष, ग्यारह दिन एवं आठ घंटे) के समान है। सम्भवतः हिन्दू खगोल शास्त्रियों ने इसे शक नाम से पुकारा हो और इसी शक के २५२७ वर्ष बाद शुरू होने वाले युग को शकाब्द कह कर सम्बोधित किया गया हो।

पाण्डवाब्द और कलियुग साथ-साथ चलते माने जाते हैं ; अतः यह स्वभाविक ही है कि २५२७ कलियुग (कलिसंवत) के सौर भाद्रपद प्रविष्टे १ को पाण्डवाब्द के २५२७ वर्ष व्यतीत हो चुके होंगे। इसलिए कृष्णाष्टमी मास के प्रथम अथवा अन्तिम दिन के निकट पड़ी होगी। शायद किसी विवाद के खड़े हो जाने के कारण कुछ एक ने इस मास के प्रथम दिवस से तथा कुछ एक ने मास के अन्तिम दिवस से इस संवत को शुरू किया हो। यह भी हो सकता है कुछ एक ने इस संवत को सौर भाद्रपद प्रविष्टे १ को तथा कुछ एक ने सौर भाद्रपद के अन्तिम प्रविष्टे से

अर्थात सौर आश्विन के प्रथम दिवस से ही शुरु हुआ मान लिया हो। इस प्रकार से पाण्डवाब्द का स्थापन या पुर्नस्थापन हुआ और तब से एक शक अर्थात २५२७ वर्ष समाप्त होने पर वह संवत पाण्डवशकाब्द या साधारण शकाब्द के नाम से प्रसिद्ध हो गया। यह पाण्डवशकाब्द वही शकाब्द है जिसका उल्लेख "वृहत्संहिता में आचार्य वराहमिहिर ने किया है—

आसन मघासु मुनियः शासति
पृथ्वीं युधिष्ठिरे नृपतौ।
षड्द्विकपञ्चद्वियुतः
शककालस्तस्य राज्ञश्च ॥

**विक्रमशकाब्द एवं शालिवाहनशकाब्द**

इससे आगामी विचारणीय विक्रमशकाब्द है जो ५६ ★ ई० पू० में सौर चैत्र मास में आरम्भ हुआ था। शक संवत की स्थापना के पश्चात खगोल विद्या का विकास एक विज्ञान के रूप में बहुत ज्यादा हो चुका था और तभी वर्ष का आरम्भ चैत्र मास में करने की आवश्यकता अनुभव की गयी। यह भी निश्चित है कि रोम देश निवासी भी इसी पद्धति को अपना रहे थे और जूलियस सीजर ने ४६ ई० पू० में दो मास की कमी का सुधार करके सन् ४५ ई० पू० को ऐसे समय में आरम्भ किया कि आईडस आफ मार्च (Ides of March) और बसन्त सम्पात, विक्रमाब्द में एक ही समय पर पड़ें।—हिन्दू वर्ष का मान $365\frac{1}{4}$ दिनों से थोड़ा अधिक है जब कि ग्रेगोरियन वर्ष का मान $365\frac{1}{4}$ दिनों से कुछ कम हैं।

इस प्रकार से इन दोनों वर्षों के मध्य एक शताब्दी में १.४ दिन का अन्तर पड़ जाने से बीस शताब्दियों में Ides of March (आईडज ऑफ मार्च) २८ दिन आगे खिसक गया। पोप ग्रेगोरी ने जूलियन कैलेण्डर के दोष संशोधन करने में ठीक किया है अथवा गलत किया है, इस विषय का इस समय विवेचन करना कठिन है। यहां इतना कह देना ही पर्याप्त होगा कि जूलियन कैलेण्डर का मूलाधार विक्रमशकाब्द ही है। विक्रमशकाब्द की जड़ें इतनी गहरी हो गयी थीं कि इसने उत्तर में पाण्डवाब्द को एक प्रकार से समाप्त ही कर दिया। फिर भी उत्तरीय भारत में कुछ स्थानों पर देखा गया है कि यहां के लोग इसको (विक्रमाब्द) को अपनाने में इतने इच्छुक नहीं थे और इन्होंने इसे कार्तिक मास में अपने महान पर्व दीपावली के पश्चात प्रारम्भ किया। विक्रमाब्द समस्त भारत में फैल गया, परन्तु वह दक्षिण भारत में न जम सका और वहां इसके सफल विरोधी शालिवाहन शकाब्द (इसका प्रारम्भ सन् ७८ ई० में अर्थात विक्रमाब्द के १३५ वर्ष बाद हुआ था) ने इसे खदेड़ दिया। इतिहासकार हमें विश्वास दिलाते हैं कि शालिवाहन शकाब्द का संस्थापक आंध्र प्रदेश का एक द्रविड़ सम्राट था जिसने उत्तर भारत को अपने प्रभाव में कर लिया था। उत्तर भारत में शालिवाहन का संवत अधिक देर तक न जम सका, ठीक जिस प्रकार से दक्षिण भारत में विक्रम संवत अपना प्रभुत्व न जमा सका। अतः एक सुनहरा अवसर निकल गया और यह निश्चित किया गया कि विंध्याचल के उत्तर में बार्हस्पत्य मान के अनुसार विक्रमाब्द का अनुकरण होना चाहिए एवं विंध्याचल के दक्षिण में चान्द्र मान के

---

* विक्रम संवत (विक्रमशकाब्द) ईस्वी सन् से ५७ वर्ष बड़ा है अर्थात विक्रम संवत ५७ ई० पू० में प्रारम्भ हुआ था। —सम्पादक

अनुसार शालिवाहनाब्द का प्रयोग किया जाना चाहिए।

## आधुनिक कोलम संवत ही वराहमिहिर का शक काल है

ऐसा प्रतीत होता है कि इन परिवर्तनों का केरल में कोई प्रभाव नहीं पड़ा। समस्त भारतवर्ष के २५२७ पाण्डव-शकाब्द में केरल में कलि संवत को अपनाया गया। जैसा कि अब भी होता है, वर्ष लिखने में शताब्दियों के अङ्क तो छोड़ दिये गए और केवल दहाई एवं इकाई के अङ्कों का ही प्रयोग होता रहा। नब्बे वर्षों में जब तीन पीढ़ियां बीत गयीं तब शताब्दी वाले भाग विस्मृत कर दिये होंगे, विशेषकर जबकि उन दिनों में टाँकने की कोई प्रथा नहीं थी जिसके परिणाम स्वरूप प्रत्येक शताब्दि १ या १०१ से आरम्भ होती थी तथा १०० पर समाप्त होकर पुनः १०१ पर शुरू होती थी किन्तु पन्द्रह शताब्दियां व्यतीत होने पर सोलहवीं शताब्दि १०१ से शुरू होकर २०० पर समाप्त हुई और तब से शताब्दियों को भी जोड़ा जाने लगा।

२५२७ कलि संवत में जब शाका युग की स्थापना हुई जैसा कि ऊपर वर्णन किया किया गया है कि कृष्णाष्टमी दिवस सिंह मास (सौर भाद्रपद) के शुरू या अन्त के दिनों में पड़ती है। इसी कारण दक्षिण केरल के निवासी कृष्णाष्टमी को सिंह मास के शुरू में मानकर वर्ष का प्रारम्भ इसी दिन करते थे जब कि उत्तरीय केरल के निवासी कृष्णाष्टमी को सिंह मास के अन्त में मानकर वर्ष का प्रारम्भ इसी दिन अर्थात कन्या मास (सौर आश्विन) के प्रथम दिन से करते थे।

तमिल-नाड एवं मालाबार को छोड़ कर समस्त स्थानों पर काल गणना चान्द्र रीति के अनुसार की जाती है जबकि तमिल-नाड में चान्द्र-सौर रीति के अनुसार एवं मालाबार में सौर रीति के अनुसार की जाती है। अतः यह कहना गलत न होगा कि दक्षिणी मालाबार में सिंह मास (सौर भाद्रपद) के प्रथम दिवस से एवं उत्तरीय मालाबार में कन्या मास (सौर आश्विन) के प्रथम दिवस से प्रारम्भ होने वाला कोलम अण्ड् वास्तव में शाका संवत ही है जो २५२७ कलि में कुछ शताब्दियों को छोड़कर शुरू हुआ था। स्व० प्रो० पी सुन्दरम् पिल्लाई ही एक ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने सर्व प्रथम यह बताया कि शताब्दियों के अंक को छोड़कर वर्तमान कोलम संवत ही वास्तविक कोलम संवत है। ट्रांवनकोर शिक्षा सेवा से अवकाश प्राप्त श्री के० सुब्रह्मण्यम अय्यर का यह सुझाव है कि वर्तमान कोलम संवत शताब्दियों के अङ्क को छोड़कर परशुराम संवत है क्योंकि केरल को उपनिवेश बनाने वाले परशुरान एवं उनके अनुयायी ही थे। लेकिन मैं यह विश्वास करने पर बाध्य हूं कि कोलम संवत ही वास्तव में २५२७ कलि में शुरू होने वाला शक काल है और तब से सिंह-कन्या के विवाद का समाधान भी सरलता से कर दिया गया है।

अतः जब २५२७ कलि (५७९ ई० पू०) में आरम्भ होने वाली शाका "बृहत्संहिता" में वर्णित शक काल है तब "पञ्चसिद्धान्तिका" में वर्णित ४२७ शाका (१५२ ई० पू०) के आधार पर हम वराहमिहिर का काल ईसा की छटी शताब्दि में कैसे सिद्ध कर सकते हैं।

# वराहमिहिर का काल

खगोल विज्ञान, ज्योतिर्विज्ञान और प्राकृतिक विज्ञान के महान लेखकों में वराह-मिहिर एक थे। वास्तव में उनकी कृतियों का पाठन करने वाले पाठक ऐसे महान व्यक्तित्व का समय जानने के इच्छुक होंगे, कब और किसकी संरक्षणता में वह फले-फूले तथा किसकी देख-रेख में अथाह ज्योति-विज्ञानीय ज्ञान की गहराइयों में उन्होंने गोता लगाया। उनका स्वार्थरहित परिश्रम, ज्योतिर्विज्ञान तथा खगोल विज्ञान के शोध क्षेत्र में वर्तमान पीढ़ी के लिये अमूल्य सिद्ध हो रहा है। प्राचीन महर्षियों द्वारा संग्रहीत, वराहमिहिर द्वारा शोधित ज्ञान की शाखाओं में नि.सन्देह महानतम ज्ञान-विज्ञान के भन्डार की खानें विद्यमान हैं। परन्तु वे अथाह महा सागर हैं जिससे साधारण पाठक गण उन पर दृष्टिपात करते ही हतोत्साह हो जाते हैं और अध्ययन त्याग देते हैं। ज्योतिर्विज्ञान, खगोल विज्ञान तथा अन्य समानोदक विज्ञानों के विषय में प्राचीनतम कार्यों का अध्ययन करके वराहमिहिर कहते हैं कि "वह सावधानी पूर्वक विषय का चयन करेंगे, विषय को सुन्दर सूक्ष्म एवं यथा-सम्भव अलाकंकारिक ढंग से विचित्रता के साथ वर्णन करेंगे जिसमें विचारशील मस्तिष्कों के लिये तो गम्भीर अभिप्राय निहित हो और ज्योतिर्विज्ञान के महासागर का पार पाने वाले जिज्ञासुओं के लिये जो एक प्रकार की वैज्ञानिक किश्ती के समान होगा, ऐसा मार्ग प्रस्तुत करूंगा।" उनका यह कथन पूर्णतः सत्य है जो उनके कार्यों अथवा कृतियों के किसी भी शिक्षार्थी को स्पष्ट है।

"ऐस्ट्रालोजीकल मैगजीन" के प्रसिद्ध संस्थापक स्वर्गीय प्रोफेसर बी० सूर्यनारायण रॉव के अतिरिक्त किसी भारतीय लेखक ने इस महान व्यक्ति के यथार्थ जीवन काल को जानने का प्रयत्न नहीं किया। भारतीय विषयों की काल-निर्णय-विद्या की शोधों में अनुराग रखने के लिये यूरोप वालों को यद्यपि श्रेय दिया जा सकता है, तो भी वे जातीय तथा राजनैतिक पक्षपातों से रंगे हुए हैं। वे वास्तविकता को अस्वीकार करने तथा स्वयं की कल्पनाओं को कृतार्थ करने को सर्वदा तैयार हैं। आत्माभिमान तथा पक्षपात, आधुनिक बहुत से लेखकों के लिये अहितकर रहे हैं। इस प्रकार के पुरातन आचार्यों के विरूद्ध तीव्र आक्षेपों द्वारा अपनी प्रस्तावनाओं का आरम्भ करते हैं और और उनके कार्यों का परीक्षण सदैव अपनी निश्चित धारणाओं के अनुरूप ही करते हैं। ऐसी दुर्बल आलोचनायें दम्भ, द्वेष तथा नीचता के चिन्हों को पैदा करती हैं। आज भी कुछ एक ऐसे विद्वान हैं जिनकी रूचि केवल यह विचारने में है कि हिन्दुओं ने अपना सम्पूर्ण विज्ञान, कला साहित्य और दर्शन को ग्रीस वालों से ही सीखा है और इनकी प्राचीनता को एक या दो सहस्त्र वर्ष ई० पू० नहीं रखा जा सकता। कुछ एक आधुनिक खगोल वेत्ता दुर्बल तथ्यों के साथ यह स्वीकार करते हैं कि

हिन्दुओं ने खगोल विज्ञान ग्रीकों से लिया है और इन सरीखे खगोल विज्ञान के अनभिज्ञ विद्वान जो यह कहते के कि सूर्य एक रक्त--वर्ण लोहे की गेंद है जो आकाश में "पेलोपोन्नेसियन" तथा कुछ अन्य पर्वतों के मध्य टंगा हुआ है। उनकी अनभिज्ञता क्षम्य है। ज्ञान के स्वेच्छाचारी विकार के लिये हम सहानुभूति नहीं दिखा सकते हैं। पृथवी को वर्तमान आकृति में परिवर्तित हुए केवल ८ या ९ सहस्त्र वर्ष ही बीते हैं, इस प्रकार के अपक्व विचारों को बाइबिल सम्बन्धी लेखक सरलता से निगल सकते थे क्योंकि उनका विज्ञान सम्बन्धी ज्ञान बहुत ही अल्प था। परन्तु वह हिन्दू ज्ञान तथा आधुनिक वैज्ञानिक शोधों के सामने टिक नहीं सकते हैं। भूगर्भ वेत्ता पृथवी की वर्तमान आकृति को ५ से ६ करोड़ वर्ष पुरानी बताते हैं जबकि भारतीय खगोल वेत्ताओं ने $1950 \times 10^6$ तथा विषम वर्षों को प्रतिपादित किया है।

भारतीय विद्याओं की यथार्थता स्वीकार करने में अन्य यूरोपीय विद्वानों की अपेक्षा कुछ ब्रिटिश विद्वान अधिक असहनशील मालूम पड़ते हैं। कुछ प्राच्यविद्या के विद्वानों के अनुसार वेद व्यास के पुराणों का समय १५०० या १६०० ई० पू० है। हिन्दु संस्कृति की प्राचीनता को स्वीकार करने में वे हिचकिचाते हैं। श्री मार्शमन ने रामायण-काल को महाभारत-काल के पश्चात रखा है क्योंकि उन्होंने रामायण में एक पद पाया है जो इस प्रकार है: "रामो भीमः पराक्रम्। "उन्होंने संस्कृत भाषा में 'भीम' शब्द का अर्थ 'भयंकर' न जानने के कारण 'भीम' शब्द को महाभारत में वर्णित 'भीम' से जोड़ दिया और अनुमान लगाया कि महाभारत काल सम्भवतः रामायण काल से पहले हुआ हो। कर्नल टाड ने श्रीकृष्ण तथा अन्य यादवों को हरकुलिस से तथा अत्रि को ऐट्रियस से सम्बन्धित किया है। दूसरे विध्न कारकों ने राम को रोमुलस का वंशज बनाना चाहा। वे यह सिद्ध करना चाहेंगे कि महाभारत के योद्धाओं ने युद्ध विद्या मैसीडोन के सिकन्दर के संरक्षण में सीखी और इस प्रकार महान भारतीयों की प्राचीनता के गौरव को अवरुद्ध करना चाहेंगे। भाग्यवश अथवा अभाग्यवश उनमें भारतीय प्राचीनता के प्रति आकस्मिक प्रतिक्रिया हुई। कुछ यूरोपियों ने इन काल क्रमीय मिथयाओं में, जिनमें उनके साथी बन्धु भटके हुये थे विवेक हीनता को देखा। वे कुलीनता पूर्वक अपने कर्तव्य तक पहुंचे, जिसके लिये वे अपने जीवन के ऋणी थे, और अशुद्धियों को खोजना प्रारम्भ किया। गणितीय त्रुटियां तो और भी बढ़कर थीं। प्रारम्भ में उनको उन तिथियों के लिये जो सम्पूर्ण भारतवर्ष तथा सम्बन्धित प्रान्तों में पाये गये अव्यवस्थित अभिलेखों पर अंकित थीं, तथा जिन पर स्पष्ट रूप से वृतान्तों के उल्लेख थे जिनका विरोध नहीं किया जा सकता था, अरुचिपूर्ण नेत्र खोलने पड़े। पच्चीस वर्षों से अधिक समय के लिये मैसूर में पुरातत्व-शोधों के अध्यक्ष, श्री लुई राइस काल क्रम की निराशाजनक त्रुटियों में फंस गये। **उनका विरोध शिमोगा में ब्राह्मणों द्वारा प्राप्त उन ताम्रलेखों से हुआ जिनमें महाराजा जन्मेजय द्वारा सर्प-यज्ञ के समय दान में दी गई कुछ एक निश्चित जागीरों का वर्णन है।** राजा जनमेजय के सर्प यज्ञ के ससय ब्राह्मणों को दान में दी हुई भूमि कठिन अव्यवस्था में पड़ गयी और शक्तिशाली होयसल नरेश वल्लभ वित्ति देव या विष्णुवर्धन (११०४-११५१ ई०) ने अव्यवस्थाओं को नियमानुसार किया तथा पाण्डव नरेश जनमेजय के प्रति सत्कार प्रदर्शित करने के लिये जागीरें पुनः आरम्भ की। महान अद्वैत

दार्शनिक शंकर के ११ शताब्दी पश्चात रामानुजाचार्य हुए जिन्होंने बित्ति देव को जैन से वैष्णव बनाया और उच्च स्तर पर वैलूर में मंदिर का पुनरुत्थान किया। ये सभी वेदों, पुराणों आदि के प्रभाव को मानते थे। श्री लुई राइस मूल शिला लेखों को पढ़ने में पूर्ण असमर्थ थे। स्पष्ट रूपों में कलि वर्ष १११ और ८९ अंकित ताम्र पत्र शिला लेखों को बेढ़ंगी जालसाजी कहने के लिये हास्य युक्ति को अपनाया और अपने अनुसार इसे बाद की तिथियों से सम्बन्धित किया। यह भूलकर कि वह अपने आप और अधिक बेढ़ंगे बन गये हैं।

भूल इस प्रकार है:

**"तुङ्ग भद्रा हरिद्रासंगम् श्री हरिहर देव सन्निदौ। कटकमुत्कालितं चैत्र मासे कृष्ण पक्षे सोम दिने भरणी महा नक्षत्रे ॥"**

(शिला लेख १८३, पेज ६३, स्पीग्राफिया कर्नाटिका, बाई लुई राइस शिमोगा जिला, पुस्तक २)

अनुवाद करने पर इसका अर्थ हुआ कि "क त क" वर्ष में चन्द्रमास चैत्र के अर्द्ध कृष्ण पक्ष में कलि के आगमन के पश्चात, चन्द्रवार को, महान नक्षत्र भरणी में, भगवान हरिहर के चरणों के सम्मुख तुंगभद्रा तथा हरिद्र नदियों के संगम पर ३२००० ब्राह्मणों को गांव दान में दिये गये —गणना निम्न है। यहाँ 'कतक' १११ है, "कादिनव" के नियम से "क" का अर्थ १, "तादिनव" के नियम से 'त' का अर्थ १ तथा पुनः "क" का अर्थ १। **अङ्कनम् वामतो घटि"** अर्थात अंकों की उलटी गणना के नियमानुसार इसको उलट देने पर १११ बनता है। अर्थात कलि के पश्चात इस घटना का वर्ष १११ है। अथवा ५०७३—१११= ४९६२ वर्ष पूर्व (वर्तमान वर्ष १९७२ ई० से) परन्तु श्री लुई रइसा ने "कतकम" लिया और "म" जोड़ने से यह १११५ बनता है और इसको उलटने पर यह ५१११ होगा। इस महान संख्या से वह व्याकुल हो गये क्योंकि वह किसी निश्चित निर्णय पर नहीं पहुंच सके तथा एक दम कहा कि ताम्रपत्र तो बेढंगी जालसाजी थी। इस प्रकार उन्होंने एक विवेकहीन स्थिति को ग्रहण किया। इस मामले में उन्होंने अपने आप को बहुत ही बेढंगा पुरातत्ववेत्ता बनाया है।

श्री लुई राइस ने ऐसी त्रुटियाँ इस मामले में ही नहीं बल्कि प्रत्येक अभिलेखों को पढ़ते समय की हैं जिसको वह आसानी से नहीं समझ सके।

इन प्राच्य विद्या के विद्वानों ने इस प्रकार अपना कर्त्तव्य निभाया जो मूल लेखों के वास्तविक अर्थों का अशुद्ध अर्थ निकालते हैं और शंकाओं तथा विरोधाभासों में पड़ जाते हैं।

द्वेष तथा विष से भरे हुए विदेशी भारतीय भाषाओं, विद्याओं, रीति-रिवाजों इत्यादि का शोधन करते हैं। इस प्रकार के न्याय विरुद्ध विचार के प्रति कोई तर्क नहीं बताया जा सकता। हिन्दुओं के विस्तृत ज्ञान की उलझनों को समझने में असमर्थ होने के कारण, इनमें से बहुत से यूरोपीय विद्वान तथा उनके भारतीय प्रशंसक उनको विस्मृति के गड्ढे में दबाने अथवा अपनी जातीय रिक्तताओं के अनुसार मोड़ने के अतिरिक्त कोई मार्ग नहीं पाते। इन विषयों पर हिन्दू पण्डितों ने इतनी सुन्दर व्याख्याएँ प्रतिपादित की हैं कि वे सर्वदा यूरोपीय निर्णायकों के लिए अत्यन्त कठिनता के विषय हैं। संस्कृत विद्याओं तथा वेदों के कुछ यूरोपीय अनुसन्धान कर्ताओं ने केवल एक ही वाक्य

में सम्पूर्ण विषय को पौराणिक कथाओं तथा अन्धविश्वास के क्षेत्र से हटा दिया है। शीघ्र ही बहकाने वाले विशाल साहित्य ने राष्ट्र को ढक लिया जिसके द्वारा ओरियन्ट लिस्टों ने हिन्दू धर्म तथा विज्ञानों को इतनी हानि पहुंचाई जितनी उनके बुद्धिमान मस्तिष्कों ने उन्हें आज्ञा दी। परन्तु उनके अपने निर्णयों में उन विवादों के कारण जिनमें यूरोपीय भाषा-विज्ञान विशारद, अनुवादक, कोषाकार आदि संलग्न थे अस्वाभाविकताओं का पता चल गया तथा उचित अर्थ पाने के लिए उन्हें हिन्दू पण्डितों, जो उनके अपने पश्चिमी बन्धुओं की तरह निर्बुद्ध नहीं थे, की सहायता लेनी पड़ी और शीघ्र वे भारतीय विद्याओं में कुछ उच्च सत्यों के अस्तित्व को स्वीकार करने में आगे बढ़े, जो उनकी शोधों के लिये एक आश्चर्य मालूम पड़ा।

डा० केर्न इस नियम के अपवाद नहीं हैं। वे १८६५ में मुद्रित "बाइबिलयोथीका इण्डिका' ग्रन्थमाला के वराहमिहिर की "बृहत्संहिता" के सम्पादक तथा भारतवर्ष में प्राचीनतम विद्यास्थान, संस्कृत महाविद्यालय वाराणसी के प्रधानाचार्य थे। सर्वत्र सघनीभूत रूप में मुद्रित विषय में इनकी "बृहत्संहिता" की प्रस्तावना २४ पृष्ठों में है। जिसमें सर्वत्र उन्होंने वराहमिहिर का सही जीवन काल जानने का प्रयत्न किया और अन्त में इसको पांचवी शताब्दी ई० में कहीं पर निश्चित किया है। डा० केर्न वराहमिहिर के जीवन काल के पीछे अपनी कल्पनाओं में अधिकतर शंकाओं तथा त्रुटियों में पड़ गये हैं। ऐसा मालूम पड़ता है कि अनेक अपने देश-वासियों का प्रधान निर्णायकों की तरह उद्धरण करके अपनी कल्पना से इस महान व्यक्ति के जीवन काल को उन्होंने निश्चित किया है और ऐसा लगता है कि "बृहत्संहिता" के अध्याय ३ के पद ३ को पूर्णतः अस्वीकार किया है, जिसमें मानो कि इन अति बुद्धिमान पाखण्डियों की दुःसाध्य हंसी उड़ाने के लिए वराहमिहिर ने स्वयं अपना जीवन काल दिया है और अपने तर्क को एक अविवाद-स्पद खगोलीय घटना का उद्धरण करके बचाते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि ये महानुभाव साहित्य के उन विषयों पर जिन पर वे आलोचनायें विस्तृत रूप में लिखना चाहते है, की चिन्ता न करके अतिश्योक्तियों को अधिक महत्व देते हैं। क्या, जब डा० केर्न ने "बृहत्संहिता" को पढ़ा नहीं, उनकी आलोचनाएं उचित सिद्ध की जा सकती है ?

ज्योतिर्विज्ञान पर सबसे सुन्दर पुस्तकों में से एक "ज्योतिर्विदाभरण" में अमर हिन्दू महाकवि तथा नाटककार कालिदास इस प्रकार लिखते हैं—

धन्वन्तरिक्षपणकामरसिंहशंकु-
वेतालभट्टघटखर्परकालिदासाः ।
ख्यातो वराहमिहिरो नृपतेः सभायां
रत्नानि वैवररुचिर्नव विक्रमस्य ।।

इस श्लोक में अति बुद्धिमान नवरत्नों, जिन्होंने विक्रमादित्य के प्रतिष्ठित राज दरबार को शोभित किया, के नाम स्पष्ट रूप से दिये हैं और शब्द ख्यातो या प्रसिद्ध विशेष रूप से वराहमिहिर के लिये प्रयोग किया गया है जिसमें प्रतीत होता है कि वह उस समय अग्रगण्य पण्डित या विद्वान रहे होंगे।

कुछ इतिहास कार वर्णन करते हैं कि यह विक्रमादित्य गुप्त युग से सम्बन्धित थे जो तृतीय या चतुर्थ शताब्दी ई० में हुए थे। अपने नाम पर शक को प्रचलित करने वाला विक्रमादित्य पौराणिक नहीं है। मीडोज

टेलर अपनी "हिस्ट्री आफ इण्डिया" पृष्ठ ५४ पर लिखते हैं : "प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व सबसे महान भारतीय नृप विक्रमादित्य था। वह आन्ध्र वंश का राजकुमार मगध का उत्तराधिकारी बना तथा गोदावरी नदी के दक्षिण में वारंगल राज्य स्थापित किया और महान शक्तिशाली बन गया। मालवा और मध्य भारतवर्ष में मगध से सात शतकों तक इस वंश ने शासन किया। राजा विक्रमादित्य के राजशासन का प्रारंभ ५६ ई० पू० को हिन्दू युग घोषित किया गया और जो अब भी प्रचलित है। वह अत्यधिक लोकप्रिय तथा बुद्धिमान शासक था तथा उसके राजदरबार में साहित्य उच्च रूप से संरक्षित था। बहुत से श्रेष्ठ हिन्दू नाटक, पद्य, काव्य तथा दार्शनिक कार्यों को वहां पर ही तैयार किया गया था।"

आधुनिक इतिहासकार इस राजा को, जो ५६ ई० पू० था, गुप्त युग के विक्रमादित्य से सम्बन्धित करके तथ्यों को त्याग देते हैं। शकों अथवा युगों के संस्थापकों पर संदेह प्रकट करना बेहूदापन है। यह देखा जाता है कि सभी युग या सम्वत निरन्तर प्रचलित रहते हैं और यदि इसको एक बार विवाद का विषय बना दिया जाये तो इतिहास की सारी रचना लड़खड़ा जायेगी तथा संदेह का पूर्ण शासन होगा। भारतीय पंचांगों में कलि, युधिष्ठिर, ईसा शालिवाहन, बुद्ध आदि के उपलक्ष में स्थापित युगों या सम्वतों को यथार्थ रूप में उल्लेख किया जाता है। प्रतिष्ठा तथा सत्ता के दिनों में उज्जैन विक्रमादित्य की प्रसिद्ध राजधानी थी। प्रसिद्ध अरबी विद्वान अलबेरूनी, जो उज्जैन के ब्राह्मण खगोलीय विद्वानों का भक्त था, ने उज्जैन के खगोल वेत्ताओं की अत्यन्त प्रशंसा की है। खगोल वेत्ताओं ने सम्वत-शक को अत्याधिक सावधानी से अभिलिखित किया है तथा इस प्रतिष्ठित नृप के खुशहाल शासन के विषय में लेशमात्र भी संदेह नहीं हो सकता है जैसा कि न तो प्राचीन समय में और न आधुनिक समय में कोई इतनी महान कला, साहित्य और विद्याओं का संरक्षक हुआ है।

"बृहत्संहिता" के अध्याय १३ का पद ३ इस प्रकार है :

**आसन् मघासु मुनियः शासति पृथ्वीं**
**युधिष्ठिरे नृपतौ।**
**षड्द्विकपञ्चद्वियुतः शककालस्तस्य राज्ञश्च॥**

श्री चिदम्बर अय्यर का अनुवाद इस प्रकार है :

"विक्रम शक प्रारम्भ होने के २५२६ वर्ष पूर्व युधिष्ठिर के शासन काल में सप्तर्षि मघा (रेगूलस) तारा मंडल में थे।"

श्री अययर ने 'विक्रम' शब्द का प्रयोग किया है जबकि मूल साधारणतः शक शब्द का उल्लेख करता है। यदि उन्होंने विक्रम शब्द को नहीं प्रयोग किया होता तो यह और भी अधिक यथार्थ तथा उनके अनुवाद के लिये सत्य होता : इस प्रकार सम्पूर्ण अर्थ अशुद्ध बन गया। यह दुख की बात है कि एक शिक्षित बुद्धिमान भारतीय महानुभाव मूल पद का अशुद्ध अर्थ निकाले तथा नवीन शब्दों को जो मूल में नहीं है उनका प्रयोग करे।

अपनी 'हिन्दू सुपीरियोरिटी' में श्री हरबिलास 'शरद' इस पद का इस प्रकार अनुवाद करते हैं :

"शालिवाहन युग में २५२६ जोड़कर युधिष्ठिर का शासन काल प्राप्त किया जा सकता है।"

वह भी शालिवाहन शब्द प्रयोग करके

एक त्रुटि में फंस गये हैं, जबकि मूल साधारणतः शक शब्द का ही उल्लेख करता है।

अनुवादित उपरोक्त पद का अर्थ होता है कि यदि वराहमिहिर के समय प्राप्त शक वर्ष में २५२६ जोड़ दें तो युधिष्ठिर शक प्राप्त होगा तथा अर्थ को स्पष्ट और शुद्ध बनाने के लिये खगोलीय प्रमाण, कि सप्तर्षि मघा नक्षत्र में थे दिया है।

अब विवाद यह ठीक जानने का है कि उस समय प्रचलित शक कौन सा था। विक्रम शक के पश्चात' जो उत्तर भारत में सम्वत् के नाम से अब जाना जाता है, कुछ लेखकों ने इस शब्द का प्रयोग किया तथा अन्य ने युग को शक के स्थान पर अनुष्ठित किया, जिनसे समानोदक प्रमाणों से हमें समझना है कि उनका अर्थ किस शक या युग से था। शालिवाहन के पश्चात दोनों युग साथ-साथ प्रचलित रहे। परन्तु विक्रम (५६ ई० पू०) से पूर्व लेखकों ने युगों को सूचित करने के लिये शक शब्द का प्रयोग किया है। तथा शक की व्याख्या करने से तथा इन दो (युगों) में से किसी एक के साथ जोड़ने के लिये उनको उत्तर कालिन तिथियां देने का हमारे पास कोई कारण नहीं हैं। यह कालिदास से स्पष्ट हैं कि वराहमिहिर उनका समकालीन था और अपने नाम का शक स्थापित करने वाले विक्रमादित्य के समय में जीवित थे। वराहमिहिर तथा कालिदास, विद्वान नवरत्नों में से दो ने विक्रमादित्य के राज दरबार को सुशोभित किया था तथा वराहमिहिर और वह समकालीन थे। डा० केर्न, 'ज्योतिर्विदाभरण' को ३३ ई० पू० का मानते हैं परन्तु वे वराहमिहिर को पांचवीं शताब्दी का मानकर विलक्षण रूप से अक्षम्य त्रुटि में पड़ जाते हैं। क्या अनभिज्ञाता इसके आगे भी जा सकती है? इन लेखकों के सापेक्ष समयों की कल्पना व्यर्थ है। जब लेखकों ने अपने समय की तिथियों को स्पष्ट भाषा में दिया है उनके अध्ययन किये बिना कल्पनाएं करना अपमान जनक प्रतिकूलता होगी। उज्जयिनी के खगोल वेत्ताओं की विश्वसनीयता इस बात की ही केवल उद्धरण नहीं है कि अन्य इसकी तिथियों के प्रमाणीकरण को स्वीकार करते हैं, बल्कि अल्बेरूनी से हमें प्राप्त सूचना भी तीव्र रूप से प्रमाणित करती है। डा० केर्न का तर्क त्रुटिपूर्ण है। समान रूप से उनके द्वारा उद्धरित यूरोपीय निर्णयाक भी, त्रूटि पूर्ण हैं। अपनी "बृहत्संहिता" में वराहमिहिर ने अपनी तिथि सदैव के लिये दी है। डा० केर्न तथा अन्यों ने 'बृहत्संहिता' का अध्ययन नहीं किया। उनके लिये महान सद्भावना। 'बृहत्संहिता' के अध्याय १३ का पद ३ स्पष्टप रूप से समय बताता है।

जैसा कि वराहमिहिर, विक्रमादित्य के समय थे, उस समय प्रचलित शक सम्भवतः बुद्ध शक होना चाहिये तथा निम्नगणना वराहमिहि का लगभग समय प्रदान करेगी।

| | |
|---|---|
| बुद्ध युग | ५४३ ई० पू० |
| विक्रम शक की स्थापना | ५६ ई० पू० |
| | ४८७ ई० पू० |

विक्रम से पहले बुद्ध शक प्रचलित था। इसमें २५२६ जोड़कर ३०१३ हम प्राप्त करते है: युधिष्ठिर शक ३०१३ वर्ष था अब युधिष्ठिर शक ५०६१ वर्ष है जैसा कि पंचांगों से देखा जा सकता है। इसे पूर्ण रूप से स्वीकार नहीं किया जाता कि वर्तमान कलियुग का प्रारम्भ समय ५०७० वर्ष पूर्व था।

"सिद्धान्त शिरोमणि' के अनुसार शालिवाहन शक की स्थापना के समय, कलियुग

शक ३१७९ था। इस समय (१९७२ ई०) शालिवाहन शक १८९४ है। अब कलियुग ३१७९+१८९४=५०७३ होना चाहिये। युधिष्ठिर पांडव के ज्येष्ठ पुत्र थे। यह निश्चित है उनका शक, पाण्डवों की कौरवों पर विजय प्राप्त करने के पश्चात प्रारम्भ हुआ। जगन्नाथ के हस्त पत्र विवरण स्वीकार करते हैं कि महान युद्ध के बाद धर्मराज ने १२ वर्ष राज्य किया और परीक्षित उसका उत्तराधिकारी बना। अतः कलि शक से १२ घटाने पर वर्तमान शक ५०६१ युधिष्ठिर युग बनता है और इसमें से--३०११ घटा कर हम २०५० प्राप्त करते हैं अर्थात ५०६१-३०११=२०५० वर्तमान वर्ष (१९७२ ई०) से २०५० वर्ष पूर्व वराहमिहिर जीवित थे अथवा विक्रम ने अपने शासन के १२ वें वर्ष में उस महान युद्ध की यादगार में, जिसे उसने शकों तथा हूणों के विरुद्ध विजय प्राप्त की थी और जिसमें ५० लाख से ऊपर शक इस भयंकर युद्ध में उन्होंने हताहत किये, अपना संवत (शक) ५६ ई० पू० स्थापित किया। अपने निरीक्षणों की सत्यता सिद्ध करने के लिये मैं वराहमिहिर द्वारा दिये गये खगोलीय घटना क्रमों की व्याख्या करने का प्रयत्न करूंगा। खगोलीय घटनाओं की अशुद्ध व्याख्या करने का किसी को कोई अधिकार नहीं है।

●

## ग्रहण का कारण केवल छाया

चन्द्रग्रहण के समय चन्द्रमा पृथ्वी की छाया में प्रवेश करता है और सूर्यग्रहण के समय सूर्यमंडल में प्रवेश करता है, यही कारण है कि पश्चिम दिशा से चंद्रग्रहण और पूर्व दिशा से सूर्यग्रहण आरम्भ नहीं होता।

जिस प्रकार किसी एक वृक्ष की छाया सूर्य का आवरण करके एक दिशा को ही फैलती है, वैसे ही सूर्य के आवरण के होने के कारण पृथ्वी की छाया भी प्रतिदिन दीर्घ होती है।

(चंद्रग्रहण के समय) जिस समय चन्द्रमा सूर्य की सातवीं राशि में रहकर उत्तर-दक्षिण को अधिक दूर नहीं गमन करता, तब चन्द्रमा पूर्वमुख में आगमन करके पृथ्वी की छाया में प्रवेश करता है। (सूर्य ग्रहण के समय) सूर्य के नीचे स्थित हुआ चन्द्रमा, पश्चिम दिशा से आकर मेघ के समान सूर्यबिम्ब को ढक लेता है, यही कारण है कि सूर्य का ग्रहण दृष्टि से वश होकर प्रति देश में अनेक प्रकार से होता है। इस प्रकार चन्द्रमा का आवरण अधिक होने से अर्द्धग्रस्त चन्द्रमा शृंग अतिशय कुण्ठित होता है और सूर्य का आवरण बहुत ही कम होता है। यही कारण है कि सूर्य का शृंग अत्यन्त तीक्ष्ण होता है।

दिव्य दृष्टि वाले आचार्य लोगों ने इस प्रकार से ग्रहण का कारण बताया है; परन्तु ग्रहण होने के विषय में राहु को कारण कहना शास्त्र का सद्भाव मात्र ही है। राहु नामक असुर को ब्रह्मा जी ने ऐसा वर दिया था कि "लोग ग्रहण के समय जो होम करेंगे, उसके ही अंश से तुम तृप्त होगे।" इसी कारण से ग्रहण समय राहु का सान्निध्य होता है। अतः वैज्ञानिक दृष्टि से राहु किसी भी प्रकार से ग्रहण का कारण नहीं हो सकता है।

पाँच ग्रहों के इकट्ठे मेल से भी ग्रहण नहीं हो सका और अष्टमी के दिन जल में तैल डालना (अष्ठमी के दिन जल में तैल डालने से वह तैल जिस दिशा में न फैले उसी दिशा में ग्रहण की मुक्ति होगी, तिसकी विपरीत दिशा में ग्रास होगा) जो शास्त्रों में लिखा है-

इस कथन का भी पंडित लोगों को विश्वास न करना चाहिए। ग्रहण (सूर्य एवं चंद्र) का कारण केवल छाया (चन्द्र एवं पृथ्वी) ही है।

—वराहमिहिर

# आचार्य वराहमिहिर का जन्म कब हुआ था ?

ईसा पूर्व काल में हमारे यहां जो भी उच्च कोटि के विद्वान एवं विज्ञान-वेत्ता हुए हैं उनके काल में विदेशियों ने भारी परिवर्तन करके उन्हें बहुत पीछे धकेल कर यह सिद्ध किया है कि भारत में जो ज्योतिष प्रचलित है वह यूनान आदि अन्य देशों की देन है और भारत में इन विषयों के ज्ञाता बहुत बाद में हुए हैं। ऐसा करने से उनके मन्तव्य की सिद्धि होती थी और भारतीय अपने गौरवमय अतीत से दूर हटाये जा सकते थे । सर्व प्रथम तो हमारा समस्त साहित्य एवं इतिहास तथा कलाकृतियां विदेशी लुटेरों एवं आक्रमण कारियों की धर्मान्धता की ज्वाला में जलकर स्वाहा हो गयीं थीं। इसके बाद जो कुछ शेष रह गया था, उसे अंग्रेज ने दूषित करके बिल्कुल ही बदल दिया । ऐसी दशा में भारतीय इतिहास का सच्चा स्वरूप किस प्रकार से जीवित रह सकता था।

आचार्य वराहमिहिर की गणना विश्व के महान ज्योतिर्विज्ञानवेत्ताओं में की जाती है, अतः सबसे पहले अंग्रेज ने इन्हीं पर अपना प्रहार किया। इनका काल ईसा पूर्व में बैठता था अतः उसने घोटाला करके इनको ईसा की छठी शताब्दी में धकेल दिया। इनका काल बदल जाने से इनके समकालीन विश्व विख्यात योद्धा एवं चक्रवर्ती हिन्दू सम्राट महाराजा विक्रमादित्य तथा महाकवि कालिदास आदि का महत्व भी समाप्त हो गया। भारतीयों के दिमाग में यह बात घर कर गई कि हमारे यहां वीर विक्रमादित्य से सम्बन्धित जो कथायें प्रचलित हैं वह सब दन्त कथाएं ही हैं और वीर विक्रमादित्य नाम का भारत में कोई भी चक्रवर्ती सम्राट नहीं हुआ है और न ही उसकी राज्य सभा के नवरत्न ही कोई हुए हैं । यह सब कपोल कल्पित कहानियां हैं। अस्तु।

यही नहीं जब इतिहास बदलने में अंग्रेजों और उसके प्रशंसकों को कोई कठिनाई महसूस हुई वहां उन्होंने एक नाम के दो व्यक्तियों की कल्पना करके जनता को भ्रम जाल में फंसा दिया । आचार्य वराहमिहिर ने "बृहत्संहिता" में शक काल का वर्णन किया है जो कि ईसा पूर्व ५५१ वर्ष में प्रारम्भ हुआ था । आचार्य वराहमिहिर के समकालीन महाकवि कालिदास ने इसी शक संवत् का उल्लेख अपने ग्रन्थ "ज्योतिर्विदाभरण" में किया है। एक अन्य शालिवाहन शक (आज का राष्ट्रीय शक संवत) भी भारत में प्रचलित है जिसका प्रारम्भ ईसा से ७८ वर्ष बाद में हुआ था । इस शक संवत् का पहले वाले शक संवत से ६२९ वर्ष का अन्तर है। अंग्रेज ने "बृहत्संहिता" एवं "ज्योतिर्विदाभरण" में पहिले वाले शक संवत के स्थान पर बाद वाले (शालिवाहन शाका) शक संवत को इस प्रकार से जड़ दिया है कि आचार्य वराहमिहिर एवं महाकवि कालिदास के काल वर्णन में ६२९ वर्ष का सीधा अन्तर पड़ गया है । अब यदि हम महाकवि कालिदास के ग्रन्थ में वर्णित नामावली को देखते हैं तो ग्रन्थ ठीक बैठता

है और जब ससमें ईसा बाद वाले शक संवत् को पढ़तें हैं तो ग्रन्थ की सत्यता पर शंका होने लगती है । यही कारण है कि अंग्रेज ने महाकवि कालिदास के इस ग्रन्थ को जाली घोषित करके सदा सर्वदा के लिये ही इसका महत्व समाप्त कर दिया।

आचार्य वराहमिहिर के जन्म काल का निर्णय करते समय हमें तीन बातों पर ध्यान देना पड़ता है:—

१—इन्होंने स्वयं अपने जन्म काल आदि के विषय में कहीं कुछ संकेत दिया है या नहीं ।

२—इनके समकालीन किसी अन्य व्यक्ति ने इनकी कहीं चर्चा की है या नहीं और वह व्यक्ति किन कारणों से इनका समकालीन बैठता है ।

३—उस समय का या उसके बाद का कोई ऐसा इतिहास उपलब्ध हो जिसमें इनके काल के सभी लोगों का वृतान्त मिल सके।

## वराहमिहिर द्वारा वर्णित शक काल

आचार्य वराहमिहिर द्वारा रचित जितना भी इस समय साहित्य उपलब्ध है, (इन्होंने "पंचसिद्धान्तिका", "बृहज्जातक", "बृहत्संहिता", "लघुजातक","विवाह पटल" एवं "योग यात्रा" आदि ग्रन्थों की रचना की थी जिनमें अंतिम दो ग्रन्थ इस समय अप्राप्य हैं।) उसमें स्पष्ट रूप से तो इन्होंने अपने जन्म काल आदि के विषय में कहीं भी कुछ नहीं लिखा है, केवल "बृहत्संहिता", एवं "पंचसिद्धान्तिका" में शक संवत निकालने की विधि एवं उस समय की तिथि एवं वार आदि का वर्णन जरूर किया है।

'बृहत्संहिता' में सप्तर्षियों की गति का वर्णन करते हुए आचार्य वराहमिहिर लिखते हैं—

**आसन मघासु मुनयः**
**शासति पृथ्वीं युधिष्ठिरे नृपतौ ।**
**षड्द्विकपंचद्वियुतः (२५२६)**
**शककालस्यतस्य राज्ञश्च ।**

अर्थात महाराजा युधिष्ठिर के काल में सप्तर्षि (सात तारों का मण्डल) मघा नक्षत्र में भ्रमण कर रहे थे। उस राजा के काल से २५२६ वर्ष पश्चात शक काल का आरम्भ हुआ। सप्तर्षि एक-एक नक्षत्र में सौ-सौ वर्ष तक रहते हैं ऐसा उल्लेख आचर्य वराहमिहिर ने उपरोक्त श्लोक से अगले श्लोक में किया है—

**एकैकमिन्नृक्षे शतं शतं**
**ते चरन्ति वर्षाणाम् ।**

अब हमें यह देखना है कि सप्तर्षि मघा में किस काल तक रहे हैं। इसके लिये हमें महाभारत तथा कुछ अन्य पुराणों का सहारा लेना पड़ेगा। इसके साथ-साथ एक बात का और भी ध्यान रखना पड़ेगा कि भारतीय ज्योतिष शास्त्र में केवल २७ नक्षत्रों को ही गणना के लिए लिया गया है जिन्हें चान्द्र नक्षत्र भी कहते हैं । इनमें प्रत्येक नक्षत्र के चार भाग किये गये हैं जिहें नक्षत्र चरण कहते हैं। इस प्रकार से कुल १०८ चरण होते हैं और इन्हीं में से नौ-नौ चरणों के बारह समूह बनाये गये है जिन्हें बारह राशियां कहते है।

मत्स्य, वायु एवं ब्रह्माण्ड पुराणों में भी सप्तर्षियों का मघा नक्षत्र में भ्रमण करने का उल्लेख महाराजा परीक्षित के काल में लिखा है—

**"सप्तर्षयो मघायुक्ताः**
**काले पारिक्षते शतम्"**

इससे सिद्ध होता है कि महाराजा युधिष्ठिर के पश्चात उनके पौत्र महाराजा परीक्षित के राज्य काल में भी सप्तर्षि मघा नक्षत्र में ही भ्रमण कर रहे थे। "बृहत-संहिता" की व्याख्या करने वाले विद्वान भट्टोत्पल ने भी अपनी व्याख्या में सप्तर्षियों का मघा नक्षत्र में परिभ्रमण ही सिद्ध किया है बल्कि उस काल को कलियुग एवं द्वापर युग की सन्धि का समय भी बताया है—

**कलिद्वापरसन्धौ तु**
**स्थितास्ते पितृदैवतम् ।**
**मुनयो धर्मनिरताः**
**प्रजानां पालनं रताः ॥**

इस श्लोक में भट्टोत्पल ने मघा के स्थान पर पितृ शब्द का प्रयोग किया है जो कि मघा नक्षत्र का ही द्योतक है। ब्रह्माण्ड पुराण में भी एक स्थान पर इसी सम्बन्ध में पितृ शब्द का प्रयोग किया गया है—

**सप्तर्षयस्तदा प्राप्ताः**
**पित्र्ये पारीक्षिते शतम्**

कलियुग का आरम्भ कब हुआ था, इस विषय में वायु एवं विष्णु पुराण में वर्णन इस प्रकार है—

**यावत्स पादपद्माभ्यां**
**पस्पर्शेमां वसुन्धरम् ।**
**तावत्पृथ्वी परिष्वंगी**
**समर्थो नाभवत्कलि : ॥**
—विष्णुपुराण ४।१२। ४। १०९

अर्थात जिस दिन योगेश्वर भगवान कृष्ण का देहावसान हुआ, उसी दिन कलि-युग का आरम्भ हुआ। इससे सिद्ध होता है कि महाभारत का युद्ध कलियुग से पूर्व ही हो गया था। इस संदर्भ से महाभारत की अन्तः साक्षी इस प्रकार है—

**अन्तरे चैव सम्प्राप्ते**
**कलिद्वापरयोभूत ।**
**समन्तपन्चके युद्धं**
**कुरूपाण्डव सेनयो ॥**
महाभारत आदि पर्व २।१३

इससे स्पष्ट होता है कि महाभारत का युद्ध कलियुग एवं द्वापर युग के सन्धि काल में हुआ था। केवल महाकवि कल्हण को इस विषय में जरूर भ्रांति हो गयी जिसने राजतरंगिणी में महाभारत के युद्ध काल का समय कलियुग के ६५३ वर्ष बीत जाने पर लिखा है। (महाकवि कल्हण को भी ईसा पश्चात वाले शक संवत से भ्रान्ति हो गयी और उसके अनुसार ६५३ कलि का समय केवल इसी कारण से आता है। यदि ३१७९ (७८ ई० तक कलि के वर्षों का जोड़) को वराहमिहिर द्वारा प्रयुक्त २५२६ वर्षों से घटा दिया जाए तो ६५३ वर्ष ही शेष बचते है और यही कल्हण की भ्रान्ति है।)

भगवान कृष्ण इस संसार से ३१०२ ई० पूर्व में विदा हो चुके थे अतः कलियुग का आरम्भ ३१०२ ई० पूर्व में हुआ था। विदेशी ज्योतिषियों ने भी कलियुग के आरम्भ होने का समय यही माना है। इस तथ्य की पुष्टि बीजापुर में ऐहोली नामक स्थान के एक जैन मन्दिर से प्राप्त इस शिला लेख से भी होती है जो चालुक्य कुल के महाराजा सत्याश्रम पुलकेशी द्वितीय से सम्बन्धित है :—

**त्रिशत्सु त्रिसहस्रेषु**
**भारतादाहवादितः ।**
**सप्ताब्दशतयुक्तेषु**
**शतेष्वदेषु पञ्चसु ॥**
**पञ्चाशत्सु कलौ काले षट्सु**
**पञ्चशतासु च ।**

समासु समतीतासु
शकानामापि भुजाम् ॥

भारतवर्ष के बृहद् इतिहास से उद्धृत। अर्थात कलि के ३७३५ वर्ष निकल जाने पर जिस समय शक संवत का ५५६ वां वर्ष चल रहा था, उस समय यह शिलालेख लिखा गया। आधुनिक शक संवत ७८ वर्ष ईसा पश्चात शुरु हुआ है। अतः इसके अनुसार ३७३५-५५६=३१७९ वर्ष शक संवत से पूर्व अर्थात ३१७९-७८ =३१०१ वर्ष पूर्व कलियुग संवत आरम्भ हुआ था। इससे ३१०२ ई० पू० में कालि संवत शुरू होने की बात सिद्ध होती है।

पुराणों में उल्लेख है कि राज्य सिंहासन आरोहण के पश्चात महाराजा युधिष्ठिर ने ३७ वर्ष तक राज्य किया और फिर हिमालया को चले गये। भगवान कृष्ण ने जब इस संसार से विदा ली थी, उसके कुछ ही दिन पश्चात पाण्डव हिमालय में चले गये थे। भगवान कृष्ण के विदा होते ही कलियुग शुरू हो चुका था। यह बात हम ऊपर सिद्ध कर चुके है। अतः कलि संवत के प्रारम्भ होने से ३७ वर्ष पूर्व तक महाराजा युधिष्ठिर ने राज्य किया था। अर्थात (३१०२+३७) ३१३९ ई० पू० से ३१०२ ई० पू० तक महाराजा युधिष्ठिर का शासन काल आता है।

भविष्य पुराण के कलियुग वृतान्त में लिखा है कि जब कलियुग के २५ वर्ष बीत गये तब सप्तर्षि मघा नक्षत्र से चलकर आश्लेषा नक्षत्र में आये थे। अतः ३१०२-२५=३०७७ ई० पू० में सप्तर्षि उलटी गति द्वारा आश्लेषा नक्षत्र में आये थे और इससे सौ वर्ष पूर्व अर्थात ३१७७ ई० पू० से लेकर ३०७७ ई० पू० तक वह मघा नक्षत्र में भ्रमण कर रहे थे।

पाण्डवों ने ३०७६ ई० पू० में देह त्याग की थी, उस समय सप्तर्षि अभी मघा नक्षत्र में ही थे जब महाराजा युधिष्ठिर स्वर्ग लोक में पहुंच चुके थे। अतः आचार्य वराह मिहिर ने इसी युधिष्ठिर काल ३०७६ ई० पू० में से २५२६ वर्ष घटाने पर शक संवत के प्रारम्भ होने का उल्लेख किया है। अतः ३०७६-२५२६=५५० वर्ष ई० पू० में शक संवत का आरम्भ हुआ था जो कि ईसा पश्चात ७८ वर्ष में आरम्भ होने वाले शक संवत (आधुनिक राष्ट्रीय शाका) से ६२९ वर्ष पूर्व शुरु हो चुका था। यहीं पर अंग्रेज ने अपने अनुयायियों द्वारा इतिहास में भ्रम जाल फैला दिया जिसमें जन साधारण तो क्या अच्छे-अच्छे बुद्धिमान व्यक्ति भी फंस जाते हैं।

अतः सबसे पहिले तो यह सिद्ध हुआ कि आचार्य वराहमिहिर के समय ईसा पूर्व में प्रारम्भ होने वाले शक काल ही प्रचलित थे जिसका उल्लेख आचार्य वराह मिहिर ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'पञ्चसिद्धान्तिका' में किया है—

सप्ता विश्ववेद संख्यं शककालमपास्य
चैत्र शुक्लादौ।
अर्द्धास्तमिते भानौ यवनपुरे
सौम्यदिवसाद्यः ॥

अर्थात शक काल से ४२७ घटाने पर बुद्धवार एवं चैत्र शुक्ल प्रतिपदा होगी जब कि यवनपुर में सूर्य आधा अस्त हो रहा होगा। पं० सुधाकर द्विवेदी ने जब विदेशी विद्वान डा० थिबयूट के लिए उपरोक्त ग्रन्थ का संस्कृत में अनुवाद किया तब उन्होंने गणना करके देखा कि शालिवाहन शाका (आधुनिक राष्ट्री शक संवत) के प्रयोग से बुधवार को चैत्र शुक्ल प्रतिपदा नहीं बैठती है। तब उन्होंने "सौम्य दिवसे" का अभिपाय सोम (सोमवार) रख कर और

"भौम्य दिवसे" (सौम्य के स्थान पर भौम्य ठीक समझकर) का भी प्रयोग करके देखा। इस पर भी फल ठीक नहीं मिला। श्री शंकर बाल कृष्ण दीक्षित ने पञ्च-सिद्धान्तिका के उपरोक्त वाक्य को वैशाख शुक्ल प्रतिपदा ठीक बताया जो कि तिथि के मान से सोमवार (मंगलवार) रहती है। इनके हिसाब से यह काल २२ मार्च सन् ५०५ ई० प० बैठता है। जिसका उल्लेख आचार्य वराहमिहिर ने किया है। दोनों विद्वानों ने अपनी गलती छिपाने के लिये आचार्य वराहमिहिर के वाक्य को गलत बताकर उसमें परिवर्तन कर दिया। यह समस्त भूल केवल शालिवाहन शक के प्रयोग के कारण ही हुई। जब मद्रास के प्रसिद्ध गणितावेत्ता श्री थीरूवेकंटा चार्य ने "दी एन्टीक्यूटी आँफ हिन्दू एस्ट्रोनोमी एन्ड दी तमिल" लिखी तब उन्होंने इन दोनों विद्वानों को दोषी ठहराया और ५५१ ई० पू० काल शक काल से गणित करके यह सिद्ध कर दिया कि ४२७ वर्ष घटाने पर चैत्र शुक्ल प्रतिपदा थी जो कि मगंलवार प्रातः ५९ घड़ी एवं ५ पल (अर्थात सूर्योदय काल से ४ पल (लगभग डेढ़ मिनट) पर्व शुरु हुई थी) ध्यान रहे भारतीय गणना के अनुसार सूर्योदय पर ही अगला दिन माना जायेगा। अतः ३ मार्च १२४ ई० पू० को बुधवार था और चैत्र शुक्ल प्रतिपदा थी जबकि यवनपूर में सूर्य आधा अस्त होता है। इससे सिद्ध होता है कि यह काल आचार्य वराहमिहिर के ग्रन्थ लिखने के आस-पास का काल है जो कि उन्हें ईसा पूर्व काल में हुआ सिद्ध करता है। अब पाठक स्वयं ही विचार लेवें कि २२-३-५०५ ईस्वी और ३-३-१२४ ई० पू० में कितना अन्तर होता है।

## कालिदास की समकालीनता

अब देखिये आचार्य वराहमिहिर के समकालीन महाकवि कालिदास द्वारा रचित ज्योतिष ग्रन्थ "ज्योतिर्विदाभरण" का शेष अध्याय जिसमें महाकवि ने लिखा है—

**धन्वतरिक्षपणकामरसिंह शंकुवेताल**
**भट्टघटखर्परकालिदासाः**
**ख्यातो वराहमिहिरो नृपतेः सभायां**
**रत्नानि वैवररुचिर्नव विक्रमस्य।**

अर्थात सम्राट विक्रमादित्य की सभा धन्वन्तरि, क्षपणक, अमरसिंह, शंकु, वेताल भट्ट, घटखर्पर, स्वयंकालिदास, विख्यात वराहमिहिर और वररुचि इन नवरत्नों से सुशोभित थी। इस श्लोक से सिद्ध होता है जो काल आचार्य वराहमिहिर का है वही काल महाकवि कालिदास एवं सम्राट विक्रमादित्य संवत प्रवर्तक का है। आज इस समय २०२८ विक्रम संवत चला रहा है अर्थात यह संवत ईसा पूर्व ५७ वर्ष में शुरू हुआ था।

महाकवि कालिदास ने अपने इसी ग्रन्थ का रचना काल भी लिखा है—

**वर्षे सिन्धुदर्शनाम्बर गुणैर्याति**
**कलौ सम्मिते।**
**मासे माधव संज्ञिते च**
**विहितो ग्रन्थ क्रियोपक्रमः॥**

अर्थात कलि के ३०६७ वर्ष व्यतीत होने पर माधव (वैशाख) मास में मैंने (कालि-दास ने) यह ग्रन्थ (ज्योतिर्विदाभरण रचा)।

कलियुग का आरम्भ ईसा से ३१०२ वर्ष पूर्व हुआ था इस प्रकार से ३१०२-३०६७ अर्थात ३४ वर्ष यह ग्रन्थ रचा गया था यह समय आचार्य वराहमिहिर और सम्राट विक्रमादित्य के काल से पूरा मेल खाता है। जब यह ग्रन्थ इतना अधिक प्रमाणित है तब अंग्रेज ने इसे जाली घोषित

कैसे कर दिया। इसका कारण भी दो शक संवतों से भ्रम में पड़ने वाली बात ही है। इस ग्रन्थ में शक संवत का उल्लेख है। इस ग्रन्थ में अभयनांश लाने की रीति में शाकः शब्द का प्रयोग किया गया है—

शाकः शराम्भोधियुगैः ४४५ नितो
हृतोमानम् खतकैर्यतांशकाः स्यु।

इस श्लोक में शक संवत का उल्लेख है जो कि ईसा के ७८ वर्ष बाद शुरू हुआ था और ग्रन्थ का रचना काल ईसा से ३४ वर्ष पूर्व का लिखा हुआ है। अतः एक ही ग्रन्थ में दो विरोधी मतों का समावेश होने से ग्रन्थ की प्रमाणिकता ही समाप्त हो जाती है। ऐसा विदेशियों ने इस ग्रन्थ पर आरोप लगाकर इसे जाली घोषित कर दिया। वास्तव में यह ग्रन्थ बिल्कुल प्रमाणित है केवल शक संवत को सिर्फ ईसा के बाद वाला ही मानने से यह शंका उत्पन्न हो गयी है। आचार्य वराहमिहिर ने जिस ईसा पूर्व काल में शुरू होने वाले शक संवत का संकेत दिया है, उसी शक संवत को उनके समकालीन पं० कालिदास ने लिखा है। अतः ग्रन्थ जाली नहीं लेकिन ऐसा कहने वालों की दृष्टि बहुत दूर तक नहीं पहुंच चुकी है। इसी ग्रन्थ के प्रथम अध्याय में लिखा है—**मत्वा वराहमिहरादिमतैः**। अर्थात मेरे (कालिदास) एवं वराहमिहिर के मतानुसार, इससे स्पष्ट होता है कि यह दोनों विद्वान एक ही समय में हुए हैं। विदेशियों ने इस ग्रन्थ में वर्णित शाकः शब्द से इस ग्रन्थ को ईसा पश्चात की रचना घोषित किया है और साथ-साथ इसे जाली भी कहा है।

महाकवि कालिदास की अन्य सुप्रसिद्ध कृति "रघुवंश" में महाराजा रघु की दिग्विजय में महाकवि ने हूणों का उल्लेख किया है। प्राप्य विद्या के कहे जाने वाले विदेशी विद्वान और उनका अन्धाधुन्ध अनुकरण करने वाले भारतीय विद्वानों का मत है कि हूणों ने प्रथम बार ईसा की पांचवी शती के उत्तरार्द्ध में भारत पर आक्रमण किया था जब उन्हें महाराजा स्कन्ध गुप्त ने मार भगाया था। इस घटना के बाद ही महाकवि हूणों से परिचित हुए थे। अतः 'रघुवंश' के रचयिता महाकवि कालिदास का काल ४५० ई० के पश्चात का ही हो सकता है और इस प्रकार से वह आचार्य वराहमिहिर के समकालीन नहीं हो सकते हैं।

इन विदेशी विद्वानों और उनके चरण चिह्नों पर चलने वाले हमारे भूले-भटके स्वदेशी विद्वानों को शायद यह पता नहीं है कि प्राचीन भारतीय ऐतिहासिक ग्रन्थों 'रामायण' एवं महाभारत में जिन असंख्य विदेशी जातियों का वर्णन किया गया है उनमें हूणों के विषय में भी विस्तृत जानकारी दी गयी है। 'रामायण' एवं महाभारत के महान पंडित कवि कालिदास को हूणों की ४५० ई० तक जानकारी न होने की बात समझ से बाहर है। डॉ० राजबली पाण्डेय ने 'विक्रमादित्य' ग्रन्थ के पृष्ठ ६३ पर इस बात का तर्क पूर्ण खण्डण किया है—

"हूणों के उल्लेख का गलत अर्थ लगाया गया है। रघु के दिग्विजय के वर्णन में वे लोग रघु के द्वारा पराजित लोगों में वर्णित हैं न कि भारत में आक्रान्ता या विजेता के रूप में। उनका स्थान भी भारत से बाहर बताया गया है। चीनी इतिहास से ज्ञात होता है कि हूणों ने तृतीय शती ई० पू० से प्रथम शति ई० के मध्य में बलख (प्राचीन वह्लीक) तक अपना शक्तिशाली साम्राज्य स्थापित किया था।

हूणों का साम्राज्य भारत की ठीक देहली पर था तथा भारतवासी हूणों से परिचित थे। यह अनुमान कर लेना कि भारतवासियों को भारत के बाहर के लोगों का तनिक भी ज्ञान नहीं था उनके भौगोलिक तथा जातीय ज्ञान के प्रति अन्याय करना है। पारसीक, पल्लव, पारद, शक हूण, कम्बोज, किरात चीनी लोगों का जो भारत के पड़ौसी थे, भारतीयों को भली-भांति ज्ञान था। कालिदास हूणों, पारसीकों, कम्बोजों से भिन्नता भलि-भांति स्पष्ट करते हैं। अतः यह निष्कर्ष निकालना पूर्ण रूप से ठीक होगा कि कालिदास को हूणों का उल्लेख करते समय प्रथम शती ई० पू० मध्य एशिया की जातिगत स्थिति का ज्ञान था। अतएव उन्हें केवल इसलिए पांचवी तथा छटी शताब्दी में नहीं घसीटा जा सकता कि उन्हें हुणों का ज्ञान था।"

ठीक इसी प्रकार से आचार्य वराह मिहिर ने यवनों एवं म्लेछों (भारत के पड़ौसी देशों की दो जातियां) का 'बृहत-संहिता' में उल्लेख किया है। अतः यह उल्लेख इन जातियों के विषय में बिना कुछ जानें कैसा किया जा सकता था। महाकवि कालिदास ने ज्योतिषशास्त्रीय शब्द 'जामित्र' का उल्लेख किया है जिसकी समता यूनानी शब्द डायमिट्रन [Diametren] से की जाती है। अतः महाकवि कालिदास न केवल हूण आदि विदेशीं जातियों से ही परिचित थे बल्कि आचार्य वराहमिहिर की भांति विदेशी वैज्ञानिक सिद्वान्तों के भी ज्ञाता थे।

डॉ० राजबली पाण्डेय ने उक्त ग्रन्थ में आचार्य वराहमिहिर के काल के विषय में "बृहत्संहिता" का उल्लेख करते हुए लिखा है–

"वराहमिहिर को, जैसा कि उनके द्वारा रचित 'बृहत्संहिता' के अन्तः साक्ष्यों से स्पष्ट है, पांचवी अथवा छटी शती में नहीं रखा जा सकता। इस ग्रन्थ में मध्यदेश के उल्लेख के सम्बन्ध में भारत का प्रादेशिक विभाजन विस्तार से वर्णित है जो गुप्तों के अभिलेखों से ज्ञात प्रादेशिक विभागों से मेल नहीं खाता।"

उपरोक्त विवरणों से भी सिद्ध होता है कि आचार्य वराहमिहिर का युग ईसा की प्रथम शती के आस-पास का है और महाकवि कालिदास उनके समकालीन थे।

कई लोग यह कहते हैं कि आचार्य वराहमिहिर एवं महाकवि कालिदास ने विक्रम संवत का उल्लेख अपने ग्रन्थों में क्यों नहीं किया है जबकि वह उसके राजाश्रय में थे। इसका सीधा एवं सरल उत्तर यह है कि इन विद्वानों ने अपने ग्रन्थों में ज्योतिष गणना में प्रयोग आने वाले संवतो का ही उल्लेख किया है। किसी दूसरे संवत को उन्होंने प्रयोग में नहीं लाया है। इसके अतिरिक्त विक्रम संवत उस समय इस नाम से नहीं प्रचलित किया गया था। इसका नाम "कृतसंवत" था और बाद में "मालव संवत" हुआ तथा कालान्तर से "विक्रम संवत" इस का नाम पड़ गया। केवल ईस्वी नवमी शती में इसे "विक्रमकाल", 'विक्रम संवत्सर' एवं 'विक्रम संवत' का नाम दिया गया है जो प्राचीन अभिलेखों से सिद्ध हो चुका है।

प्रसिद्ध जैन सन्त श्री मेरुतुंगाचार्य अपने ग्रन्थ "विचार श्रेणी" में उज्जयिनी (विशाला) का राजनीतिक इतिहास वर्णन करते हुए लिखते हैं—"महावीर के निर्वाण (५२७ ई० पू०) के ४७० वर्ष पश्चात शकों के वंशोन्मूलन के बाद एक मालव राजा विक्रमादित्य होगा।" विक्रमादित्य ने कई लाख शकों का संहार करके ही

मालव गणराज्य की स्थापना की थी और इसीलिए उसे "शकारि" कहा जाता है। ५२७-४७० = ५७ ई० का समय आता है जब सम्राट विक्रमादित्य ने कृत संवत (आधुनिक विक्रम संवत) का प्रारम्भ शकों पर विजय की खुशी में किया था।

सिख मत के प्रवर्तक श्री गुरुगोविन्द सिंह ने अपने (आज से लगभग ३०० वर्ष पूर्व) अपनी प्रसिद्ध कृति "दशम ग्रन्थ में ब्रह्मा के सात अवतारों का वर्णन किया है। इन अवतारों में उन्होंने महाकवि कालिदास (जिन्हें वह काल दास लिखते हैं) को अन्तिम अवतार बताया है और इन्हें सम्राट विक्रमादित्य का समकालीन एवं रघुवंश आदि काव्यों का रचयिता बताया है—

लखि रीझ विक्रमजीत ॥
अति गरबन्त अजीत।
अति गिआन मान गुनैन।
शुभ क्रान्त सुन्दर नैन ॥
रघु काबि कीन सुधार ॥
कलि काल दास अवतार ॥

इससे सिद्ध होता है कि सम्राट विक्रम महाकवि कालिदास एवं आचार्य वराहमिहिर एक ही काल में (ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी) में हुए हैं।

## अन्य ऐतिहासिक प्रमाण

आचार्य वराहमिहिर के जन्म काल के विषय में एक श्लोक श्री शंकर बाल कृष्ण दीक्षित को श्री रघुनाथ शास्त्री टेंभुकर नामक एक ज्योतिषी से पूना में मिला था। उन्होंने उसे "भारतीय ज्योतिष" के पृष्ठ २९४ पर उद्धृत किया है—

स्वस्तिश्रीनृपसूर्यसूनुजशके
याते द्विवेदाम्बरत्रै
३०४२ मानाब्दमिते त्वनेहसि
जये वर्षे वसन्तादिके।
चैत्रे श्वेतदले शुभे वसुतिथावा-
दित्यदासादभूद्वेदांगे
निपुणो वराहमिहिरो
विप्रो खेराशिभिः।

विदेशियों के भ्रमजाल में फंसे हुए विद्वान श्री शंकर बालकृष्ण दीक्षित ने इस श्लोक को इसलिए अविश्वसनीय बताया क्योंकि इसमें आचार्य वराहमिहिर का जन्म ३०४२ युधिष्ठिर शक (संवत) में हुआ बताया गया है। युधिष्ठिर संवत ३१७६ ई० पू० में प्रारम्भ हुआ था जब महाराजा युधिष्ठिर ने आधुनिक दिल्ली (इन्द्रप्रस्थ) की नींव रखी थी। अतः ३१७६ में से ३०४२ घटाने पर १३४ ई० पू० का समय आता है जो कि बिल्कुल ठीक है। श्री दीक्षित भी आचार्य वराहमिहिर के जन्म काल को ४२७ शालिवाहन शक के पूर्व एवं ४१२ शालिवाहन शक के निकट ही मानते हैं। अतः यह सिद्ध होता है कि आचार्य वराहमिहिर के विषय में उपरोक्त श्लोक बिल्कुल सत्य है अन्तर केवल इतना है कि ईसा बाद में शुरू होने वाले शक संवत का व्यर्थ में ही सब स्थानों पर प्रयोग करके उनके जन्म काल के ईसा की छटी शताब्दी में घसीटने का भरसक प्रयत्न किया गया है। "पंचसिद्धान्तिका" में दिये गये यवनपुर में सूर्यास्त के उदाहरण का समय भी ३ मार्च सन् १२४ ई० पू० है।

श्री आमराज ने विख्यात ज्योतिषी ब्रह्मगुप्त कृत "खण्डखाद्य" की टीका में ५०९ शक में आचार्य वराहमिहिर की मृत्यु लिखी है—

नवाधिपंचशतसंख्यशाके
वराहमिहिराचार्यो खिगता।

ईसा पूर्व में शुरू होने वाले शक संवत के

अनुसार यह काल ४२ ई० पू० बैठता है। मगर अंग्रेज के भ्रमजाल में फंसे भारतीय विद्वानों ने इसे ईसा के ५८७ वर्ष बाद का ठहराया है।

"इन्डियन कारोनोलोजी" में डा० देवसहाय त्रिवेद ने आचार्य वराहमिहिर का काल कलि संवत २९७८ (१२४ ई० पू०) लिखा है। "पञ्चसिद्धान्तिका आचार्य वराह मिहिर की सर्व प्रथम रचना ही सिद्ध हो चुकी है। इसमें ३ मार्च १२४ई० पू० की गणना का उल्लेख यह सिद्ध करता है कि इस ग्रन्थ की रचना के समय वह अवश्य १६ वर्ष से ऊपर रहें होंगे। ग्रन्थ की रचना में कितने वर्ष लगे होंगे इसका कुछ पता नहीं है। पूना से प्राप्त श्लोक के अनुसार इनका जन्म १३४ ई० पू० है और ब्रह्मगुप्त के "खन्डखाद्य" ग्रन्थ की टीका में टीकाकार आमराज इनकी मृत्यु ४२ ई० पू० में बताता है। महाकवि कालिदास भी आचार्य वराहमिहिर को अपना समकालीन बताते हुए अपने ग्रन्थ की रचना का काल ३४ ई० पू० बताते हैं। महाराजा विक्रमादित्य ने भी अपना संवत ५७ ई० पू० में शुरू किया था।

विश्वविख्यात भारतीय ग्रन्थ 'पंचतंत्र' में "उक्तञ्च वराहमिहिरेण" अर्थात वराह मिहिर ने ऐसा कहा है—यह उल्लेख आता है। इस ग्रन्थ का सर्व प्रथम विदेशी भाषा पहलवी में सन् ५५० ई० में अनुवाद हुआ था। उस समय जबकि आज की तरह संचार के साधन बिल्कुल ही सीमित थे, तब इस ग्रन्थ का प्रचार होने में बहुत समय लगा होगा। यदि यह ग्रन्थ भारत में ही लोकप्रिय न होता तब विदेशियों द्वारा उसके अनुवाद का प्रश्न ही पैदा नहीं होता। इस ग्रन्थ के रचना काल के बाद इसे भारत में लोक प्रिय होने के लिए कम से कम उस काल में चार-पांच सौ वर्ष अवश्य लगे होंगे, अतः यह ग्रन्थ इस्वी सन के शुरू के आस पास ही रचा गया होगा। इसमें वराहमिहिर का उल्लेख यह सिद्ध करता है कि वह अवश्य ही ईसा पूर्व काल में रहे होंगे। यदि इसको छटी शताब्दी की रचना मानी जावे तब इसकी दो चार वर्षो में विश्वभर में प्रसिद्धि वाली बात समझ से बाहर है। अतः यह निष्कर्ष निकलता है कि आचार्य वराहमिहिर का जन्म १२४ ई० पू० में हुआ था और उनका निधन ८२ वर्ष की आयु में अर्थात ४२ ई० पर्व में हुआ था।



# ज्योतिषाचार्य वराहमिहिर का कार्यकाल

भारतीय संस्कृति युगों से सराही जाती रही है—अपनी ज्ञान गरिमा की महत्ता के मान में। तभी तो संसार ने इसे सर्वोच्च गुरु आसन प्रदान किया। परिस्थितियों के प्रकोप से हमारे ज्ञानागार ग्रन्थों की थाती छिन्न-भिन्न हो गई, फिर भी जो शेष बची है वह भी संसार के वाङ्मय की तुलना में अधिक है। वह है संस्कृत का ज्ञानकोष, जो आज भी अपनी गरिमा से युग की विविध प्रगतिशील गतियों को मात देने में पूर्ण सक्षम है। इसी संस्कृत ज्ञानराशि की शाखा है—ज्योतिष; जिसकी गणना वेदांगों में की जाती है। ज्योतिषशास्त्र के प्रकाण्ड आचार्य वराहमिहिर इस वेदांग विषय के महान् ज्ञाता थे। इनका कार्यकाल बड़ा ही विवादास्पद है।

वराहमिहिर की जाति और जन्मस्थान के विषय में विशेष मतभेद है और उससे भी गूढ़ समस्या या विवाद है कि वे कब पैदा हुए थे? इस सबंध में चर्चा का एक उपयोगी साधन है।

**आदित्यदासतनयस्तदवाप्तबोधः,**
**कापित्थके सवितृलब्धवरप्रसादः।**
**आवन्तिको मुनिमान्यवलोक्यसम्यग्घोरां,**
**वराहमिहिरो रुचिरां चकार॥**

इसी प्रकार कुतूहल मंजरी के एक श्लोक में लिखा है कि—

**आदित्यदासदृभूद्वेदांगे निपुणो,**
**वराहमिहिरो विप्रे रवेः आशीभिः॥**

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि वराहमिहिर आदित्यदास के पुत्र थे, जो अविन्तका के पास 'कायथा' (वर्तमान) के निवासी थे। ये जाति के ब्राह्मण थे जिन्हें सूर्योपासना से आशीर्वाद प्राप्त हुआ था। सूर्य की कृपा से इन्हें ज्ञान जागृत हुआ और ये वेद-वेदांगों में पारंगत हुए। ज्योतिष-शास्त्र के अनुपमेय ग्रंथों के सृजन में लगे। 'बृहत्संहिता' इनकी एक अमूल्य कृति है जो अंतरिक्ष की ज्ञान गरिमा से मण्डित है और आज की वैज्ञानिक प्रगति को भी मात देने में पूर्ण सक्षम है।

क्रमशः इसकी तुलना कालिदास के रघुवंश १४।४० तथा रघुवंश ३।२२ से किजीये तो स्पष्ट हो जायेगा कि दोनों में कितनी समानता है। वराहमिहिर और कालिदास के ग्रंथों में एतद् विषयक बहुत अधिक सामानता पाई जाती है। कालिदास के समान विक्रमादित्य के नवरत्नों में वराहमिहिर भी थे, जैसा कि ज्योतिर्विदाभरण २२।१० में उल्लिखित है:—

**धन्वन्तरिक्षपणकामरसिंहशंकुवेतालभट्ट,**
**घटखर्परकालिदासाः**
**ख्यातो वराहमिहिरो नृपतेः सभायां**
**रत्नानि वै वररुचिर्नव विक्रमस्य॥**

अवन्तिकाधीश संवत (विक्रम) प्रवर्त्तक शकारि विक्रमादित्य का कार्यकाल ई. पू. प्रथम शताब्दी है और इसी विक्रमादित्य की राजसभा में कालिदास (रघुवंश, कुमारसंभव, मेघदूत, शाकुन्तल के रचियता) थे, वराहमिहिर भी उसी में से एक थे। कालिदास और विक्रमादित्य को किसी भी प्रकार ईसवी पश्चात का नहीं सिद्ध किया जा सकता।

वराहमिहिर के कार्यकाल का निर्धारण निम्नानुसार पुष्ट प्रमाणों से किया जा सकता है। अतः साक्ष्य और वहिः साक्ष्य के आधार पर उन्होंने स्वयं बृहत्संहिता १३।३ में लिखा है। युधिष्ठिर के काल में मुनियों (सप्तर्षि) का आसन मघा नक्षत्र में था,

उनके कालसे २५२६ वर्ष पश्चात् शककाल प्रारम्भ हुआ अर्थात् युधिष्ठिर के काल और शककाल में २५२६ वर्षो का अन्तर है। 'पंच-सिद्धान्तिका' के अनुसार इनका काल शालिवाहन शक संवत् ४२७ ठहराया गया है। पर इसके आधार पर उ हें ई. पू. का नहीं माना जा सकता। तथ्यतः वराहमिहिर ने भी इस शक-संवत् का प्रयोग नहीं किया है, वरन् शक-संवत् दो प्रचलित थे, एक ई. पू. का और दूसरा ७८ ई. पू. वाले शक संवत का प्रयोग किया है। यह संवत् ५५० ई. पू. शाकद्वीप में प्रचलित हुआ।

श्री टी. एस. नारायण शास्त्री के मतानुसार महाराज युधिष्ठिर की मृत्यु ३०७६ वर्ष ई. पू. में हुई थी। युधिष्ठिर कलि और द्वापर की संधिकलि में थे। कलियुग का प्रारम्भ कब से हुआ ? इसके लिये वायु पुराण ९९।४२८, विष्णुपुराण ४।२४।११३ तथा ४।२४।१०९ तथा महाभारत आदिपर्व २।१२ और शांतिपर्व ३३९।८९, ९० द्रष्टव्य है। इनके अतिरिक्त पाश्चात्व ज्योतिर्विद वेली का 'Theogony at the Hindus' Page ३२ भी देखा जा सकता है। भारतीय विद्वान पं. भगवतदत्त द्वारा लिखित 'भारत वर्ष का वृहद् इतिहास' द्वितीय भाग पृष्ठ २१२ भी द्रष्टव्य है। इन विविध पुष्ट प्रमाणों से कलियुग का प्रारम्भ, श्रीकृष्ण का देहावसान तथा युधिष्ठिर का कार्यकाल स्पष्ट हो जाता है।

इसके अतिरिक्त वृहत्संहिता के उक्त श्लोक के द्वारा सप्तर्षियों की स्थिति, गति, आदि ज्योतिष के आधार पर भी शक-काल और वराहमिहिर काल पर प्रकाश पड़ता है। वायु पुराण ११।४१९, ९९।४२३ तथा मत्स्य पुराण २७३।४४।४५, ब्रह्मांडपुराण ३।७४।२३०, २३५ आदि ट्रष्टव्य हैं। इन उदाहरणों से कलि, द्वापर और नक्षत्रों की गतिविधियों से कृष्ण, युधिष्ठिर, परिक्षित आदि के समय का निर्धारण हो जाता है। इसके अतिरिक्त 'खण्डखाद्य' की आमराज टीका में लिखा है कि—

**'नवाधिपंचशतसंख्यशाके वराहमिहिराचार्यो दिवंगतः'**

अर्थात् ५०९ शक संवत् में आचार्य वराहमिहिर का देहावसान हुआ था। इन समस्त स्थापनाओं के अनुसार यदि तथ्यान्वेषण किया जाए, तो युधिष्ठिर काल और शक काल ३०७६, २५२९, ५५० ई. पू., ५५० ई. पू. का शक-संवत् तथा 'पंचसिद्धान्तिका' के अनुसार ४२७ ई. वाला शालिवाहन शक संवत् ५५०—५०९=४१ ई. पू. वराहमिहिर का देहावसान सिद्ध हुआ। इसके अतिरिक्त उनका कार्यकाल भी ५५०—४२७=१२३ ई. पू. ठहरता है। श्री नारायण शास्त्री के गणनानुसार युधिष्ठिर काल से ही वराहमिहिर का काल स्पष्ट हो सकता है। दो शक-संवतों की भ्रांतियों से ही इनके कार्यकाल के निर्धारण में कठिनाइयां आ रही थीं। ५५० ई. पू. वाले शक संवत् को लोग ७८ ई. वाला संवत् समझकर गणना करते, जिससे तथ्य स्पष्ट नहीं होपाता था।

अतः उक्त विवेचन से यह पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है कि ज्योतिषाचार्ष वराहमिहिर आदित्यदास के पुत्र थे जो अवन्तिका के ये समीप 'कायथा' नगरी के निवासी थे। जाति के ब्राह्मण थे तथा इनका कार्यकाल ई. पू. ही था। संवत् प्रवर्तक विक्रमादित्य के नवरत्नों में कालिदास के साथ ये भी थे। अमरकोष रचयिता अमरसिंह भी इनके सहयोगी थे। अवन्तिकाधीश विक्रमादित्य की राजसभा मनीषियों से पूर्ण थी जिसके द्वारा ज्ञान का प्रसार देश-विदेश में किया जाता था। वराहमिहिर उसी में से एक थे। *

# वराहमिहिर का काल-निर्णय

भारत के ज्योतर्विद वराहमिहिर के समय के बारे में इतिहासकारों और विद्वानों में मतभेद हैं। कुछ विद्वान इसे ई. पू. १२३-४१ के बीच मानते हैं और कुछ ने उन का आविर्भाव—काल गुप्तवंशीय चंद्रगुप्त विक्रमादित्य के समय (५०५ ईसवी माना है। जैन अनुश्रुति के अनुसार ये द्वितीय भद्रबाहु के समय उत्पन्न हुए थे और उन के सहोदर थे। मेरे विचार में वराहमिहिर गुप्तवंशीय विक्रमादित्य के समय नहीं हुए थे।

वराहमिहिर की 'पंच—सिद्धांतिका' के अनुसार इन का समय शालिवाहन शक संवत ४२७ अर्थात विक्रम संवत ५६२ (५०५ ई०) ठहराया है और इसीलिए गुप्तवंशीय चंद्रगुप्त विक्रमादित्य के नवरत्नों में इन की गणना की जाती है। किंतु वास्तव में जिस शक-संवत का प्रयोग वराहमिहिर ने किया है वह शालिवाहन शक-संवत से भिन्न था।

शक-संवत के संबंध में 'वराहमिहिर-संहिता' में जो श्लोक है उस के अनुसार युधिष्ठिर के काल और शक-काल में २, ५२६ वर्ष का अंतर है। इतिहासज्ञों के अनुसार युधिष्ठिर की मृत्यु ३०७६ ई. पू. हुई। शक-काल का प्रारम्भ ३०७६—२५२६ ई. पू. अर्थात ५५० ई. पूर्व माना जा सकता है। फलतः वराहमिहिर का समय ५५०—४२७=१२३ ई. पू. हुआ क्योंकि वराह-मिहिर ने 'पंच-सिद्धांतिका' की रचना शक-संवत ४२७ में पूर्ण की। इस के आसपास ही उन की मृत्यु होनी चाहिए। एक विद्वान ने ५०९ शक-संवत में वराहमिहिर की मृत्यु मानी है। इस प्रकार उक्त 'शक-संवत' के अनुसार ५५०-५०९=४१ ई. पू० में इन की मृत्यु हुई। इस से यह ज्ञात होता है कि १२३ ई. पू. से कुछ समय पहले से ले कर ४१ ई. पू. तक वराहमिहिर अवश्य जीवित थे।

जो शक-संवत वराहमिहिर ने प्रयुक्त किया है. वह वर्तमान शालिवाहन-शक-संवत (विक्रम-संवत से १३५ वर्ष बाद प्रारंभ) है या अन्य, इस विषय में डा० सत्यकेतु विद्यालंकार ने विभिन्न ग्रंथों के आधार पर लिखा है—

**"प्राचीन ईरान में एक प्रांत का नाम सैकी था। 'शक' शब्द इस सैकी-प्रदेश में रहनेवालों के लिए प्रयुक्त होता था। मनु के अनुसार शक लोग काम्बोज, पल्हव, पारद और यवन—इन उप-विभागों में विभक्त थे। इन्हीं शक लोगों के राजा साइरस को शक-नृपति के नाम से कहा गया है और इसी के साम्राज्य-स्थापन के समय से वस्तुतः शक-काल प्रारम्भ हुआ था।**

ईरानी इतिहास के अनुसार भी साइरस या शक-नृपति का काल ५५० ई. पू. में प्रारंभ होता है। डा० सत्यकेतु विद्यालंकार ने अपने इतिहास में यह भी लिखा है कि प्राचीन समय में ईरान में एलम नाम का एक राज्य था और साइरस इसी का राजा था। उसने ५५० ई. पू. में अपने पड़ोस के अन्य राज्यों को जीत कर ईरानी साम्राज्य की नींव डाली। हेंदोतस ने लिखा है कि बाद के ईरानी राजा काल की गणना इसी तिथि से करते थे। उस समय भारतीय राजाओं ने साइरस की सहायता की थी। शक-नृपति ने अपने साम्राज्य स्थापन से काल की गणना प्रारंभ कर दी।

अतः वराहमिहिर का समय १२३ से ४१ ई. पू. तक माना जाना ही ठीक है। यदि ये गुप्त-वंशीय चंद्रगुप्त विक्रमादित्य के नवरत्नों में होते तो शक-संवत का उल्लेख

न कर विक्रम-संवत का उल्लेख करते, किंतु इन्होंने कहीं भी अपने ग्रंथों में विक्रम-संवत का उल्लेख नही किया है।

वराहमिहिर के समय, १२३ ई. पू. के आसपास, भारत पर शकों का आक्रमण प्रारंभ हो गया था।

शकों के आक्रमणों को सातवान राजाओं ने सहन नहीं किया। उन में चंद्रगुप्त विक्रमादित्य द्वितीय का प्रादुर्भाव हुआ, जिस ने शकों को परास्त कर 'शकारि' की उपाधि ग्रहण की। इस प्रतापशाली राजा का नाम कुंतल सातकर्णि था। इस ने मुलतान के समीप शक राजा विम की सेनाओं को परास्त कर सातवाहन-साम्राज्य का गौरव बढ़ाया।

इस विक्रमादित्य द्वितीय का साम्राज्य संपूर्ण दक्षिण काठियावाड़, मध्यप्रदेश, बंग, अंग और कलिंग तक फैला था और उत्तर के सब राजा, यहां तक कि कश्मीर के राजा भी, उसके करद थे। अनेक दुर्गों को जीत कर म्लेच्छों का उस ने संहार किया था। उस के बाद उज्जयनी में एक बड़ा उत्सव किया गया, जिस में गौड़, कर्नाटक, लाट, कश्मीर सिंध आदि के अधीन राजा सम्मिलित हुए। विक्रमादित्य का एक शानदार जुलूस निकला, जिस में इन सब राजाओं ने भाग लिया।

श्री छज्जूराम शास्त्री के मतानुसार विक्रमादित्य द्वितीय ने ९५ शक गुणों के नेता विमकड़ फिसिज द्वितीय को मुलतान के पास वरूर प्रदेश में हराया था और उस को उज्जयिनी ला कर छोड़ दिया था। विक्रमादित्य द्वितीय की राजधानी प्रतिष्ठान (पैठन) थी, परंतु उस समय वह उज्जयिनी में रहने लगा था।

इसी प्रतापी सातवन राजा विक्रमादित्य द्वितीय के समय के आसपास वराहमिहिर का समय माना जा सकता है और विक्रम-संवत का प्रारंभ भी यहीं से माना जाना चाहिए। जिस शक-संवत का प्रयोग वराहमिहिर ने किया, वह शाकद्वीप में ५५० ई. पू. में प्रारंभ हुआ था।

'ज्योतिर्विदाभरण' ग्रंथ के अनुसार रूम देश राजा शकेश्वर को वीरविक्रम सातवाहन विक्रमादित्य द्वितीय ने ही मारा था।

'राजतरंगिणी' का विक्रमादित्य भी सातवाहन विक्रमादित्य ही मालूम होता है।

इस प्रकार शकों का उच्छेद करने के लिए सातवाहन-वंशीय राजा गौतमी पुत्र सातकर्णि (विक्रमादित्य द्वितीय) ने लगभग ७६ ई. पू. से ४४ ई. पू. के आसपास तक महत्त्वपूर्ण कार्य किया। इसीलिए वह शकारि और विक्रमादित्य कहलाया। पर, शकों का उच्छेद करने में गण-राज्यों (मालव-गणों) का भी काफ़ी हाथ रहा था। इसी विजय के उपलक्ष्य में मालवगण ने नये प्रकार के सिक्के जारी किये थे, जिन पर 'मालवान जय' और 'मालवगणस्य जय' आदि अंकित हैं। इसलिए कई इतिहासज्ञों का मत है कि विक्रम-संवत का प्रारंभ भी मालवों की इस विजय के उपलक्ष्य में ही हुआ था। अनेक इतिहासज्ञों का मत है कि जिस वीर पुरुष ने शकों को परास्त कर मालव-गण का उत्कर्ष किया, उस का नाम विक्रम था।

यदि सातवाहन चंद्रगुप्त विक्रमादित्य (द्वितीय) को ई. पू. ७६ से ई. पू. ४४ तक माना जाता है तो यही समय वराहमिहिर (ई. पू. १२३ से ई. पू. ४१ तक) का होता है। अर्थात समझना चाहिए कि सातवाहन चंन्द्रगुप्त विक्रमादित्य (द्वितीय) के समय ही वराहमिहिर रहे हैं। इसी विक्रमादित्य राजा के समय विक्रम-संवत माना जाये तो वराहमिहिर विक्रम-संवत १६ के आस-पास अवश्य जीवित थे। इस बात की पुष्टि के लिए जैन अनुश्रुति को भी दृष्टिगत रखना होगा, जिस के अनुसार वराहमिहिर भद्रबाहु द्वितीय के सहोदर थे।

कुछ इतिहासज्ञों ने वराहमिहिर का गुप्तवंशीय चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के नवरत्नों में उल्लेख कर इनका समय ५०५ ई० निश्चित कर दिया।

श्री नेमीचन्द्र शास्त्री ने भी 'भारतीय ज्योतिष' में वराहमिहिर का ५०५ ई० में होना ही स्वीकार किया है। जैन विद्वानों से आग्रह है कि वे भद्रबाहु द्वितीय की गुर्वावली को सही मान कर अपनी गुरु परम्परा के इतिहास पर दृष्टि डालें तो वे मेरे विचार से सहमत होंगे।

# आर्यभट्ट, वराहमिहिर और कालिदास का समय

ज्योतिशास्त्र के इतिहास में प्रमाण भूत शास्त्रों के निर्माण कर्त्ता के रूप में—विख्यात वराहमिहिराचार्य, आर्यभट्ट और संस्कृत साहित्य के अग्रणी महाकवि कालिदास ये तीनों विश्वविख्यात आचार्य थे। इनके जन्म के सम्बन्ध में विद्वानों में अनेक मतभेद पाये जाते हैं। ऐसे महत्वपूर्ण विवादास्पद चर्चा के निराकरण के लिए यहां भिन्न-भिन्न प्रमाणों द्वारा यह निश्चय किया गया है कि—यह तीनों महापुरुष ईसा की प्रथम शताब्दी में उत्पन्न हुए हैं। इस मान्यता के अनुसार सम्राट विक्रमादित्य के संवतसर का भी अनुमोदन होता है। इसके अतिरिक्त इस विवेचन में आर्यभट्ट, वराहमिहिर और कालिदास नाम वाले अनेकानेक आचार्यों के होने पर भी मूल—आर्यभट्ट—वराहमिहिर—कालिदास पर वास्तविक प्रकाश पड़ता है।

## आर्यभट्ट

आर्यभट्ट का जन्म कुसुमपुर नगर में हुआ था, (जो इस समय बिहार में पटना के निकट है) यह प्रमाण 'आर्यसिद्धान्त'—गणितपाद में इस प्रकार मिलता है:—

**'आर्यभटात्वह निगदति**
**कुसुमपुरे ऽभ्यर्चितं ज्ञानम्'**
(प्रथम आर्या)

'कालक्रियापाद' में इनके जन्म सम्बन्ध में इस प्रकार उल्लेख मिलता है:—

**षष्टयब्दानां षष्टिर्यदा**
**व्यतीता स्त्रयश्च युगपादाः।**
**त्र्यधिका विंशतिरब्दास्तदेह**
**मम जन्मनोऽतीताः॥**

इस प्रकार त्रय युगपाद अर्थात् ३६०० वर्ष कलियुग के व्यतीत होने पर उनकी आयु २३ वर्ष की थी। "बृहत्संहिता"—टीका में भट्टोत्पल ने आर्यभट की बहुत सी आर्याएं उद्धृत की हैं, वह परस्पर मिलती हैं। वराहमिहिर ने भी अपनी "पञ्चसिद्धान्तिका" में आर्यसिद्धान्त का उल्लेख किया है, इस प्रकार भी इनकी समकालीनता सिद्ध होती है। इन उक्त प्रमाणों से आर्यभट्ट का गणितारम्भ समय शक ४२७ अर्थात् कलियुगाब्द ३६०० में ही सिद्ध होता है।

एक प्रश्न शेष रह जाता है कि आर्यभट्ट जैसे महान प्रखर विद्वान को नवरत्नों में स्थान क्यों न मिला? इस प्रश्न का उत्तर इतना ही पर्याप्त है कि—विक्रमादित्य के नवरत्नों के नाम अधिकांश में संकेत वाचक हैं। इनमें आर्यभट्ट का होना पूर्ण सम्भावित है, अथवा—पाटलीपुत्र और उज्जैन की दूरी विशेष के कारण—नवरत्नों में सम्मिलित न हो सके हों या पाटलीपुत्र और अवन्ति—पृथक्-पृथक् गणतन्त्र होने से अवन्ति में ना आ सके हों। इस मध्यकालीन इतिहास की कड़ी लुप्त ही रह गयी जिसमें प्रकाश न पड़ सका। किन्तु यह ऐतिहासिक तथ्य हो सकता है कि आर्यभट्ट किसी साङ्केतिक नाम से नवरत्नों में रहे हों यह अधिक सम्भव है। डॉ० केर्न द्वारा उद्धृत श्लोक में आर्यभट्ट की प्रतिभा की चमत्कृति इस प्रकार वर्णित है:—

**सिद्धान्तपञ्चकविधावपि दृग्विरुद्धा**
**मौढ्योपरागमुख खेचर चार कल्पौ।**

**सूर्यः स्वयं कुसुमपुर्यभवत् कलौतु**
**भूगोलवित् कुलप आर्यभटाभिधानः ॥**

इस प्रकार अलौकिक दैवी प्रसाद युक्त दिव्यज्ञान के स्रष्टा गणित के महान ज्ञान के समुद्र आर्यभट्ट विक्रम के नवरत्नों में न हों यह सम्भव नहीं हो सकता । हां वह किसी सांङ्केतिक नाम से भले ही रहे हों, यह सम्भव है । इस सम्बन्ध में यह महत्वपूर्ण विचारणीय है कि जिस विक्रमादित्य की सभा नवरत्नों से सुशोभित थी और जिसके द्वारा संवत् प्रचारित हुआ उसके संवत् और प्रचलित शकाब्द को छोड़कर देखिये कि—आर्यभट्ट का गणितारम्भ शक ४२१ में है । इस हिसाब से वह विक्रम संवत् के कई शताब्दियों के पश्चात आता है इससे—'शक ४२१ कलियुग, ३६००, उम्र वर्ष २३' के आर्यभट्ट सम्बन्धी उल्लेख से ऐसा कहा जा सकता है कि शके ४२१ उनका समय जो निर्धारित किया गया है, वह विक्रम के कई शताब्दियों के बाद आता है, इस लिए वह विक्रम के नवरत्नों में कैसे हो सकते हैं ? किन्तु यह धारणा ही गलत है, क्योंकि--सम्राट विक्रम के पूर्व भी शकाब्द प्रचलित था, प्रमाण कल्हण की रचनाओं में देखा जाता है । इतिहास में प्रचलित शालिवाहन शक जो विक्रम से १३५ वर्ष बाद आता है उसी को एक मात्र शक समझ लेना इतिहास को गलत समझना है और इसी से भ्रम हो रहा है अर्थात् यह भ्रान्त धारणा है बल्कि विक्रम के नाम जो 'शकारि' विशेषण इतिसासे में पाये जाते हैं उससे वह सुस्पष्ट है कि विक्रम से पूर्व जो प्रचलित शक था उसे विक्रम ने उन्मूलन कर अपना सम्वत् चलाया, इससे 'शकारि' सिद्ध होते हैं—

अन्यथा विक्रम के १३५ वर्ष बाद जो एकमात्र शालिवाहन शक इतिहासज्ञों की दृष्टि में है उसको ही एक मात्र 'शक' शब्द मानने पर ही तो भ्रान्त धारणा फैल रही है और इससे ही अनेक शताब्दियों की भूल हो रही है । गणतोपयोगी शक इस्वीसन् से भी पहले का है जबकि शालिवाहन शक इस्वीसन् के बहुत बाद से आरम्भ होता है । सिद्धाँताकर जिस शक काप्रयोग करते आये हैं वह विक्रम और इस्वी के पूर्व का है और उसी का प्रयोग—प्रचार उस समय था, उस दृष्टि से—विक्रमादित्य का संवत्सराम्भ—शाके ५२१ युधिष्ठिर संवत् ३०४४ से होता है, इस तुलनात्मक समय गणना से यह सब निर्विवाद सिद्ध होता है ।

## (१) आचार्य वराहमिहिर—

ज्योतिशास्त्र के प्रवर्त्तक आचार्य वराह मिहिर का जन्म अवन्तिका के वर्तमान उज्जयिनी नगरी के निकट कपित्थक गाँव में हुआ था, इस समय वह कायथा नाम से मशहूर है और उज्जैन से १४ मील दूर है । वराहमिहिराचार्य के पिता आदित्यदास सूर्य के उपासक थे, ज्योतिष शास्त्र का ज्ञान वराहमिहिर को अपने पिता के द्वारा ही हुआ था । बृहज्जातक वराहमिहिराचार्य के ग्रन्थ में, उपसंहार अध्याय के नवें श्लोक में इसका प्रमाण इस प्रकार है:—

**आदित्यदासतनयस्तदवाप्तबोधः**
**कापित्थके सवितृ लब्धवरप्रसादः ।**
**आवन्तिको मुनिमतान्यवलोक्यसम्यग्**
**होरां वराहमिहिरो रूचिरांचकार**

इसी प्रकार 'ज्योविदाभरण' के निम्न श्लोक के अनुसार सम्राट विक्रमादित्य की राज्यसभा में जो नवत्न थे उनमें वराहमिहिर भी एक थे—

यथा—

**धन्वन्तरिःक्षपणकामरसिंह शंकु**
**वेतालभट्टघटखर्परकालिदासाः ।**
**ख्यातो वराहमिहिरो नृपतेः सभायां**
**रत्नानि वै वररूचिर्नव विक्रमस्य ॥**

श्री वराहमिहिराचार्य ने यात्रा, विवाह, गणित (करण) होरा और संहिता के ग्रन्थों के अतिरिक्त सिद्धान्तग्रन्थों की रचनाएँ की हैं—बृहज्जातक, लघुजातक, बृहद्विवाह पटल, समाससंहिता, बृहत्संहिता, पञ्च-सिद्धान्तिका वगैरह ग्रन्थों के रचयिता का जन्म सुस्पष्ट होने पर भी आधुनिक विद्वान युधिष्ठिर और कलियुगाब्दारम्भ की उपेक्षाकर—भिन्न-भिन्न वराहमिहिर मानते हैं किन्तु इसके लिए उनके पास और सबल प्रमाण नहीं हैं।

यह तो निर्विवाद है कि वह विक्रमादित्य के नवरत्नों में से एक थे, इससे वह महाकवि कालिदास के समकालीन भी थे। 'पञ्चसिद्धान्तिका' (पौलिश रोमक, वसिष्ठ, सौर और पैतामह) में आर्यभट्ट का इन्होंने उल्लेख किया है। इससे आर्यभट्ट भी इनके समकालीन ही सिद्ध होते हैं, और आर्यभट्ट की समय निर्देशन की आधुनिक विद्वानों की अटकल भी निर्मूल सिद्ध होती है।

## 'महाकवि कालिदास'

महाकवि कालिदास और ज्योतिर्विदाभरण के रचयिता कालिदास यह दोनों एक ही हैं, इस सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद हैं वह इन्हें पृथक्-पृथक् मानते हैं, किन्तु उनके ग्रन्थ "ज्योतिर्विदाभरण" के अनुसार वह विक्रम के नवरत्नों में से एक थे, इसके अतिरिक्त वह ग्रन्थोपक्रम के विषय में लिखते हैं—

**वर्ष सिन्धुरदर्शनाम्बर गुणै**
**(३०६८) र्याते कलौसम्मिते।**
**मासे माधव संज्ञिते च**
**विहितो ग्रन्थक्रियोपक्रमः॥**

इस श्लोक में गत कलि वर्ष ३०६८ अर्थात विक्रम सं० २४ का उल्लेख मिलता है, तथा

**शाकः शराम्भोधियुगो (४४५) नितो-**
**हतोमानं खतर्कैरयनांशकाश्युः।**

इस श्लोक में अयनांश निर्माण रीति बतायी गयी है और इस संदर्भ में वराह मिहिर का उल्लेख किया गया है—

**मत्वा वराहमिहिराभिमतैः**

इससे वराहमिहिर की कालिदास तथा आर्यभट्ट की समकालीनता भी सिद्ध हो रही है।

महाकवि कालिदास के साहित्य ग्रन्थों में भी प्रकृति वर्णन के साथ-साथ उनकी रचनाओं में भूगोल-खगोल के सहित ज्योतिर्विज्ञान का भी प्रचुर वर्णन पाया जाता है। यह हो सकता है कि वह वराहमिहिर-आर्यभट्ट की तुलना में न आते हों तथापि उन्होंने ज्योतिर्विदाभरण की जो रचना की है, उससे उनका ज्योतिषज्ञान पूर्ण चरितार्थ होता है और वह रचना निश्चित उनकी ही है, इसमें शङ्का नहीं।

रघुवंश, कुमारसम्भव, अभिज्ञान शाकुंतल, मालविकाग्नि मित्र, विक्रमोर्वशी प्रभृति काव्य-नाटकों के प्रयुक्त श्लोकों में अन्तर्हित ज्योतिर्विज्ञान का अभी शोध नहीं हुआ अन्यथा ज्योतिष ज्ञान पर कालिदास की विशेष प्रतिभा का परिचय मिल सकता था।

यदि इस पर 'शोध' की जाय तो अप्रकाशित इतिहास पर महान प्रकाश पड़ सकता है और भ्रान्त धारणाएँ दूर हो सकती हैं। जैसे—कुमार सम्भव की समय तालिका में वर्णित द्वितीयसर्ग के २९ वें श्लोक में

**गुणं नेत्र सहस्त्रेण (२०००)**
**नादयामासवासवः।**
**स द्विनेत्रंहरेश्चक्षुः**
**सहस्रनयनाधिकम् (२२२३)।**

अर्थात—२२२३ वासवोदय वर्ष है, युधिष्ठिर काल में इसे परिवर्तित करने के

लिए ८२१ परीक्षित काल में इसे जोड़ देने से शेष युधिष्ठिर सं० ३०४४ आता है, याने जिस समय यह रचना हुई, उस समय ही विक्रम सं० का आरम्भ होता है, जैसे—युधिष्ठिर सं० ३०४४+२०२८ विक्रम सं० का योग किया तो—५०७२ गत कलि हुआ। इत्यादि

## समय गणना

"ज्योतिर्विदाभरण" में कालिदास उल्लिखित कलि सं० ३०६९ शक ४४५ का उपयोग किया गया है, इससे —

**कालिदास**—कलिवर्ष ३०६९ ईस्वी सन् पूर्व का शकाब्द ४४५ उम्र ४७।

**वराहमिहिर**—कलिवर्ष ३०४२ ई० सन् पूर्व का शकाब्द ४२७ उम्र २९।३०

**आर्यभट्ट**—कलिवर्ष ३०४२ ई० सन् पूर्व का शकाब्द ४२१ उम्र २३।२४

युधिष्ठिर सं० ३०४४ में कलियुग के ३६०० वर्ष होते हैं।

इसमें आर्यभट्ट का शक ४२१ है, शक के पूर्व+विक्रम सं० १३५ चन्द्रभगण= ५५६ चन्द्रगति आवे, उसे कलियुग ३६०० में ऋण करने से ३०४४ युधिष्ठिर सं० आता है, उसमें आर्यभट्ट की उम्र २३ जोड़ने से ३०६७ कालिदासोक्त वर्ष आते हैं, जो कि उनके "ज्योतिर्विदाभरण" की रचना का है।

वराहमिहिर के ३०४२ और शक ४२७ में कालिदास की उम्र का अन्तत (४७ =२९+९५) जोड़ने से कालिदास का समय ४२७+१८=४४५ आ जाता है, उसमें कालिदास और आर्यभट्ट की अवस्था का अन्तर (४७-२३=२४) ऋण करने से आर्यभट्ट का समय ४४५-२४=४२१ आ जाता है। इस प्रकार गत कलियुग और युधिष्ठिर संवत के प्रभेद के स्पष्टीकरण के अभाव के कारण यह ऐतिहासिक भ्रान्ति और भ्रम पैदा हुआ है, यह उक्त विवेचन से निभ्रम और वास्तविक रूप से स्पष्ट हो जाता है।

इस तुलनात्मक स्पष्टीकरणयुक्त विवेचन से यह तथ्य निकला कि —

(१) महाकवि कालिदास, आर्यभट्ट और वराहमिहिर समकालीन थे और विक्रम सं० प्रवर्त्तक, (शकारि) विक्रमादित्य द्वारा यह सम्मानित थे।

(२) शकों के उद्भव के पश्चात भले ही 'शकारि' का जन्म हुआ हो किन्तु पूर्व प्रचलित शक को उच्छेद करने से 'शकारि' विशेषण का विक्रम के नाम पर नियोजन हुआ।

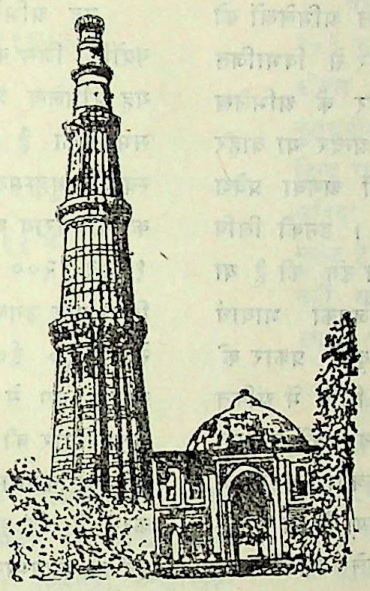
(३) कुमार सम्भव के पूर्वोक्तश्लोक के आधार पर २३२२ और २०००= ४३२२ होना है, सम्पातगति के अनुसार ४३२० वर्ष में २ राशियां पूरी होती है, ये युगसंज्ञक हैं, इसमें २ वर्ष अधिक होतें हैं।

(४) ईस्वी सन् के आरम्भ से सम्पात समय २३२० पूर्व का है और ईस्वी सन् गणना का आधार भी सम्पातिक ही है, ऐसा प्रतीत होता है।

(५) कृतिका का आरम्भ काल विक्रम संवत से ४२१ पूर्व आर्यभट्ट मानते है, वैसे ही वराहमिहिर ४२७ और कालिदास ४४५ वर्ष पूर्व मानते हैं, यही तो पूर्व प्रचलित शक वर्षो की गणना है।

शक प्रर्वतक काल निर्णय के लिए यह निश्चित सामग्री, परिचय, संशोधन विद्वानों की जानकारी के लिए भ्रान्ति निवारणार्थ पर्याप्त होगा। *

# कुतुबमीनार



**वराहमिहिर** के नाम पर बसी हुई मिहिरावली (महरौली) में स्थित यमुना स्तम्भ, विजय स्तम्भ, कीर्ति स्तम्भ, सूर्य स्तम्भ, वेध स्तम्भ, विक्रम स्तम्भ, विष्णु ध्वज, ध्रुव ध्वज, मेरू ध्वज, पृथ्वीराज की लाट, दिल्ली की लाट, महरौली की लाट, कुतुब की लाट एवं कुतुब साहेब की लाट आदि-आदि नामों से विख्यात तथा कथित कुतुबमीनार या कुतुबमनार वास्तव में ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी में विश्व के महान खगोलवेत्ता भारत विभूति आचार्य वराहमिहिर द्वारा निर्मित विज्ञान मन्दिर (वेधशाला] का मध्यवर्ती मेरूस्तम्भ है, यह बहुत कम लोगों को मालूम है। कुतुबमीनार के नाम से प्रसिद्ध इसी मेरूस्तम्भ की सच्ची कहानी को इन पृष्ठों में प्रस्तुत किया गया है।

—सम्पादक

# कुतुबमीनार के अभिलेख

●

कुतुबमीनार पर अंकित अभिलेखों को हम मुख्य रूप से तीन प्रकार से विभाजित कर सकते हैं। प्रथम प्रकार के अभिलेख वह हैं जो कुतुबमीनार के अन्दर या बाहर गुप्त स्थानों या रोशनदानों अथवा प्रवेश द्वारों के कोनों में अंकित हैं। इनकी लिपि भी विचित्र अथवा पुराने ढंग की है या ऐसे गूढ़ अक्षरों में है जिनका भावार्थ समझना भी कठिन है। दूसरे प्रकार के अभिलेख स्पष्ट देव नागरी लिपि में अंकित हैं जिन्हें समय-समय पर भवन की मरम्मत करने वाले हिन्दू राज मिस्त्रियों ने स्वेच्छा से कई स्थानों पर लिख दिया है या कुतुब-मीनार को देखने आने वाले दर्शकों द्वारा उन्हें अंकित किया गया है। तीसरे प्रकार के अभिलेख अरबी अथवा फारसी में अंकित वह अभिलेख हैं जो तत्कालीन मुस्लिम शासकों द्वारा भवन के बाहर किन्तु महत्व-पूर्ण स्थानों पर अंकित किये गये हैं। प्रथम प्रकार के अभिलेखों का विवरण इस प्रकार है—

## संवत १२५६

कुतुबमीनार में तीन स्थानों पर संवत १२५६ अंकित है। इनमें एक स्थान तो मुख्य प्रवेश द्वार के बाहर दायें हाथ को है और शेष दो स्थान मुख्य प्रवेश द्वार के अन्दर बायें हाथ तथा सीढ़ियों के पास महराब में हैं। अभिलेख को ऊपर से खरौंच दिया गया हैं जिससे अक्षरों के पढ़ने में कुछ अस्पष्टता आ गयी है।

यह अभिलेख इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि जिस काल को (सन् ११९६ ई०) यह अभिलेख प्रदर्शित करता है वह उस समय का है जब कुतुबुद्दीन एबक अपने स्वामी मुहम्मद गौरी की ओर से दिल्ली का वायसराय था। मुहम्मद गौरी ने सन् ११९३-१२०० ई० तक दिल्ली पर राज्य किया और उसके मरने के बाद सन् ११०६ से १२१० ई० तक कुतुबुद्दीन एबक ने स्वतंत्र रूप से दिल्ली पर शासन किया। कुतुबमीनार की प्रथम मंजिल में इस अभि-लेख का विद्यमान होना इस बात की पुष्टी करता है कि कुतुबुद्दीन के राज्य काल से पूर्व ही कुतुबमीनार मौजूद थी बल्कि उसकी पहली मंजिल तो प्रत्येक दशा में विद्यमान थी। अतः जो लोग कुतुबुद्दीन एबक को कुतुबमीनार का निर्माता मानते हैं यह अभिलेख उनके मुंह पर एक चपत है।

## संवत १२०४

कुतुबमीनार की दूसरी मंजिल में एक स्थान पर संवत १२०४ अंकित है। अभिलेख पर खरौंच होने के कारण इसके अक्षर २ को कई लोगों ने ७ पढ़ा है जिससे संवत १७०४ (सन् १६४७ ई०) बैठता है अभि-लेख को २ के स्थान पर ७ बताने वाले भारतीय पुरातत्व विभाग के तत्कालीन सुपरिन्टेन्डेन्ट मिस्टर जे० ए० पैज तथा रायबहादुर दयाराम साहनी मुख्य ये। श्री कंवर सैन (जम्मू-काश्मीर के भूतपूर्व मुख्य

न्यायाधीश) ने इस अभिलेख को संवत १२०४ ही सिद्ध किया था। यदि यह अभिलेख वास्तव में संवत १२०४ (सन ११४७ ई०) का है तो इससे सिद्ध होता है कि कुतुबमीनार सम्राट पृथ्वीराज के शासन (सन ११७५ से ११९३ ई०) से पूर्व विद्यमान था और इस पर मुस्लिम शासकों के झूठे दावे निराधार सिद्ध हो जाते हैं।

ना १ स ११६७३
२ त्रो
ना ३ स्त
४ रुरो १० ता
५ घे ११ म
६ श्रे
७ लो
८ था
९ वा

कुतुबमीनार के रोशनदानों में अन्दर की ओर कई स्थानों पर गूढाक्षरों में गणनाएं अंकित हैं। यही नहीं, कहीं-कहीं पर तो महराब की शक्लों के आकार भी खुदे हुए हैं जिन पर विचित्र प्रकार की १ लिपि में अंक खुदे हुए हैं। यह सभी इस बात के द्योतक हैं कि इन रोशनदानों में बैठकर जो लोग रात्रि के समय ग्रह एवं नक्षत्रों का निरीक्षण किया करतें थे, उन्होंने ही अपनी-अपनी सुविधा एवं मति के अनुसार ज्योतिष की गणना तथा ग्रह—नक्षत्रों की दूरियों को अंकित किया हुआ है। चूंकि यह विशाल भवन वेधशाला थी अतः इसके आदि निर्माता आचार्य वराह-मिहिर या उनके शिष्यों द्वारा यह गणनाएं अंकित की गयी होगी, ऐसा हम निश्चित रूप से कह सकते हैं। उपरोक्त पंक्तियां भी इसी प्रकार के ज्योतिष सम्बन्धी अभिलेखों में से एक हैं।

## दूसरी प्रकार के अभिलेख

कुतुबमीनर के मुख्य प्रवेश द्वार के बाहर एक तरफ इस प्रकार का एक अभिलेख अंकित है—

**संवत १४६४ समाप्त सूत्राधारा**
**पदुमावि साई सत्राधारा सविता**

यह अभिलेख संवत १४६४ (सन १४०७ ई०) का है और इसको अंकित करने वाला केवल तत्कालीन मुस्लिम शासकों द्वारा कुतुबमीनार की मरम्मत इत्यादि करने वाला हिन्दू राज मिस्त्री ही हो सकता है। इसमें सविता (सूर्य) एवं समाप्त का अर्थ तो स्पष्ट है किन्तु अन्य शब्दों के अर्थ समझ में नहीं आते हैं। इसी प्रकार से अन्य दो स्थानों पर संवत १४६४ भी खुदा हुआ है।

कुतुबमीनार के प्रवेश द्वार के ठीक पीछे नीचे की ओर नीव के पास इसी प्रकार का एक अन्य अभिलेल है जो पत्थर के चट्टख जाने से और उस पर पुरातत्व विभाग के कार्यकत्ताओं की लापरवाही एवं गलत रीति से मसाला-सीमेन्ट लगाने से विकृत हो गया है।

**- - -म गज ५१।।—८३। दाश्नामात्र**

यह अभिलेख भी हिन्दूराज मिस्त्री द्वारा अंकित है जिसने भवन की ऊंचाई इत्यादि को गजों में बनाने का प्रयास किया है। यदि यह अभिलेख स्पष्ट होता तो कुतुबमीनार के सही निर्माता का विवाद ही शायद समाप्त हो जाता : सम्भव है अभि लेख सम्राट विक्रमादित्य के राज्य में ही राज कारीगरों ने इसे अंकित किया हो जो इस भवन को बना रहे थे। संस्कृत का अल्प ज्ञान होने पर भी राज कारीगर ने अपनी बात स्पष्ट लिखने की भरपूर कोशिश की है।

**पिरथी निरपः स्तम्भ, मलिकदीन की कीरतिस्तंभ, सुलत्राण उल्लाउद्दीन की जयस्तम्भ ।**

प्रथम दोनों अभिलेख तो कुतुबमीनार की पहली मंजिल में ही अंकित हैं तथा तीसरा अभिलेख तीसरी मंजिल में अंकित है ।

"पिरथी निरपः स्तम्भ" से अभिप्राय केवल महाराजा पृथ्वीराज चौहान से ही है जिसका शासन काल सन ११७५ से ११९३ ई० तक रहा है । सम्भव है उन्हीं के राज्य काल में किसी राज कारीगर अथवा दर्शक या अन्य व्यक्ति ने इसे अंकित कर दिया हो । यदि यह उसी काल का अभिलेख है तो कुतुबुद्दीन आदि मुस्लिम शासकों के सम्बंध में कुतुबमीनार के निर्माण की दैत कथाएँ समाप्त हो जाती हैं । अभिलेख अंकित करने वाला व्यक्ति संस्कृत का अल्प ज्ञाता होने के कारण ही "पृथ्वीनृपः" के स्थान पर "पिरथीनिरपः" ही लिख गया है ।

इसी प्रकार से किसी मुस्लिम शासक मलिक दीन ने भी अपने आपको कुतुबमीनार का दावेदार घोषित करने के लिए संस्कृत का अल्प ज्ञान रखने वाले किसी व्यक्ति से "मलिकदीन की कीरति स्तंभ" खुदवा दिया है । अभिलेख दो बार खुदा हुआ है जबकि दूसरी बार केवल मोटे अक्षरों में "मलिकदीन" ही अंकित है ।

तीसरा अभिलेख अवश्य महत्वपूर्ण है क्योंकि यह अलाउद्दीन खिलजी (सन १२९५ से १३१५ ई०) को कुतुबमीनार का दावेदार घोषित करता है। यदि यह दावा सत्य है तो बेचारे कुतुबुद्दीन और अल्तुतमिश कहां मुंह दिखाएँगे । अलाउद्दीन ने सन १३११ से १३१६ ई० तक कुतुबमीनार के समान एक अन्य मीनार (इलाही मीनार) के निर्माण का कार्य तो जरूर शुरू किया था जो उसे बीच में ही छोड़ना पड़ा, किन्तु कुतुबमीनार को उसने अपना जयस्तम्भ घोषित करके समस्त मुस्लिम शासकों के झूठ को स्पष्ट करदिया है।

**समत १४२५ वर्ष फाल्गुणवदि १५ गुरूदिने फेरोज शाहि के राजि बीजु पड़ो बाहुडि उस रायो सूचना ना माल्हा लोला लषमणा समत १४२५ वर्ष**

उपरोक्त अभिलेख स्पष्ट देवनागरी लिपि में कुतुबमीनार की चौथी मंजिल की गोलाई में अंकित है । इस अभिलेख में सन् १३६८ ई० में तत्कालीन मुस्लिम शासक फीरांज शाह तुगलक के काल में कुतुबमीनार पर बिजली गिरने से जो क्षति हुई थी, उसकी मरम्मत करवाने का उल्लेख है । ऐसा ही एक अभिलेख इस अभिलेख के साथ और भी अंकित है—

**मुहम्मद सुरत्राण की राजि भादव सादि बीजु षडिसातमि दिने घटिका २५ जणकमालाः संवत १३८२ वर्ष ।**

इस अभिलेख में सन् १३२५ ई० में कुतुबमीनार पर बिजली गिरने और तत्कालीन मुस्लिम शासक मुहम्मद सुलतान द्वारा भवन की मुरम्मत करने का उल्लेख है । दोनों अभिलेखों में महीना, तिथि, वार एवं समय आदि का संकेत भी किया गया है । अभिलेखों को अंकित करने वाले हिन्दू राज कारीगर ही हो सकते हैं जिन्होंने उस समय यहाँ पर कार्य किया होगा । इन अभिलेखों में एक और बात उल्लेखनीय है कि इनमें भवन को कुतुबमीनार या मुस्लिम भवन कहीं भी नहीं कहा गया है ।

## विश्वकर्मा प्रासादे

कुतुबमीनार की पांचवी मंजिल में प्रवेश द्वार के बाहर एक छोटे से स्थान पर फीरोज शाह तुगलक के समय के एक हिंदू राज कारीगर का चित्र है । दुर्भाग्य से पुरातत्व विभाग के कर्मचारियों ने इसकी भी उचित देखरेख नहीं की है और इस पर किसी

रंग का लेप कर दिया है। अभिलेख स्पष्ट पढ़ा जाता है—

**ओं स्वस्ति श्री सुरित्राण फेरोजशाहि विजयराजे संवत १४२६ वरिष फाल्गुण सुदि ५ शुक्रदिने मुकरो जीर्णोद्धार कृत श्री विश्वकर्मा प्रासादे सूत्रधारी चाहड-देवपाल सुतदोहित्र सूत्रपातः प्रतिष्ठा नियातित उदैगज ९२।**

यह अभिलेख इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि इसमें कुतुबमीनार को "विश्वकर्मा प्रासाद" कहा गया है। इससे यह बात तो स्पष्ट ही हो जाती है कि ईसवी चौदहवीं शताब्दी के अन्त तक इस विशाल भवन को मुस्लिम शासकों की कृति नहीं माना जाता था। विश्वकर्मा प्रासाद से तात्पर्य देवताओं के इञ्जीनियर श्री विश्वकर्मा से हो सकता है या महाराजा विश्वकर्मा से हो सकता है जिसे चक्रवर्ती राजा कहा गया है। कुछ भी हो जब फीरोज शाह तुगलक के काल में जन साधारण इस भवन को विश्व-कर्मा प्रासाद अर्थात हिंदू भवन समझा जाता था तब इसका सम्बन्ध मुस्लिम शासकों से किसी भी दशा में नहीं जोड़ा जा सकता।

## तीसरे प्रकार के अभिलेख

यह अभिलेख अरबी एवं फारसी में भवन के बाहर गोलाईदार पट्टियों अथवा प्रवेश द्वारों के ऊपर अंकित हैं। इन अभि-लेखों में केवल फीरोजशाह तुगलक एवं सिकन्दर लोधी के अभिलेखों को छोड़ कर शेष सभी अभिलेख अविश्वसनीय हैं। यह समस्त अभिलेख तत्कालीन मुस्लिम शासकों द्वारा बाद में समय-समय पर अंकित करवाए गए हैं बल्कि अभिलेखों को बाद मे जड़ा गया है या चिपकाया गया है। प्रायः सभी अभिलेख अधूरे और बिना किसी योजना के हैं। अभिलेखों के मध्य में कमल के फूल, घंटियां, चक्र और बिन्दू (जो ज्योतिष सम्बन्धी गणना के लिए बनवाए गए थे) अब भी स्पष्ट दिखाई दे रहे हैं। ध्यान देने की बात है यदि यह अभिलेख भवन निर्माण के समय से ही खुदाए गये होते, तब इन अभिलेखों में कमल के फूल और घंटियां एवं चक्र क्यों बनाए जाते जबकि यह सभी मुस्लिम धर्म के विरुद्ध हैं। प्रसिद्ध मुस्लिम नेता सर सैय्यद अहमद खां ने सब से पहले इन अभिलेखों को एक मजबूत टोकड़े में बैठ कर पढ़ा था। वह टोकड़ा मजबूत रस्सों द्वारा बंधा हुआ था। सर सैय्यद ने भी इन अभिलेखों को बिना किसी योजना एवं उद्देश्य से लिखा हुआ बताया है। उन्होंने इन अभिलेखों की भाषा एवं अक्षरों को भी गलत बताया है तथा अपनी प्रसिद्ध कृति 'असर-उस-संदिद' में स्पष्ट तौर पर लिखा है कि यह भवन राजपूत काल में निर्माण हुआ ही प्रतीत होता है।

## मुईजुद्दीन-ग्यासुद्दीन एवं कुतुबुद्दीन

यह अभिलेख कुल मिलाकर चौदह हैं। प्रथम खंड में तीन अभिलेखों में केवल पवित्र कुरान की आयतें ही अंकित हैं जबकि शेष तीन अभिलेखों में से एक अभिलेख मुईजुद्दीन मुहम्मद बिनसाम (शहाबुद्दीन मुहम्मद गौरी), एक अभिलेख गयासुद्दीन (मुहम्मद गौरी का बड़ा भाई) और एक अभिलेख जो नीचे से सबसे प्रथम है उसमें किसी का नाम तो नहीं है, किन्तु अत्याधिक प्रसंशाएँ एवं उपाधियां ही अंकित है। ऐसे ही प्रथम दोनों अभिलेखों में अत्याधिक प्रशंसाएँ और बढ़ा-चढ़ा कर उपाधियों का वर्णन मात्र ही है। प्रायः लोग बिना नाम वाले इस अभिलेख को कुतुबुद्दीन एबक की प्रशंसा कहते हैं। कितने आश्चर्य की बात है कि जिस कुतुबुद्दीन एबक का सम्बन्ध इस विशाल भवन के आदि निर्माता के रूप में जोड़ा जाता है उस बेचारे का नाम तक भी

इस भवन में नहीं है। कुतुबमीनार के पास ही खड़ी हुई वीरान मस्जिद के पूर्वी द्वार पर, पलवल में मन्दिर को गिरवा कर बनवाई गयी मस्जिद में तथा अजमेर के ढाई दिन के झोंपड़े में कुतुबुद्दीन एबक जब अपना नाम एवं तत्कालीन वर्ष एवं महीने का स्पष्ट रूप से उल्लेख कर सकता है तब कुतुबमीनार को उसने अपनी कृति प्रदर्शित करने में किसलिए शर्म महसूस की। इसका सीधा और स्पष्ट उत्तर है कि जब उस व्यक्ति ने कुतुबमीनार को बनवाया ही नहीं था तब वह इस पर अपने नाम की छाप कैसे छोड़ जाता। अफसोस तो उन इतिहासकारों की मन्द बुद्धि पर आता है जो बिना किसी सोच-विचार के बेचारे कुतुबुद्दीन को कुतुबमीनार के साथ जोड़ देते हैं।

## इल्तुतमिश

सुलतान इल्तुतमिश के कुल पांच अभिलेख हैं, इनमें दो-दो अभिलेख तो दूसरे एवं तीसरे खण्ड में हैं तथा चौथा अभिलेख चतुर्थ खण्ड में पहला अभिलेख है। इन पांच अभिलेखों में तीन अभिलेखो में तो इल्तुतमिश की केवल बढ़ा-चढ़ा कर लम्बी-लम्बी प्रशंसाएं ही अंकित हैं और शेष दो में अर्थात दूसरे खण्ड का प्रथम अभिलेख एवं चतुर्थ खण्ड वाला अभिलेख इल्तुतमिश की पाप की हण्डिया को फोड़ने में विशेष महत्व रखते हैं। दूसरे खण्ड के अभिलेख में इल्तुतमिश साहब ने इस भवन को पूर्ण करने का दम भरा है जबकि चौथे खण्ड वाले अभिलेख में समस्त भवन के निर्माण का दायित्व अपने ऊपर लिया है। स्पष्ट है कि जब कोई व्यक्ति किसी भवन को जो अधूरा हो उसे पूरा करता है तब यह कैसे सम्भव है कि वह उस भवन का निर्माता ही बन बैठे। यही दशा इल्तुतमिश की है और इसी कारण उसके समस्त दावे बोगस सिद्ध होते हैं।

## इलाउद्दीन खिलज

जब इलाउद्दीन साहब के पूर्वज सफेद झूठ लिखने में प्रवीण थे तब इलाउद्दीन ने भी भवन के चतुर्थ खण्ड के दूसरे अभिलेख में अपनी प्रशंसा के अतिरिक्त यह भी अंकित करने में कोई संकोच नहीं किया कि इस भवन की नींव मेरे आदेश एवं विचार द्वारा रखी गयी है। धन्य हैं यह झूठ के ठेकेदार मुस्लिम सुलतान जो एक से बढ़-चढ़ कर झूठ कहने में माहिर हैं। इस तरह तेरहवीं शताब्दी के शुरू से लेकर अन्त तक इस भवन के तीन दावेदार तो खुल्लम-खुल्ला इन अभिलेखों के द्वारा हमारे सामने आते हैं।

## फ़िरोजशाह तुगलक

पंचम खण्ड में फिरोज शाह तुगलक ने बड़ी ईमानदारी से इस भवन की मरम्मत का उल्लेख किया है जो उसने सन् १३६८ ई० में भवन पर बिजली गिर जाने के कारण भवन को पहुंची क्षति की पूर्ति के लिए करवाई थी।

## सिकन्दर लोधी

भवन के मुख्य प्रवेश द्वार पर एक अभिलेख सिकन्दर लोधी का है। इस अभिलेख में भी सन् १५०७ ई० में भवन पर बिजली गिरने के बाद भवन की मरम्मत का स्पष्ट उल्लेख है। यह अभिलेख भी विश्वसनीय एवं महत्वपूर्ण है।

इस प्रकार से सिद्ध होता है कि कुतुबमीनार को प्रत्येक मुस्लिम शासक ने अपनी कृति बताने का हास्यप्रद प्रयास किया है जबकि वास्तव में इसका सम्बन्ध इन में से किसी से भी न होकर संवत प्रवर्त्तक सम्राट विक्रमादित्य एवं उनके नवरत्न महान ज्योतिषी वराहमिहिर से है जिन्होंने इसे खगोल विज्ञान के अनुसन्धान के लिए आज से लगभग ढाई हजार वर्ष पूर्व बनवाया था और जिसका नाम "मेरू-स्तम्भ" था जिसे अरबी में कुतुबमीनार कहते हैं।

# कुतुबमीनार के रोशनदान

कुतुबमीनार के रोशनदानों को देख कर सहज में ही यह अनुमान लगाया जा सकता है कि इनका निर्माण मीनार के अन्दर रोशनी प्राप्त करने का उद्देश्य रख कर कदापि नहीं हो सकता है। यदि इन रोशनदानों से मीनार के अन्दर रोशनी पहुंचानी होती तो इनका बाहर वाला भाग इतना लम्बा और सिकुड़ा हुआ न होता एवं इनका अन्दर वाला भाग इतना चौड़ा न होता, जिसमें कम से कम दो व्यक्ति कुछ सामान लेकर बैठ सकते हैं। हालाँकि मुस्लिम शासकों द्वारा कुतुबमीनार की बाहर वाले भाग में अनेक मनचाहे परिवर्तन करवाते समय उनकी अज्ञानता एवं मूर्खता के फलस्वरूप कुछ एक रोशनदानों के बाहर वाले भाग पर भी प्रभाव पड़ा है; किन्तु फिर भी अधिकतर रोशनदान आज भी ठीक दशा में हैं।

कुतुबमीनार का निर्माण ही खगोल सम्बन्धी अनुसन्धान के लिए सम्राट विक्रमादित्य के प्रसिद्ध नवरत्न आचार्य वराहमिहिर ने ईसा से कुछ वर्ष पूर्व करवाया था अतः इसके रोशनदान भी नक्षत्रों एवं ग्रहों को रात्रि या दिन के समय देखने के लिए ही कुछ विशेष नियमों के अन्तर्गत ही बनाए गये थे। मीनार के अन्दर जान बूझ कर अन्धेरा रखा गया है, ताकि अन्दर से देखने वाले की आंख की पुतली अधिक शक्ति से काम कर सके। यही कारण है कि समस्त मीनार के अन्दर भूरे रंग का पत्थर "संगखारा" प्रयोग में लाया गया है ताकि मीनार के अन्दर और ज्यादा अन्धकार बना रहे। यदि यह मीनार किसी अन्य कार्य के लिए बनवाई गयी होती तब इसके अन्दर सफेद संगमरमर का प्रयोग हुआ होता ताकि उसकी चमक से प्राकृतिक तौर पर अन्दर रोशनी बनी रहे।

इन रोशनदानों में एक साथ कई व्यक्ति खड़ें हो सकते हैं और बैठ भी सकते हैं। यदि रोशनदान से प्राप्त रोशनी को कम करना हो तो केवल एक मोटे रस्से को सीधा लटका देने से रोशनी बन्द हो जाती है। रोशनदानों में उस समय न जाने किन-किन उपकरणों को फिट करके ग्रहों आदि का वेध लिया जाता था, इसका अनुमान लगाना कठिन है।

रोशनदानों की कुल संख्या आज भी सत्ताईस है अर्थात सत्ताईस नक्षत्रों को अलग अलग देखने के लिए ही इनको बनवाया गया था। यहीं नहीं, प्रथम खण्ड के प्रत्येक रोशनदान एक दूसरे से १०५° के अन्तर पर बनाए गये हैं ताकि समस्त आकाश का निरीक्षण किया जा सके। इसके साथ-साथ इनकी ऊंचाई का भी सीढ़ियों से कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है। अन्य खण्डों में एक साथ अर्थात बहुत निकट-निकट रोशनदान रखे गये हैं जबकि कई स्थानों पर उन्हें काफी दूर-दूर बनाया गया है। कई स्थानों पर रोशनी की जरूरत होने पर भी दो

एक रोशनदान नहीं है तथा कई स्थानों पर एक रोशनदान नहीं है तथा कई स्थानों पर रोशनी की जरूरत न होने पर भी या तीन रोशनदान बने हुए हैं। यह सब इस बात की ओर संकेत करते हैं कि इन रोशनदानों का सम्बन्ध रोशनी से न होकर केवल वेध लेने मात्र से ही है।

दूसरे खण्ड के रोशनदानों में अन्दर की ओर पाखों पर प्राचीन गूढ़ अक्षरों में लम्बी-लम्बी संख्याएं एवं रेखाओं द्वारा ज्योतिष सम्बन्धी चित्र अंकित हैं। इससे स्पष्ट मालूम होता है कि इन रोशनदानों में बैठ कर ज्योतिषी लोग ग्रहों आदि की चाल को देखा करते थे और उन्हीं के द्वारा यह संख्याएं एवं चित्र इन पर अंकित किये हुए हैं।

इन रोशनदानों में से कुछ एक रोशनदान विशेष-विशेष दिनों के सूर्योदय एवं सूर्यास्त तथा चन्द्रोदय एवं अन्य ग्रहों के उदयास्त देखने के लिए बनवाए गये हैं जिनमें से आज भी प्रत्यक्ष रूप से उन्हें देखा जा सकता है।

पहले खण्ड में दस रोशनदान हैं जिनमें से सात बड़े हैं तथा तीन छोटे हैं। दूसरे खण्ड में पांच रोशनदान हैं तथा अन्य तीनों खण्डों में चार-चार रोशनदान हैं। इस प्रकार से इनकी कुल संख्या २७ बैठती हैं। यही नहीं, मीनार के सभी प्रवेश द्वार भी किसी विशेष उद्देश्य से निर्मित हैं जिनमें मुख्य प्रवेश द्वार केवल ध्रुव नक्षत्र को देखने के लिए उसी की दिशा में बनवाया गया है।

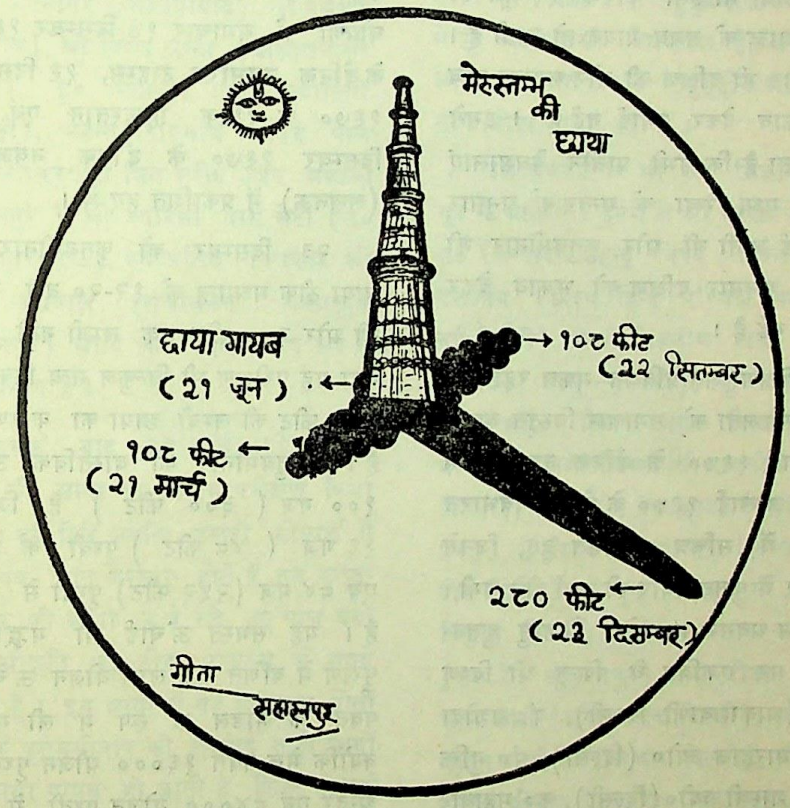
इन रोशनदानों के पास-पास लोहे के कुण्डे लगे हुए थे जिनके निशान प्रथम खण्ड में अभी तक विद्यमान हैं। लोहा तो अब वहां से गायब है किन्तु लोहे की रगड़ से जो निशान दीवारों पर पड़े हुए हैं उनसे यह मालूम होता है कि यहां पर बड़े-बड़े मजबूत लोहे के कड़े या कुण्डे लगे हुए थे। शायद इनमें रस्सी इत्यादि बांधने का प्रबन्ध रहा होगा। जो थोड़ा बहुत लोहा किसी स्थान पर किसी प्रकार से बचा हुआ है, वह बिना किसी प्रभाव के है। यह लोहा उसी तरह का है जैसा कि लोह स्तम्भ में प्रयोग किया गया है। इससे स्पष्ट होता है कि लोह स्तम्भ और कुतुबमीनार का निर्माण एक साथ ही हुआ होगा क्योंकि मस्जिद में प्रयोग किया हुआ लोहा फूल कर फट चुका है। मीनार का लोहा ज्यों का त्यों विद्यमान है।

रोशनदानों की तरह ही कुतुबमीनार की पहली दूसरी एवं पांचवी मंजिल की निकासियों के नीचे गोलाई में आर-पार छिद्र मौजूद हैं। इनकी संख्या क्रमशः २७, ४२ एवं ९ है। कई लोग इन छिद्रों को भवन निर्माण के समय पैड बाँधने के हेतु निर्मित बताते हैं किन्तु यदि पैड बांधने के लिए इन्हें छोड़ा गया होता तो यह सभी मंजिलों में क्यों नहीं है।

यह छिद्र कुतुबमीनार के बाहरी खण्डों पर सूर्य के प्रकाश से समय एवं तिथि आदि ज्ञात करने के लिए लटकाए गए लकड़ी के मजबूत एवं लम्बे-लम्बे लट्ठों के बांधने का स्थान हैं जिनपर स्वर्ण पत्र मढ़े हुए थे। मुस्लिम शासकों ने उन स्वर्ण पत्र मढ़ित लट्ठों को निकाल दिया और छिद्र ही शेष रह गये।

# कुतुबमीनार की छाया

कुतुबमीनार वेधशाला है या नहीं इसको प्रत्यक्ष रूप में सिद्ध करने के लिए सबसे सरल साधन हैं कि वर्ष के विशेष दिनों (सबसे बड़ा दिन, सबसे छोटा दिन एवं जब दिन और रात बराबर होते हैं) में इसकी छाया पर अनुसन्धान किया जावे। इस कार्य को मैंने सन् १९७० में पूरा




करने का संकल्प लिया एवं छाया सम्बन्धी अनुसन्धानों से यह सिद्ध कर दिया कि कुतुबमीनार वास्तव में वेधशाला का मध्यवर्ती मेरूस्तम्भ है, जिसे अरबी में कुतुबमीनार कहा जाता है।

सबसे पहले मैंने यह घोषणा की थी कि २१ जून को जब उत्तरी गोलार्द्ध में सबसे बड़ा दिन होता है तब कुतुबमीनार की छाया ठीक मध्याह्न के समय पृथ्वी पर दिखाई नहीं देवेगी क्योंकि इस भवन का निर्माण ही इस ढंग से किया गया है कि सबसे बड़े दिन के मध्याह्न में इसकी छाया गायब हो जावे। इस विषय में समाचार १५ जून १९७० के दैनिक हिन्दुस्तान, १८ जून १९७० के दैनिक नवभारत टाइम्स एवं १९ जून १९७० के दैनिक प्रभात (मेरठ) में प्रकाशित हुए थे कि "२१ जून को कुतुबमीनार की छाया पृथ्वी पर न पड़ेगी।"

२१ जून को छाया न पड़ने का कारण यह है कि २१ जून को सूर्य मध्य रेखा से

२३°—३०′ उत्तर को होता है और कुतुब-मीनार का अक्षांश २८°–३१′–२८″ मध्य रेखा से उत्तर को है। इन दोनों का अंतर ५°–१′–२८″ हैं। कुतुबमीनार का निर्माण ज्योतिष की गणना के अनुसार ५°–१′–२८″ दक्षिण की ओर झुकाव देकर किया गया है, इसलिए इसकी छाया गायब हो जाती है।

ठीक इसी प्रकार महाराजा सवाई जयसिंह द्वारा अठारहवीं ईसवी में निर्मित दिल्ली की वेधशाला (जंत्र-मंत्र) में सबसे ऊंची दीवार जो "कर्कवलय" कहलाती है उसकी छाया भी इसी कारण २१ जून को ठीक मध्याह्न के समय गायब हो जाती है। वह दीवार भी दक्षिण की ओर लगभग पांच अंश झुकाव देकर बनाई गई है। इससे सिद्ध होता है कि सभी प्राचीन वेधशालाएं स्थानीय मध्य रेखा के अन्तर के अनुसार ही बनाई जाती थीं और कुतुबमीनार भी उसी के अनुसार दक्षिण को झुकाव देकर बनवाई गई है।

परीक्षण शत-प्रतिशत सफल रहा और इसकी सफलता के समाचार विस्तृत रूप में **१ जौलाई १९७० के दैनिक नवजीवन में तथा २ जौलाई १९७० के दैनिक नवभारत टाइम्स में सचित्र** प्रकाशित हुए, जिनसे देश भर में कुतुबमीनार की चर्चा होने लगी।

इस अवसर पर अनेक जिज्ञासु कुतुब-मीनार पर एकत्रित थे, किन्तु श्री विष्णु खन्ना (आकाशवाणी–दिल्ली), पं. यशोदा नन्दन भारद्वाज ज्यो० (दिल्ली), पं० युक्ति प्रकाश शास्त्री ज्यो० (दिल्ली), कु० महावीर प्रसाद ज्यो० (दिल्ली), श्री शिवनाथ राय तस्कीन जरनलिस्ट (दिल्ली), श्री अखिलेश (सम्पादक साप्ताहिक 'विकास' एवं मासिक 'नया जीवन', सहारनपुर), महंत सुन्दरदास रामायणी (रामचरित मानस अनुसन्धान संस्थान, सहारनपुर), प्रेस फोटो ग्राफर श्री बलदेव राज शर्मा (जे० बी० फोटो स्टूडियो, सहारनपुर), श्री फिरोजी लाल जायसवाल (एक्साईज कट्रैक्टर सहारनपुर) श्री विश्वनाथ प्रभाकर (उ०रे० सहारनपुर) एवं श्री बनारसी दास सेठी (उ० रे० सहारनपुर) आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

सब से बड़े दिन के बाद उत्तरीगोलार्द्ध के सबसे छोटे दिन २३ दिसम्बर को पुनः कुतुबमीनार की छाया के विषय में मैंने यह घोषणा की थी कि २३ दिसम्बर को कुतुब-मीनार की छाया सर्वाधिक लम्बी पड़ेगी एवं उसकी लम्बाई २८० फीट होगी। इस घोषणा के समाचार १७ दिसम्बर १९७० के **दैनिक नवभारत टाइम्स, १९ दिसम्बर १९७० के दैनिक हिन्दुस्तान एवं १७ दिसम्बर १९७० के दैनिक नवजीवन (लखनऊ)** में प्रकाशित हुए थे।

२३ दिसम्बर को कुतुबमीनार की छाया ठीक मध्यान्ह के १२-२० बजे उत्तर की ओर २८० फीट तक लम्बी गयी और मेरा यह परीक्षण भी बिल्कुल सत्य निकला। २८० फीट की लम्बी छाया का कारण यह है कि कुतुबमीनार की वास्तविक ऊंचाई १०० गज (३०० फीट) है जिस में १६ गज (४८ फीट) पृथ्वी के अन्दर एवं ८४ गज (२५२ फीट) पृथ्वी से बाहर है। यह समस्त ऊंचाई श्री मद्भागवत पुराण में वर्णित एक लाख योजन ऊंचे मेरू पर्वत के माडल के रूप में ली गयी है क्योंकि मेरू पर्वत १६००० योजन पृथ्वी के अन्दर एवं ८४००० योजन पृथ्वी से बाहर बताया गया है। इस प्रकार से २३ दिसम्बर को इस मेरुस्तम्भ (कुतुबमीनार) की छाया इसकी पूरी ऊंचाई के समान पड़ती है जो कभी ३०० फीट हुआ करती थी। अब ऊपर की मंजिलें तोड़ देने के कारण यह छाया २० फीट कम अर्थात २८० फीट लम्बी उत्तर की ओर पड़ती है।

छाया के इस अनुसन्धान की सफलता के बड़े-बड़े सचित्र समाचार ३१ दिसम्बर १९७० के दैनिक हिन्दुस्तान, १ जनवरी १९७१ के दैनिक नवभारत टाइम्स एवं २ जनवरी १९७१ के दैनिक नवजीवन (लखनऊ) में प्रकाशित हुए जिससे समस्त देश में कुतुबमीनार से सम्बन्धित चली आ रही गलत भ्रांति को भारी धक्का पहुंचा।

इस अवसर पर जहाँ कई लोग छाया देखने पहुंचे थे वहां पर व्योवृद्ध विद्वान श्री उदयवीर शास्त्री (गाजियाबाद), श्री महेश स्वरूप भटनागर (गाजियाबाद), श्री बलभद्र (गुडगांव), श्री विष्णु खन्ना (आकाशवाणी दिल्ली), कु० महावीर प्रसाद ज्योतिषी (दिल्ली), महन्त रामनाथ कंवर पाल (मण्डलीश्वर: श्री शिव शक्ति भजन मण्डली सहारनपुर), श्री बनारसी दास सेठी (उ० रे० सहारनपुर) एवं प्रसिद्ध चित्रकार श्री रमेश अग्रवाल (संचालकक: कलाकुंज सहारनपुर) आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

इसके बाद २१ मार्च १९७१ को कुतुब की छाया का अन्तिम परीक्षण किया गया। इस दिन जबकि उत्तरी गोलार्द्ध में दिन एवं रात बराबर होते हैं तब कुतुब-मीनार की छाया ऊंचे रखे हुए पांच घड़ों की आकृति की ठीक मध्यान्ह के समय पड़ती है। इस छाया में यह विशेषता होती है कि कुतुबमीनार की लम्बाई वाले भागों की छाया गायब हो जाती है किन्तु गोलाई वाले पाँचों भागों (छज्जों) की छाया पृथ्वी पर उत्तर की ओर पड़ती है। इस अनुसंधान से पूर्व कई एक समाचार पत्रों में समाचार प्रकाशित हुए और २१ मार्च को यह परीक्षण बिल्कुल सत्य निकला।

इस परीक्षण की सफलता के सचित्र एवं विस्तृत समाचार २१ अप्रैल १९७१ के दैनिक हिन्दुस्तान एवं दैनिक नवभारत टाइम्स तथा १ अप्रैल १९७१ के दैनिक नवजीवन (लखनऊ), ११ अप्रैल १९७१ के दैनिक वीर प्रताप (जालन्धर), ३१ मार्च १९७१ के दैनिक उजाला (जम्मू), जून १९७१ के मासिक हिन्दू विश्व (दिल्ली), मासिक धर्म मार्ग (जम्मू) एवं मासिक एस्ट्रालोजिकल मैगजीन (बैंगलोर) एवं मई १९७१ के मासिक वसिष्ठ (दिल्ली) में प्रकाशित हुए, जिससे समस्त देश में यह क्रांति फैल गयी कि कुतुबमीनार वास्तव में ही ज्योतिष की वेधशाला है और इसे आज तक गलत ढंग से कुतुबुद्दीन आदि के साथ जोड़ा जाता रहा है।

इस अवसर पर भी कई जिज्ञासु दूर-दूर से आये थे। इनमें से श्री नारायण रॉव तर्टे (सम्पादक: हिन्दू विश्व दिल्ली), श्री दत्तात्रेय (विश्व हिन्दू परिषद् कार्यालय नई दिल्ली), मुन्शी शिवनाथ राय तस्कीन सम्पादक: साधु—दिल्ली), कु० महाबीर प्रसाद ज्यो० तिलक नगर दिल्ली), श्री भारत बन्धु शर्मा (मन्त्री श्री रामतीर्थ मिशन दिल्ली), श्री अर्जुन देव हांडा (मंडी हि० प्र०), श्री सैय्यद अहमद खां (कम्पनी लॉ बोर्ड दिल्ली), श्री बृज मोहन शर्मा (शिक्षा विभाग दिल्ली), महंत रामनाथ कंवरपाल (उ० रे० सहारनपुर), श्री दीवान प्यारे लाल शर्मा (करौल बाग दिल्ली), श्री राम मोहन शर्मा (करौल बाग दिल्ली), श्री एस० आर० धींगरा (उ० रे० सहारनपुर), श्री तीर्थराम मानकटाला (सहारनपुर), श्री हरबन्श लाल सेठी (इन्स्पेक्टर को० सोसायटी दिल्ली) एवं श्री मदन लाल शर्मा (सीनियर मानूमेन्ट्स अटेन्डेन्ट्स कुतुब एरिया दिल्ली) के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

# कुतुबमीनार के निकट निर्मित प्राचीन यवन वेधशाला

●

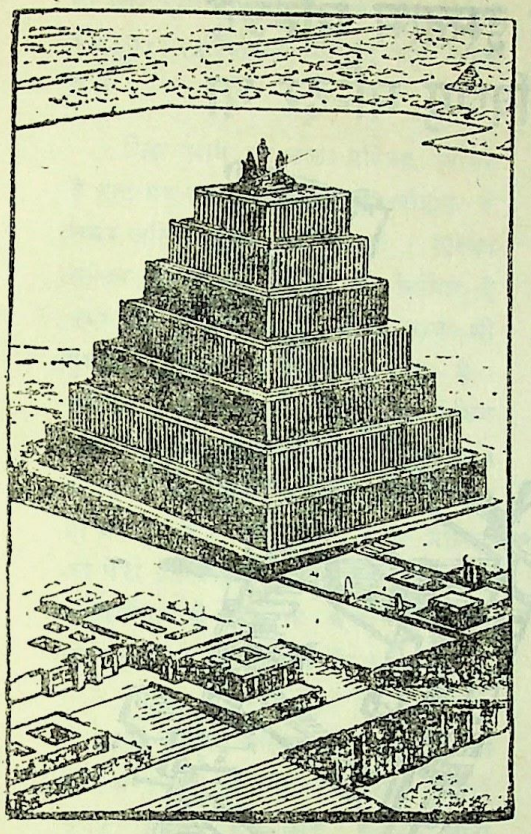
यूं तो इस समय कुतुबमीनार के निकटवर्ती क्षेत्र में धर्मांध एवं बर्बर विदेशी शासकों द्वारा कोई भी प्राचीन भवन या इससे सम्बन्धित कोई अन्य सामग्री सुरक्षित नहीं रह पाई है, किन्तु कुतुबमीनार के निकट पूर्व दिशा की ओर जहाँ पर वाहन आदि खड़े करने की व्यवस्था है, वहाँ पर दो चौंतरे आमने-सामने बने हुए आज भी सुरक्षित खड़े हुए हैं। इनमें से एक चौंतरा तो गोलाकार है तथा उसमें घुमाव-



दार रास्ता है जो चौंतरें के ऊपर एक छोटे से स्थान पर समाप्त हो जाता है। दूसरा चौंतरा चौकोर है और काफी बड़ा है। दूसरे चौंतरे का निर्माण इस ढंग से किया गया है कि नीचे से ऊपर की ओर चढ़ते हुए इसकी चौड़ाई कम होती जाती है तथा ऊपर का अन्तिम भाग एक प्रकार से चौंतरे के नीचे वाले चौकोर भाग के मध्य में आता है। चौंतरे के चारों ओर सीढ़ियां बनी हुई हैं और चौंतरे की ऊंचाई भी अच्छी-खासी है। चित्र ऊपर देखें।

कुतुबमीनार की छाया का अनुसंधान करते जब मैं सन् १९७० ई० में कई बार दिल्ली गया तब मैंने इन चौंतरों के निर्माण का उद्देश्य वहां के कर्मचारियों से मालूम करने का प्रयास किया किन्तु कोई सन्तोषजनक उत्तर न मिल सका।

एक दिन अकस्मात् स्व० डॉ० गोरख द्वारा लिखित "भारतीय ज्योतिष का इतिहास" पढ़ते समय मेरी नजर पुस्तक के पृष्ठ ११९ पर प्रकाशित एक चित्र पर पड़ी जो "पेराट और चिमीज़" की पुस्तक से उद्धृत किया गया है। इस चित्र में एक चौंतरा बना हुआ है जिसकी आकृति कुतुबमीनार के निकट निर्मित चौकोर चौंतरे सरीखी है। चित्र के परिचय में डॉ गोरख प्रसाद ने लिखा है **"बाबुल लोग ऊंचे-ऊंचे मन्दिर बनाया करते थे और**



उनकी छत्तों पर से आकाशीय पिंडों का वेध लिया करते थे।" चित्र का शीर्षक है 'मन्दिर या वेधशाला ?' ध्यान रहे कि प्राचीन बाबुल (बैबिलोनिया) में ईसा से कई सौ वर्ष पूर्व ज्योतिर्विज्ञन का बहुत प्रचार था और यवनों ने ज्योतिष बाबुल के निवासियों से ही सीखा था। बाबुल निवासी ज्योतिष के सभी विषयों में पारंगत थे और वह वेधशालाएं बनाकर खगोल विज्ञान का अध्ययन भी किया करते थे।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि कुतुब मीनार के निकट निर्मित यह चौंतरे प्राचीन काल से ही ग्रहों का वेध लेने के लिये आचार्य वराहमिहिर ने बनवाये थे। ध्यान रहे आचार्य वराहमिहिर यवन ज्योतिष से भली प्रकार परिचित थे उन्होंने यवन ज्योयिषों का बड़े आदर से अपने ग्रन्थों में नाम लिखा है। अतः आचार्य वराहमिहिर ने प्राचीन बाबुल या यवन पद्धति द्वारा भी इस स्थान पर वेधशालाएं बनवाई होंगी जिनके जीवित प्रमाण में आज यहां पर निर्मित यह चौंतरे विद्यमान हैं। इससे कुतुबमीनार की प्राचीन भारतीय वेधशाला के अस्तित्व पर भी प्रकाश पड़ता है।

---

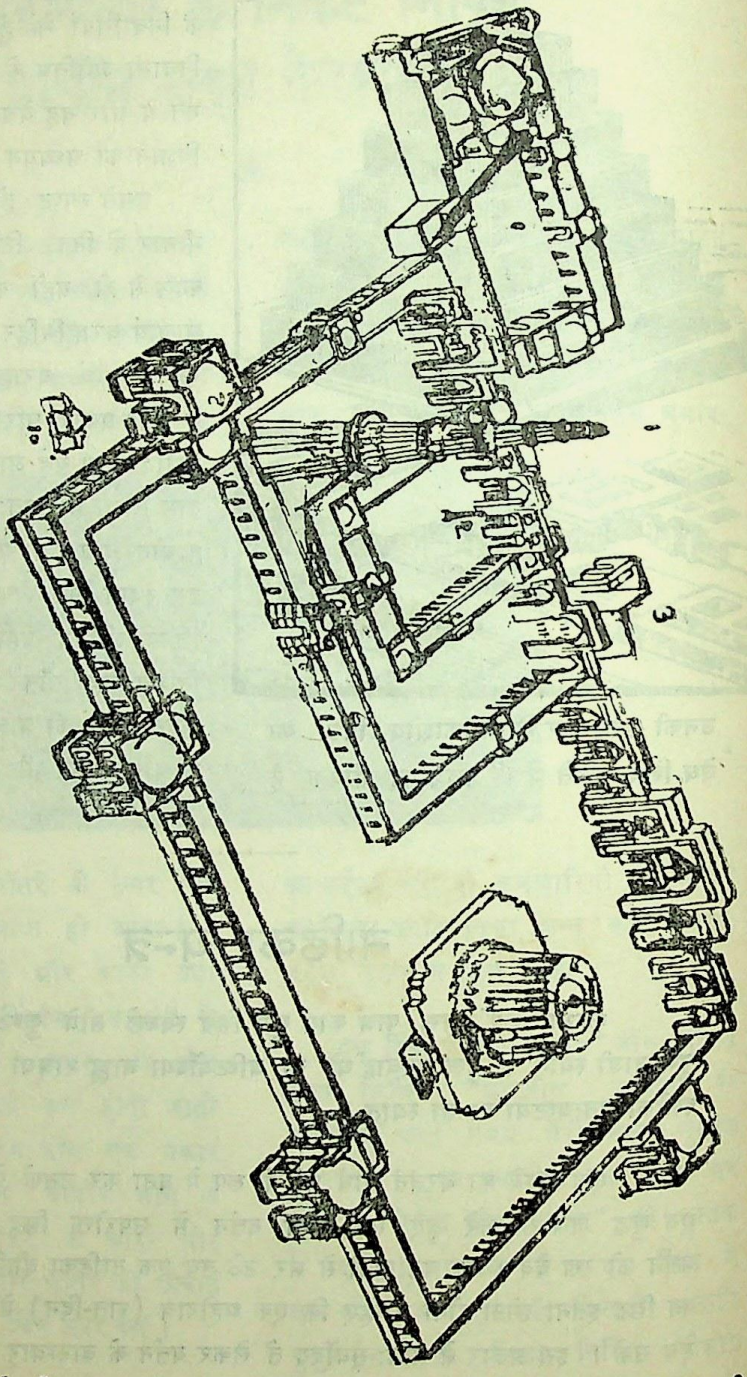
# नाडिका यन्त्र

**कुम्भार्धाकरं ताम्रं पात्रं कार्यं मूले छिद्रं स्वच्छे तोये कुण्डे न्यस्तं तस्मिन् पूर्णे नाडी स्यात्। मूलाल्पत्वाद्वेधो वा षष्टिर्योज्या चाह्न रात्र्या वर्णाः षष्टिर्वक्राः श्लोको यतत्षष्टया वा सा स्यात्॥**

—वराहमिहिर

एक ताम्बे का बरतन आधे घड़े के रूप में बना कर उसके पेंदे में छिद्र कर एवं शुद्ध जल से भरे हुए एक अन्य बर्तन में उपरोक्त छिद्र युक्त ताम्बे के बर्तन को रख देवें। जब वह पानी से भर उठे तब एक नाडिका बीती रहेगी। पेंदे का छिद्र इतना छोटा होना चाहिए कि एक अहोरात्र (रात-दिन) में यह ६० बार डूब सकें। इस प्रकार से प्रातः सूर्योदय तें लेकर बर्तन के बारम्बार डूबने से नाडिका के बीतने का ज्ञान अथअर्थात समय का ज्ञान होता रहेगा। ध्यान रहे एक नाडिका या घटिका २४ मिनिट के बपावर होती है और चौबीस घंटे में ६० घटिका या नाडिका होती हैं।

# कुव्वत-उल इस्लाम मस्जिद जहाँ कभी विष्णु मन्दिर था



कुतुब-क्षेत्र का मानचित्र

१. कुतुबमीनार, २. लौह-स्तम्भ, ३. इलतुतमिस का मकबरा, ४. पृथ्वीराज का मन्दिर, ५. अलाउद्दीन का मकबरा एवं मदरसा, ६. कुव्वत-उल-इस्लाम मस्जिद, ७. मस्जिद का विस्तार, ८. अलाई मीनार, १०. इमाम जामिन का मकबरा।

कुतुबमीनार के निकट एक खण्डहर मस्जिद खड़ी हुई है जिसे भारत की धरती पर निर्मित सर्वप्रथम मस्जिद कहलाने का गौरव प्राप्त। इसे विजेयता कुतुबुद्दीन ऐबक ने सन् ११९२ ई० में इस्लाम की ताकत अर्थात तलवार के ज़ौर से बनवाया

था और इसीलिये इसे "कुव्वत-उल-इस्लाम" (Mighty of Islam) मस्जिद कहा जाता है।

जिस स्थान पर उक्त मस्जिद निर्मित है वहाँ पर सम्राट पृथ्वी राज चौहान के समय प्रसिद्ध विष्णु मन्दिर था। मस्जिद मन्दिर की दूसरी मंजिल पर निर्मित है तभी तो इसका ऊपरी भाग आज भी पृथ्वी से लगभग बीस फीट ऊंचा है। मस्जिद का विस्तार क्रमशः इल्तुतमिश एवं अलाउद्दीन खिलजी ने करवाया था। इन दोनों के मकबरे भी मस्जिद के पास ही बने हुए हैं। अलाउद्दीन ने तो मस्जिद का घेरा इतना बढ़ा लिया था कि इसमें कुतुबमीनार के अतिरिक्त चारों तरफ का बहुत सा भाग भी शामिल था।

इस समय मस्जिद की पश्चिम की ओर से उत्तर एवं दक्षिण के रुख लम्बाई ३८५ फिट है और इस में छोटी बड़ी आठ महरावें हैं जिनमें सबसे बड़ी महराब २२ फिट चौड़ी और ५३ फिट ऊंची है। मस्जिद का निर्माण बहुमूल्य सत्ताईस नक्षत्र भवनों के माल-मसाले से हुआ था जो कुतुबमीमार के चारों ओर एक विशाल घेरे में निर्मित थे। चूंकि यहां पर खगोल विज्ञान से सम्बन्धित विश्व की सर्व-प्रथम भारतीय वेधशाला थी जिसके मध्य में मेरूस्तम्भ (अरबी रूपान्तर कुतुबमीनार) एक तालाब के मध्य में निर्मित था और मेरूस्तम्भ के चारों ओर पूर्व एवं पश्चिम दिशाओं में सत्ताईस नक्षत्र भवन निर्मित थे। उन नक्षत्र भवनों की नींव आज भी मैहरोली स्थित लायब्रेरी के निर्माण के समय में देखी गयी थी। इस से कल्पना की जा सकती है कि वह नक्षत्र भवन कितनी दूरी पर निर्मित थे। उन सत्ताईस नक्षत्र भवनों के विषय में शायद हमें जानकारी प्राप्त न होती यदि कुतुबुद्दीन एबक ने मस्जिद के पूर्वी प्रवेश द्वार की सरदल पर फारसी में यह अभिलेख अंकित न किया होता:—

**ईं हिसार फतह कर्द ईं मस्जिद राव-साखत बतारीख फी शहोर सनतन सना व समानीन वखमसमत्य अमीर-उल-शफहालार अजल कबीर कुतुबु-उल-दौला व उलद्दीन अमीर-उल-उमरा एबक सुलतानी अज़ज-उल्ला अनसारा व बिस्तोहफ़त अल बुतखाना मरकनी दर हर बुतखाना दो बार हजार बार हजार देल्लीवाल सर्फ़ सुदा बूद दरीं मस्जिद बकार बस्ता सुदा अस्त।**

अर्थात कुतुबुद्दीन एबक ने यह किला हिजरी सन ५८७ तदानुसार सन ११९१-९२ में विजय किया। यह मस्जिद सूर्य के घेरे में निर्मित सत्ताईस बुत खानों (मन्दिरों) को तुड़वा कर उनके माल-मसाले से तैयार की गयी। वह सत्ताईस मन्दिर एक समान मूल्य के थे जिनमें से प्रत्येक के माल-मसाले का मूल्य बीस लाख देलीवाल था अर्थात ईसा की बाहरवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में उन समस्त नक्षत्र भवनों के माल-मसाले का मूल्य पांच करोड़ चालीस लाख देलीवाला था। ध्यान रहे एक देलीवाल आज के पच्चतहर पैसे के समान है। इस अभिलेख से यह स्पष्ट हो जाता है कि विश्व की महान-नक्षत्र वेधशाला के सत्ताईस मन्दिर (भवन) न जाने किन-किन बहुमूल्य उपकरणों से युक्त थे तथा उनको सुन्दर बनाने के लिए न जाने कितना सोना-चाँदी तथा बहुमूल्य रत्न और अन्य सामग्री काम में ली गयी थी। प्रत्येक नक्षत्र के अधिपति देवता की मूर्ति भी अवश्य रही होगी तभी तो उन्हें बुतखाना कहा गया है।

इह प्रकार से विश्व के महानतम विज्ञान मन्दिर को नष्ट करके कुतुबुद्दीन एबक ने सम्राट पृथ्वीराज के आराध्य देवता भगवान विष्णु (ध्यान रहे शेष शैया पर लेटे हुए भगवान विष्णु की मूर्ति यहां पर क्षीर सागर नाम से निर्मित सरोवर में पहले ही विद्यमान थी) के सुन्दरतम् मंदिर को तोड़कर इस मस्जिद का निर्माण करवाया था। चूंकि उस समय दिल्ली इसी स्थान पर थी और यहां पर सम्राट पृथ्वीराज का प्रसिद्ध किला 'लाल कोट' था, इसीलिए अभिलेख के शुरू में किला को विजय करने का संकेत स्पष्ट शब्दों में किया गया है। जनरल कनिङ्घम के अनुसार सम्राट पृथ्वी राज ने सन् ११८० या ११८६ ई० में इस विष्णु मन्दिर का निर्माण करवाया था। मन्दिर के प्राङ्गण में शैव, विष्णु, जैन एवं बौद्ध मूर्तियों तथा अनेक प्रकार के बेल-बूटों तथा चिन्हों से अलंकृत स्तम्भों की पाँच पंक्तियां थी जिनमें से प्रत्येक पंक्ति में चौंसठ-चौंसठ स्तम्भ थे।

उन सत्ताईस नक्षत्र भवनों के मध्य खड़ा मेरूस्तम्भ न जाने किस प्रकार से उनके कहर से बच गया ; किन्तु उस पर भी उनके क्रूर हाथों ने अपनी छैनी और हथोड़ा चलाकर इसे विकृत करने में कोई कमी नहीं रक्खी। आज भी प्रत्यक्ष देखा जा सकता है कि सन् ११९२ ई० में निर्मित मस्जिद कुव्वत-ऊल-इस्लाम की हड्डियां ही शेष बची हुई हैं जबकि मेरूस्तम्भ ज्यूं का त्यूं ही सिर उठाए गर्व से खड़ा हुआ है। यदि मस्जिद और मेरूस्तम्भ एक साथ ही निर्मित हुए हैं तो इतना अन्तर क्यों है ? इसके अतिरिक्त मस्जिद का पश्चिमी कोना ठीक काबा की ओर है जैसा कि प्रायः सभी भारतीय मस्जिदों में होता है। कुतुब मीनार का पश्चिम काबा से छह अंश उत्तर की ओर बढ़ा हुआ है जैसा कि भारत में निर्मित मन्दिरों का उत्तर ध्रुवनक्षत्र से लिया जाता है जो काबा से छह अंश का अन्तर रखता है। अतः कुतुबमीनार तो इस्लाम के नियम के विरूद्ध बनी हुई हैं।

यही नहीं मस्जिद के अन्दर समय के थपेड़ों से दीवारों और खम्बों तथा छत्तों से समस्त प्लास्टर का लेप झड़ गया है और उनके नीचे से देवी-देवताओं की मूर्तियां घंटे, घड़ियाल, कलश और न जाने कितनी अन्य प्रतिमाएं अतीत के विध्वंश की मूक रूप से कथा कह रही हैं।

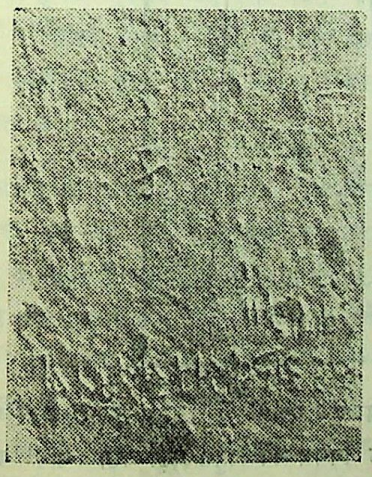
मस्जिद के प्राङ्गण ने "लौह स्तम्भ" भी अपना भाल ऊंचा किये हुए खड़ा है। यह "लौह स्तम्भ" यहां पर निर्मित विष्णु मन्दिर में गढ़ा हुआ था और इसके उपर चौकी पर ब्रह्माजी की मूर्ति थी जिसके तोड़ने के निशान अभी तक मौजूद हैं। जिस धातु से यह स्तम्भ बनाया गया था उसका पता आज तक संसार के विद्वानों को नहीं चल सका है। इस पर कभी स्वतंत्र रूप से लिखा जावेगा।

इस स्तम्भ पर ब्राह्मी लीपि में एक संस्कृत का अभिलेख है जिसका मन गढ़ंत अनुवाद अंग्रेज ने करवाकर वहीं पर एक पत्थर पर अंकित किया हुआ है। उस अनुवाद के अनुसार इस 'लौह-स्तम्भ' पर ईसा की चौथी शताब्दी में होने वाले किसी भारतीय राजा चन्द्र की प्रशस्ति लिखी हुई है। वैसे स्तम्भ पर खुदा हुआ अभिलेख मेरूस्तम्भ के सम्बन्ध में ही है किन्तु अंग्रेज को यह कब स्वीकार था कि मेरू स्तम्भ को ईसा की चौथी शताब्दी का मान कर भारतीय इतिहास के गौरव को बढ़ने देता। हमें इस झगड़े में अभी यहाँ पर उलझने की जरूरत नहीं है और हम अंग्रेज के मतानुसार इस स्तम्भ को ईसा की

चौथी शताब्दी का ही यदि मान लेवें तब भी उसे और उसके प्रशंसकों को यहाँ नीचा देखना पड़ेगा।

कुतुबमीनार एवं इसके चारों ओर के क्षेत्र का बारीकी से अनुसंधान करते समय मुझे कुव्वत-उल-इस्लाम की पश्चिमी दीवार (महराब) के निकट एक खम्बे पर एक छोटा सा अभिलेख पढ़ने को मिला था जिस की सूचना मैंने पुरातत्व विभाग के निर्देशक महोदय को तत्काल दे दी थी। उस सूचना के प्राप्त होने के बाद से ही अब वह छोटा सा अभिलेख ज्यादा सुरक्षित कर दिया गया है एवं वहां के कार्य कर्ताओं को भी उसका ज्ञान हो गया है। वह अभिलेख ऐसे खम्बे पर है जो कभी किसी नक्षत्र भवन में लगा होगा। जब वह खम्बा अन्य माल-मसाले के साथ इस मस्जिद में निर्माण के लिए लाया गया होगा तब उस अभिलेख को छैनी से छील दिया गया है तथा शुरू के कुछ अक्षर ही बच पाएं हैं। ध्यान रहे यह कुछ एक अक्षर ही इतने महत्वपूर्ण हैं कि एक बार तो समस्त मन गढ़ंत इतिहास बदल सकता है। अभिलेख निम्न है---

**सूर्य मेरू पृथ्वीः यंत्रै मिहिरावलीः यंत्रेण**

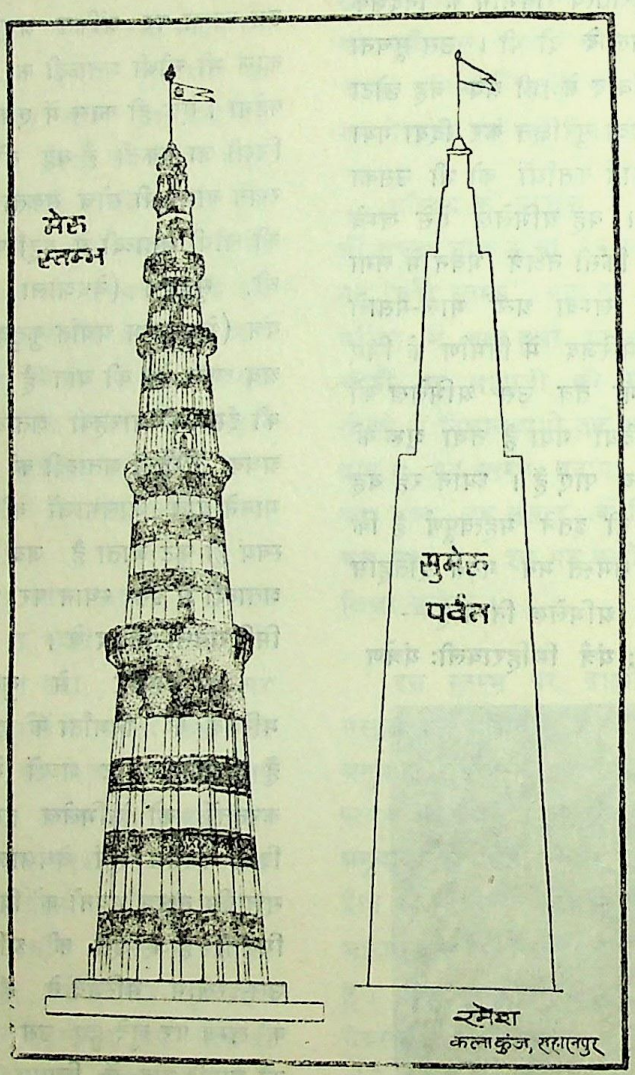


इससे यह सिद्ध होता है कि इस स्थान पर सूर्य, मेरू, पृथ्वी, वेधशाला अथवा उपकरण और मिहिरावली अर्थात आचार्य वराहमिहिर के रहने का स्थान आधुनिक मैहरोली थे। मेरू से अभिप्रायः वह सत्ताईस नक्षत्र भवन हैं जिनमें प्रत्येक नक्षत्र भवन पर लाखों रुपये के मूल्य के यंत्र लगे हुए थे।

मजे की बात यह है कि इस अभिलेख की लिपि वही है जो 'लौहस्तम्भ' पर अंकित अभिलेख की लिपि है। अब यदि 'लौहस्तम्भ' को चौथी शताब्दी का माना जाता है तब इस स्तम्भ पर अंकित अधूरे अभिलेख का काल भी चौथी शताब्दी का स्वीकार करना पड़ेगा। एक ही काल में एक जैसी लिपियां लिखी जा सकती हैं यह तो साधारण ज्ञान रखने वाला भी सोच सकता है। अतः ईसा की चौथी शताब्दी में यहाँ पर मिहिरावली थी, सूर्ययंत्र (वेधशाला) था, और मेरू यंत्र (मेरूस्तम्भ अर्थात कुतुबमीनार) था। अब ध्यान देने की बात है कि कुतुबमीनार को ईसा की बारहवीं शताब्दी के अन्त में अथवा तेरहवीं शताब्दी के शुरू में निर्मित मानने वाले जालसाजों के पाप का घड़ा स्वयं ही फूट जाता है जब ईसा की चौथी शताब्दी में इस स्थान पर कुतुबमीनार एवं मिहिरावली मौजूद थे।

इस प्रकार से कुव्वत-उल-इस्लाम मस्जिद के निर्माता के हम बड़े आभारी हैं जिसने स्पष्ट शब्दों में अपनी काली करतूतों को अभिलेख द्वारा अंकित कर दिया जिससे हमें वेधशाला से सम्बन्धित सत्ताईस नक्षत्र भवनों के विषय में जानकारी मिलती है। इस के अतिरिक्त कुव्वत-उल-इस्लाम मस्जिद ने ही अब तक पत्थर के खम्बे पर खुदे हुए उस अधूरे अभिलेख को अपनी गोद में छिपाए रक्खा है जिससे कुतुबमीनार का ईसा की चौथी शताब्दी में विद्यमान होना सिद्ध होता है। अतः हम कुव्वत-उल-इस्लाम मस्जिद एवं उसके निर्माता के प्रति अपना आभार प्रदर्शित करना कभी भी नहीं भूल सकते। *

# कुतुबमीनार या मेरूस्तम्भ




हिन्दू संस्कृति में पुराणों का स्थान वेदों के बाद आता है। पुराणों में अत्याधिक सामग्री का संकलन है किन्तु उसे समझने के लिए भी विशेष अध्ययन एवं अनुसंधान की जरूरत है। पौराणिक साहित्य अलङ्कारिक भाषा एवं वर्णनों से भरा पड़ा है और एक एक विषय को बहुत बढ़ा-चढ़ा कर और अलङ्कारिक रूप देकर प्रस्तुत किया गया है। साधारण ज्ञान रखने वाला पाठक पुराणों के सही अर्थ समझने में कभी भी सफल

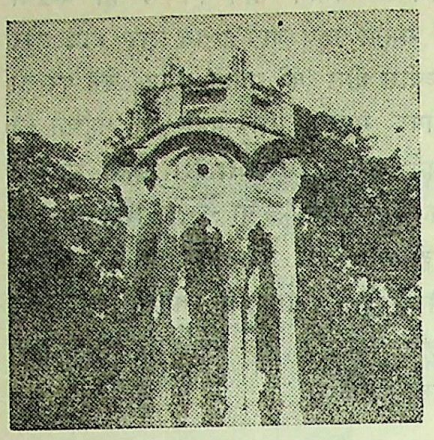
नहीं हो सकता है और इसीलिए प्राय लोग पुराणों को मिथ्या कह कर सन्तोष कर लेते हैं। वास्तव में पुराणों में वर्णित घटनाएं सत्य हैं किन्तु उन अलङ्कारों एवं विशेषणों का आवरण होने से उनके मूल रूप को साधारण पाठक नहीं समझ सकता है।

श्री मद्भागवत पुराण को समस्त पौराणिक साहित्य में मुख्य माना जाता है। इस पुराण में एक भाग 'भुवन कोष वर्णन' के नाम से प्रसिद्ध है। इस भाग में पृथ्वी समुद्र एवं सूर्यादि ग्रहों तथा अन्य लोकों का विस्तृत वर्णन है। पृथ्वी के वर्णन में जम्बू द्वीप तथा मेरू (सुमेरू) का वर्णन भी आता है जो पृथ्वी से ८४ हजार योजन ऊँचा है तथा सोलह हजार योजन पृथ्वी के अन्दर है। इस प्रकार से इसकी कुल ऊंचाई एक लाख योजन है। यह पर्वत इस प्रकार का का है कि नीचे से ऊपर तक इसकी मोटाई पतली होती जाती है तथा अन्त में एक बिन्दु पर समाप्त हो जाती है। इसके नीचे के घेरे का नाप सोलह हजार योजन है। इसकी आकृति कमल के फूल की पंखुरी या गाजर के समान है। पुराणों में लिखा है कि सूर्यादि ग्रह इस पर्वत की सदैव परिक्रमा किया करते हैं और यह पर्वत स्वर्णमय होने के कारण सु+मेरू कहलाता है।

साधारण रूप से यदि हम इस मेरू पर्वत की कल्पना करें तो मनुष्य की बुद्धि जवाब दे जाती है। यदि हम एक योजन को कम से कम एक मील के समान मान लेवें तब भी मेरू की ऊंचाई पृथ्वी के तल से ८४ हजार मील उपर पहुंच जाती है। योजन कितने मील के समान है इस पर विद्वानों के अलग-अलग मत हैं। एक योजन को चार मील से लेकर २५ मील तक के समान माना गया है। हम तो केवल एक मील के समान मान लेने पर ही चन्द्रमा के समीप पहुंच जाते है तब चार मील और पच्चीस मील के समान मान लेने पर तो शायद मङ्गल आदि ग्रहों तक पहुंचने का मार्ग सरल हो सकता है। इससे स्पष्ट है कि मेरू जैसा ऊंचा पर्वत यदि संसार में कहीं भी होता तो उसके दर्शन तो अवश्य ही हो जाते। आज जब मनुष्य चांद तक पहुंच चुका है तब मेरू कहाँ छिपा हुआ खड़ा है ?

मेरू पर्वत वास्तव में एक वेधशाला का परिचय है जिसे ज्योतिष शास्त्र के महान ज्ञाता एवं प्रवर्त्तक महर्षि वेद व्यास ने अलङ्कारिक भाषा में खूब विस्तार से बताया है। महर्षि वेद व्यास के इस गूढ़ रहस्य को केवल आज से दो हजार वर्ष से भी पूर्व त्रिस्कंधज्यौतिषाचार्य महर्षि वराहमिहिर ने ही समझा था। महर्षि वराहमिहिर का जन्म ही सूर्य भगवान के वरदान से हुआ था जिन्हें ज्योतिष शास्त्र का आद्य प्रवर्त्तक माना गया है। महर्षि वराहमिहिर ने महर्षि वेदव्यास के अनुसार वर्णित मेरू एवं उससे सम्बन्धित विशाल वेधशाला का निर्माण इन्द्रप्रस्थ में अपने आश्रय दाता धर्म एवं शक्ति के अवतार महाराजा विक्रमादित्य से करवाया था जो अब कुतुबमीनार के नाम से संसार में प्रसिद्ध है।

कुतुबमीनार की आज पृथ्वी से ऊंचाई लगभग २३४ फीट एवं ७ इंच है। इसके उपर की एक मंजिल नीचे तोड़कर रखी हुई है तथा उसके उपर क्या था इसका कुछ पता नहीं है। नीचे रखी हुई मंजिल के उपर वास्तव में एक बड़ा मजबूत लोहे का डंडा खड़ा था जिसके उपर के भाग अर्थात वर्तमान अन्तिम मंजिल से लगभग अठारह फीट की ऊंचाई पर एक विशाल ध्वज लहराता था। आकाश के मध्य में वह बिन्दु



जहाँ पर ध्वज लहराता था पृथ्वी से ८४ गज अर्थात २५२ फीट ऊंचा था। इससे सिद्ध होता है कि कुतुबमीनार की ऊंचाई पहले ८४ गज थी जो अब तोड़-फोड़ के कारण कम हो गयी है।

आचार्य वराहमिहिर ने एक हजार योजन को एक गज के समान मानकर इस भवन का निर्माण करवाया था। कुतुबमीनार का नींचे से नींव के पास में आज भी घेरा सोलह गज (४८ फीट है)। कुतुबमीनार की नीव पृथ्वी में सोलह गज (४८ फीट) गहरी है और बाहर की ऊंचाई का अनुमान हम ऊपर लगा चुके हैं कि८४ गज था। इसका आकार ठीक गाजर या कमल के फूल की पंखुड़ी के समान नीचे से उपर को पतला होता चला गया है। इसके चारों ओर सूर्यादि ग्रहों की छाया दिन एवं रात में घूमा करती है जिसके लिए इसके चारों तरफ २७ नक्षत्र भवन बनवाये गये थे जिन्हें बाद में कुतुबुद्दीन एबक ने तोड़ डाला था। इस प्रकार से छाया का घूमना ही ग्रहों द्वारा परिक्रमा करना ही है।

इसका वास्तविक नाम 'मेरूस्तम्भ' था जिसे अरबी में कुतुबमीनार कहा जाने लगा। मेरू को अरबी में कुतुब कहते हैं तथा स्तम्भ को मीनार कहते हैं। चूंकि इस स्तम्भ के ऊपर एक विशाल ध्वज लहराता था इस लिये 'लौह' स्तम्भ में इसे 'प्रान्शू विष्णोध्वजः' अर्थात् बहुत ऊंचा ध्वज कहा गया है। विष्णु नाम सूर्य का भी है और यह स्तम्भ सूर्य से (ज्योतिष से) सम्बन्धित है इसीलिये इसे 'विष्णुध्वज' के नाम से भी सम्बोधित किया गया है।

मेरूस्तम्भ के चारों ओर लकड़ी के बड़ें-बड़े लट्ठे लटके हुए थे जिन पर सोने के पत्र मढ़े हुए थे ताकि मौसम के प्रभाव से लट्ठों को बचाया जा सके। वह लट्ठे जिन स्थानों पर लटके हुये थे उन के सुराख आज भी इस स्तम्भ



में देखे जा सकते हैं। वह लट्ठे ग्रहों की छाया को मापने के लिये लटकाए गये थे। दूर से देखने पर यह स्तम्भ उन लट्ठों के कारण स्वर्णमय ही प्रतीत होता था।

इस प्रकार से हम देखते हैं कि महर्षि वेदव्यास द्वारा वर्णित उस विशाल वेध-शाला का मॉडल ही आधुनिक कुतुबमीनार एवं इसके चारों ओर निर्मित २७ नक्षत्र भवन थे। अतः कुतुबमीनार श्री मद्भागवत पुराण में वर्णित एक लाख योजन ऊंचे मेरू-पर्वत का मॉडल है। आचार्य वराहमिहिर सरीखे विद्वान ही महर्षि वेदव्यास की भाषा को समझ सके और उन्होंने ही खगोल विज्ञान से सम्बन्धित इस स्तम्भ की यहां पर स्थापना की।

मेरूस्तम्भ (कुतुबमीनार) को व्यर्थ में लोगों ने पृथ्वीराज चौहान एवं उनके पितामह विशालदेव विग्रहराज तथा कुतुबुद्दीन एबक और उसके दामाद इल्तुतमिश से जोड़ने के हास्यप्रद प्रयास किये हैं और सत्य तक पहुंचने की कोशीश ही नहीं की गयी है। यदि हम आज भी हठधर्मी को छोड़कर कुतुबमीनार के पास जाकर खड़े हो जावें और श्री भद्भागवत पुराण के मेरूपर्वत के साथ इसकी तुलना करें तो स्वयमेव ही हम इसे मेरूपर्वत का मॉडल कहने में मजबूर हो जावेंगे।

अतः कुतुबमीनार वास्तव में मेरूस्तम्भ है और इसका सम्बन्ध केवल ज्योतिर्विज्ञान से है न कि किसी मस्जिद या कीर्ति स्तम्भ से है। ध्यान रहे इस सम्बंध में सचित्र एवं विस्तृत समाचार ३१ दिसम्बर १९७० के दैनिक हिन्दुस्तान, १ जनवरी १९७१ के दैनिक नवभारत टाइम्स एवं २ जनवरी सन् १९७१ के दैनिक नवजीवन तथा अनेक अन्य पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके है।

## हजार वर्ष तक स्थिर रहने वाला वज्रलेप

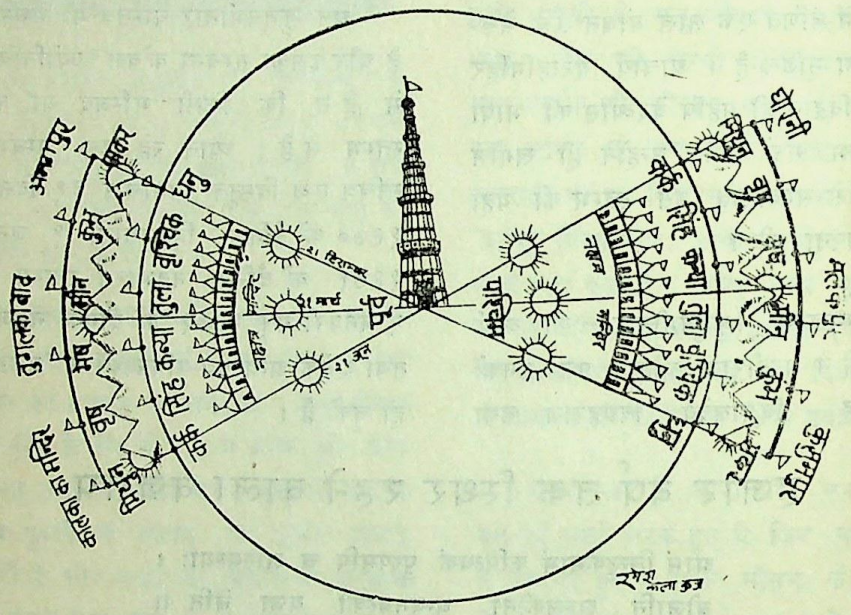
**आमं तिन्दुकमामं कपित्थकं पुष्पमपि च शाल्मल्याः।**
**बीजानि शल्लकीनां धन्वनवल्को वचा चेति॥**
**एतैः सलिलद्रोणैः क्वाथयि व्योऽष्टभागशेश्च।**
**अवतार्योऽस्य च कल्को द्रव्यैरेतैः समनुयोज्यः॥**

—वराहमिहिर

तेंदू के कच्चे फूल, कैथ के कच्चे फल, सेम के फूल, सल्लकी वृक्ष के बीज, धन्धन वृक्ष की छाल और वच, इन सबको एक द्रोण जल में क्वाथ (काढ़ें) करें। जब इसका आठवां भाग शेष रह जाये तब इसे अग्नि से उतार लेवें और फिर इसमें सरलवृक्ष का गोंद, बोल और गूगल मिला देवें। तत्पश्चात कुंदरू (देवदारु वृक्ष का निर्यास) राल, अलसी और बेल की गिरी इन सब को घोटकर उपरोक्त सामग्री में मिला देवें। यह वज्रलेप नामक कल्पक है और इसे गर्म कर के देवप्रासाद, हवेली, बलभी शिवलिंग, देवप्रतिमा, भित्ति और कूपों में प्रयोग करें। इस प्रकार से निर्मित वज्रलेप कम से कम हजार वर्ष पर्यन्त ठहरता है अर्थात जिस स्थान पर यह लेप लगा दिया जायेगा, हजार वर्ष तक वह स्थान सुरक्षित रहेगा।

बहुत सम्भव है कि मेरूस्तम्भ (कुतुबमीनार) एवं सत्ताईस नक्षत्र भवनों के निर्माण में इसी प्रकार के वज्रलेपों का ही प्रयोग किया गया हो।

# क्या वराहमिहिर की वेधशाला का विस्तार कालका मन्दिर तक था ?



दिल्ली का कालका जी का मन्दिर आचार्य वराहमिहिर द्वारा निर्मित प्राचीन भारतीय वेधशाला का ही एक अङ्ग है ऐसा आज भी प्रत्यक्ष रूप से देखा जा सकता है। आचार्य वराहमिहिर की वेधशाला केवल वर्तमान तथाकथित कुतुबमीनार तक ही सीमित थी ऐसा सोचना तक भारी भूल होगी। लगभग पाँच करोड़ रुपये की लागत से जो सत्ताईस नक्षत्र भवन वर्तमान कुतुबमीनार के चारों ओर पूर्व एवं पश्चिम दिशाओं में ग्रह-नक्षत्रों का वेध लेने के लिए बनवाए गए थे, उनकी दूरी कुतुबमीनार से कम से कम आधा मील जरूर रही होगी। उन सत्ताईस नक्षत्र भवनों के अतिरिक्त पूर्व एवं पश्चिम दिशाओं में कुतुबमीनार से लगभग छह मील के अर्ध व्यास में बारह-बारह राशियों के वेध लेने के स्थान भी बने हुए थे जिनके द्वारा सूर्य का नित्यप्रति का उदय एवं अस्त होना कुतुबमीनार की चोटी पर खड़ा होकर देखा जा सकता था।

कुतुबमीनार की चोटी पर खड़े होकर आज भी यदि चारों ओर नज़र दौड़ाई जाए तो ऐसा मालूम पड़ता है कि कुतुबमीनार के पूर्व एवं पश्चिम में आकाश का टिकाव समतल पहाड़ियों पर है और सदैव सूर्योदय एवं सूर्यास्त इन्हीं पहाड़ियों

में ही होता कुतुबमीनार से देखा जा सकता है ।

कुतुबमीनार से पूर्व दिशा में स्थित पहाड़ियों पर कालका जी का मन्दिर वर्ष के एक विशेष दिन को सूर्योदय होने का स्थान है जिसे कुतुबमीनार की चोटी से देखा जा सकता है । यही कारण है कि इस स्थान को 'कालका' कहा जाता है । शब्द कोषों में तथा ज्योतिष शास्त्र में तैंतीस प्रकार के केतुओं को 'कालक' कहा गया है और काल सम्बन्धित गणना को भी 'कालिक' कहा गया है । अतः 'कालका' एवं 'कालिका' या 'कालका' यह शब्द काल गणना से सम्बन्धित है जैसे उज्जैन का महाकाल मन्दिर भी किसी समय विश्व भर की काल गणना का केन्द्र था अर्थात् उज्जैन का टाईम ही समस्त दुनियां में स्टैण्डर्ड माना जाता था जैसा कि आज 'ग्रीनविच' को काल गणना का केन्द्र माना जाता है । यही नहीं वेदों में ज्योतिष को 'काल ज्ञान' या 'काल विधान' शास्त्र कहा गया है और सूर्य देव की 'कालात्मा' कह कर पुकारा गया है । अतः दिल्ली का कालका जी का मंदिर भी आचार्य वराहमिहिर की वेधशाला का काल गणना का ही एक विशेष स्थान था जो अब भगवती कालका के नाम से भारत में प्रसिद्ध है ।

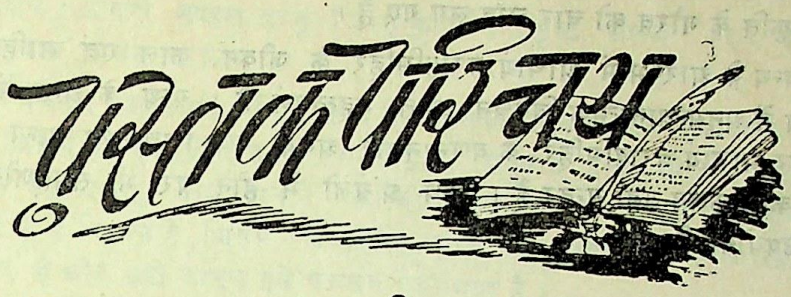
कुतुबमीनार से पूर्व में कालका मंदिर से इन्द्रप्रस्थ गुरूकुल तक एवं पश्चिम में कुसुमपुर से लेकर घूरनी—आया नगर तक जो समतल पहाड़ी सिलसिला है, यहाँ पर आचार्य वराहमिहिर के समय में ग्रहों का वेध लेने के लिए शायद कुछ एक भवन या उपकरण अथवा चिन्ह निर्मित किये गये हों जो बाद भी समय के प्रभाव से अथवा विदेशियों द्वारा नष्ट हो गये हों और कालका जी का स्थान ही उसमें से शेष रह पाया है । आज भी वर्ष के चार विशेष दिनों (सबसे बड़ा दिन, सबसे छोटा दिन एवं जब दिन और रात बराबर होते है) को कुतुबमीनार की चोटी पर खड़ा होकर प्रातः एवं सायंकाल सूर्योदय एवं सूर्यास्त के समय हम निम्न अनुसंधान कर सकते हैं—

२१ जून (बड़ा दिन) को कुतुबमीनार की चोटी से सूर्य का उदय कालका जी के मंदिर के ठीक ऊपर होता दिखाई देगा और उस दिन सूर्यास्त पश्चिम में घूरनी-आया नगर के स्थान पर होता दिखाई देगा । २३ दिसम्बर (छोटा दिन) को सूर्योदय अनंगपुर (पूर्व) से दिखाई देगा और उस दिन सूर्यास्त कुसुमपुर (पश्चिम) में होता दिखाई देगा । २१ मार्च एवं २१ सितम्बर को जब दिन एवं रात बराबर होते हैं तब सूर्योदय तुगलकाबाद (पूर्व) के स्थान से दिखाई देगा और उसी दिन सूर्यास्त मलकपुर (पश्चिम) के स्थान में दिखाई देगा । ध्यान देने की बात है कि आज दिन तक कालका जी की पहाड़ी को "सूरज की ठीकरी"—के नाम से ही पुकारा जाता है । 9356

अतः यह निश्चित रूप से ही ठीक है कि आचार्य वराहमिहिर की वेधशाला वर्तमान कुतुबमीनार से लगभग छह मील के अर्धव्यास में निर्मित थी और कुतुब-मीनार (मेरूस्तम्भ) उस महान वेधशाला का मध्यवर्ती वेधस्तम्भ है जिसे अरबी में कुतुबमीनार कहा जाता है ।

# भारत का तारा : वराहमिहिर

वराहमिहिरा ऋषि भारत में तारा बन के था आया,
इलम के कदर दानों का प्यारा बन के था आया ।
यह कायथा गांव में कुदरत ने सुन्दर गुल खिलाया था,
जन्म से ही इलम ज्योतिष वो अपने साथ लाया था।
आदित्य दास पंडित का दुलारा बन के था आया,—वराह
शमश है शाह सितारों का तो चन्द्रमा वजीर है उसका,
सिपासालार मङ्गल है तो बुध तारा सफीर उसका ।
उतर धरती पै बृहस्पत वो सितारा बन के था आया—वराह
अक्ल से इलम ज्योतिष को ज़माने भर में चमकाया,
जमीं की मिकनातीशी कशिस का सब राज़ बतलाया।
वो इलमो हुनर का जग में भण्डारा बन के था आया—वराह
साईंस दोनों ने जाकर आसमां पर चांद पहचाना.
वराहमिहरा ने धरती से ही उसकी शक्ल को जाना ।
वो सब तारों के मण्डल का नज़ारा बन के था आया—वराह
जमीं के ज़रे-ज़रे पर असर है इन सियारों का
इलम सब उसने दिखलाया यह अम्बर के अङ्गारों का ।
वो सच्चे इलम का रहबर हमारा बन के था आ वराह
बड़े-बड़े ग्रन्थ ज्योतिष के लिखे थे अपने हाथों से,
हैरानी में हुआ आलम इलम की करामातों से,
हुनर के गहरे सागर का किनारा बन के था आया—वराह
ले आया उसको दिल्ली में विक्रमादित्य महाराजा.
बजाया उसने ज्योतिष का वहां पर आ के था बाजा ।
वो ज्योतिष के गुणों का इक पिटारा बन के था आया—वराह
बसा है नाम से उसके अब भी गांव महरौली,
वहां पर रात-दिन रहती थी विद्वानों की इक टोली ।
कुतुबमीनार का ऊंचा मीनारा बन के था आया—वराह
पृथुयश उनका पुत्र भी हुआ विद्वान दुनियां में,
बना वो ज्योतिषी चोटी का था गुणवान दुनियां में ।
वो जग में बेसहारों का सहारा बन के था आया—वराह
खिले हैं गुल हजारों ही रंगीले इस गुलस्तान में,
सखी और सूरमां लाखों लड़े हैं मर्द मैदान में ।
वह हिन्द गुलशन में सुन्दर गुल हजारा बन के था आया—वराह
हमारा फर्ज है इसको क्यामत तक भुलाएं ना,
फिर इसकी याद में उत्सव भला क्योंकर मनाएं ना ।
वो इक "भगवंत" बेचारे का चारा बन के था आया—वराह




## इण्डिया एज सीन इन दी बृहत्संहिता आफ वराहमिहिर

लेखक : डा० अजय मित्र शास्त्री, एम० ए० पी० एच० डी०
प्रकाशक : सर्वश्री मोती लाल बनारसी दास, बँगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली-७
प्रथम संस्करण, पृष्ठ संख्या : ५५४, सजिलद, मूल्य पचास रुपये मात्र।

आचार्य वराहमिहिर ज्योतिष के तीनों स्कन्धों (सिद्धान्त, संहिता एवं होरा) के महान पण्डित थे। विश्व भर में आपकी टक्कर का आज तक कोई विद्वान नहीं हुआ है। ज्योतिर्विज्ञान के साथ-साथ आचार्य वराहमिहिर संस्कृत के भी महान कवि थे इसीलिए उनका समस्त साहित्य काव्य की दृष्टि से भी बड़ा महत्व पूर्ण माना जाता है।

बृहत्संहिता (वराही संहिता) आचार्य वराहमिहिर की महान कृति मानी जाती है। इसमें अनेक प्रकार के महत्वपूर्ण विषयों का संकलन है और इसे केवल ज्योतिष का ग्रन्थ कहना तो भारी भूल होगी। इस महान ग्रन्थ में आचार्य वराहमिहिर ने तत्कालीन भारत की भौगोलिक स्थिति के साथ-साथ उस समय के अनेक नगरों, पर्वतों, वनों एवं जातियों के नाम तथा वनस्पति विज्ञान, पशुविज्ञान, रत्न विज्ञान, ऋतु विज्ञान, आकृति विज्ञान, शकुन विज्ञान एवं भवन निर्माण आदि-आदि अनेक महत्वपूर्ण विषयों का संकलन किया है। ईसा की ग्यारहवीं शति में भारत भ्रमण करने वाले विदेशी विद्वान अल्बेरूनी ने बृहत्संहिता का अरबी में अनुवाद भी किया था।

डा० अजय मित्र शास्त्री प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विषयों के विद्वान हैं और उनके द्वारा बृहत्संहिता सरीखे महान ग्रन्थ पर शोध करना एक प्रकार से समुद्र मंथन ही कहा जायेगा। आज तक बृहत्संहिता का महत्व कई एक दृष्टियों से बहुत माना जाता रहा है; किन्तु डा. शास्त्री ने बृहत संहिता के आधार पर तत्कालीन अर्थात वराहमिहिर कालीन भारत का चित्रण कर के इस के महत्व को कहीं ज्यादा ऊंचा करने का सराहणीय प्रयास किया है और इसके लिए वह वधाई के पात्र हैं।

डॉ० अजय मित्र शास्त्री ने बृहत्संहिता के गहरे अध्ययन के बाद वराहमिहिर कालीन भारत की जो भौगोलिक, सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, साहित्यक, वैज्ञानिक एवं आर्थिक स्थितियों का विस्तृत वर्णन दिया है उससे भारतीय इतिहास एवं संस्कृति के गौरव को चार चाँद लग गए हैं।

ग्रन्थ के आरम्भ में आचार्य वराहमिहिर के जीवन, काल एवं साहित्य के सम्बन्ध में अनुसन्धानात्मक विवेचन बहुत महत्वपूर्ण है। ग्रन्थ के अन्त में आर्ट पेपर पर आचार्य वराहमिहिर के वर्णनानुसार अनेक रेखा चित्र तथा अन्य दुर्लभ चित्रों का संकलन बड़ा सुन्दर है। ग्रन्थ अंग्रेजी में होने पर भी संग्रहणीय एवं परम उपयोगी है।

•

## वैदिक साहित्य में शकुन एवं अद्भुत घटनाएं

लेखक : डा० कृष्ण लाल शर्मा सूदन, एम० ए० पी० एच० डी०।

प्रकाशक : सूदन प्रकाशन, जवाहर पार्क, बेहट रोड, सहारनपुर उ० प्र०।

पृष्ठ संख्या, ३२७, प्रथम संस्करण, सजिल्द, मूल्य पच्चीस रुपये मात्र।

संस्कृत सृष्टि की प्राचीनतम भाषा है और वेद मानवीय कल्याण के समष्टिगत स्रोत स्वरूप, संसार को तृप्ति प्रदान करने वाले प्राचीनतम ग्रन्थ रत्न। वेदों की वरीयता का बखान जितना ही किया जाय थोड़ा है। विश्व ने जो कुछ सीखा है उसके मूल स्रोत वेद ही हैं।

वैदिक साहित्य में शकुन के विषय में विदेशी विद्वानों ने भी अध्ययन किये हैं उनमें श्री बेबर और कोल्ब्रुक के नाम विशेष रूप से उल्लेखणीय है। डा० कृष्ण लाल शर्मा सूदन का इस दिशा में प्रयास वास्तव में प्रशंसनीय कार्य है। डा० सूदन ने भारतीय वातावरण में शकुन एवं अद्भुत घटनाओं पर जो शोध कार्य किया है वह अपने में परिपूर्ण है तथा इसके लिए वह बधाई के पात्र हैं।

ग्रन्थ में इण्डो-यूरोपीय एवं इरानी काल के शकुनों की तुलनात्मक विवेचना करने के पश्चात विद्वान लेखक ने वैदिक काल में पक्षियों, पशुओं, वनस्पतियों तथा मनुष्यों द्वारा प्राप्त शकुनों का विस्तृत विवरण किया है। शकुनों के अतिरिक्त अद्भुत घटनाओं द्वारा प्राप्त भविष्य ज्ञान के विषय में भी चर्चा की गयी है। वैदिक साहित्य के अतिरिक्त समस्त संस्कृत साहित्य में शकुनों के विषय में उपलब्ध जानकारी ग्रन्थाकार ने देकर एक आवश्यक कमी को भी पूरा कर दिया है। ग्रन्थ हर प्रकार से संग्रहणीय एवं उपयोगी है। वैदिक काल में भविष्य ज्ञान प्राप्त करने में शकुन एवं अद्भुत घटनाओं को बड़ा महत्व दिया जाता था। विज्ञान की बृद्धि के साथ-साथ यही शकुन बाद में ज्योतिष के एक आवश्यक अंग बन गए और आज दिन तक शकुनों का हमारे दैनिक जीवन में कितना महत्वपूर्ण हाथ है इसके लिखने की आवश्यकता नहीं है।

•

## पंचतंत्र (डोगरी अनुवाद)

मूल लेखक : श्री विष्णु शर्मा, डोगरी अनुवाद : श्री अनन्त राम शास्त्री

प्रकाशक : डोगरी मण्डल जम्मू (जम्मू काश्मीर), पृष्ठ संख्या : १६०, मूल्य चार रुपये मात्र', प्रथम सस्करण ।

पंचतंत्र संस्कृत का प्रसिद्ध ग्रन्थ है जिसका अनुवाद लगभग विश्व की सभी भाषाओं में हो चुका है। इसका सबसे पहले अनुवाद ईसा की छटी शताब्दी में ईरान के बादशाह नोशेरवान ने पहलवी में करवाया था। मूल ग्रन्थ पांच खण्डों (तंत्रों) में विभक्त है जिसमें राजनीति शास्त्र से सम्बन्धित अनेक छोटी-छोटी कथाएं है और इसी कारण इसे पंचतंत्र कहा गया है।

आधी दर्जन से भी उपर डोगरी की अनेक लोक प्रिय पुस्तकों के लेखक श्री अनन्त राम शास्त्री ने पंचतंत्र का अपनी मातृ भाषा डोगरी में बहुत ही सुन्दर अनुवाद किया है। डुग्गर देश की जनता को पंचतंत्र जैसे विश्व प्रसिद्ध ग्रन्थ से परिचित कराने का भी श्रीशास्त्री का प्रयास सराहनीय है और वह अपनी इस कृति के लिए वधाई के पात्र हैं। पुस्तक प्रत्येक दृष्टि से उपयोगी एवं संग्रहणीय है।

•

## मेघदूत (डोगरी अनुवाद)

मूल लेखक : महाकवि कालिदास, डोगरी अनुवाद : श्री श्याम लाल शर्मा

प्रकाशक . श्रीपति प्रकाशन, १९५ विजय गढ़ जम्मू (जम्मू काश्मीर)

पृष्ठ संख्या ६६, मूल्य दो रुपये मात्र, प्रथम संस्करण

कवि कुल गुरू कालिदास ने विरही यक्ष द्वारा रामगिरी आश्रम से अलका पुरी स्थित अपनी प्रियतमा को अपनी विरहाग्नि शांत करने के लिए एक सन्देश भेजा था। आषाढ़ के प्रथम दिवस के बादल सन्देश वाहक बने और उसी आधार पर वह काव्य पूरा हुआ जिसे मेदूघत कहते हैं।

मेघदूत का साहित्यक महत्व तो है ही किन्तु इसका सांस्कृतिक महत्व भी बहुत ज्यादा है क्योंकि कवि कुल चूड़ामणि कालिदास ने इस में आज से लगभग दो हजार वर्ष पूर्व के भारत की भौगोलिक एवं सांस्कृतिक दशाओं का भी वर्णन किया है।

डोगरी के वर्चस्वी लेखक एवं अनुसन्धाता श्री श्याम लाल शर्मा ने मेघदूत जैसे सुप्रसिद्ध संस्कृत काव्य का डोगरी में अनुवाद करने का सफल प्रयास किया है। अनुवाद करते समय यह ध्यान रखा गया है कि जनसाधारण से लेकर विद्वान व्यक्ति तक के सभी लोग इससे लाभान्वित हो सकें। पुस्तक की छपाई, साज-सज्जा तथा गेट-अप सभी आकर्षक हैं।

•

## स्याढां (डोगरी)

लेखिका : श्रीमति शक्ति शर्मा

प्रकाशक : वही, पृष्ठ संख्या ८७, मूल्य : ढाई रुपये मात्र, प्रथम संस्करण।

डोगरी भाषा के साहित्य को समृद्ध करने के लिए यह जरूरी है कि डोगरी में मौलिक निबन्धों की रचना की जाय। श्रीमति शक्ति शर्मा ने स्याढ़ां लिख कर इस महत्वपूर्ण कार्य को पूरा करने का सफल प्रयास किया है।

स्याढ़ां के लगभग सभी निबन्ध प्रभाव शाली एवं रूचिवर्धक हैं, किन्तु आओ रलिऐ बौहचै (आओ मिल कर बैठें), अन्नी आस्था (अन्धी आस्था), लोक साहित्य और भागें या फेर (भाग्य का फेर) तो विशेष रूप से उल्लेखणीय हैं।

पुस्तक की छपाई, साज एवं सज्जा सभी सुन्दर और आकर्षक हैं। डोगरी से प्यार और अनुराग रखने वाले सभी लोग स्याढ़ां का हृदय से स्वागत करेंगे ऐसी पूर्ण आशा है।

•

## त्रिवेणी [डोगरी]

लेखक मण्डल : श्रीमति शक्ति शर्मा एवं श्री श्याम लाल शर्मा

प्रकाशक : वही, पृष्ठ संख्या १४८, मूल्य तीन रुपये मात्र, प्रथम संस्करण।

जिस प्रकार से गंगा-यमुना एवं सरस्वती के पवित्र संगम को 'त्रिवेणी' कहा जाता है उसी प्रकार से डोगरी के भाषा, संस्कृति एवं साहित्य सम्बन्धी चुने हुए अठारह लेखों का संग्रह ही त्रिवेणी है। त्रिवेणी के सभी लेखों की भाषा सरल, सरस एवं जनसाधारण के समझ में शीघ्रता से आने वाली है।

श्रीमति शक्ति शर्मा एवं श्री श्याम लाल शर्मा की डोगरी साहित्य को बहुत ही देन है', जिसमें त्रिवेणी विशेष रूप से उल्लेखणीय है। पुस्तक प्रत्येक दृष्टि से सुन्दर और उपयोगी है।

•

## आपकी जन्म कुण्डली

लेखक : श्री महादेव गणेश दांते (उर्फ पृथ्वीधराचार्य),
प्रकाशक : प्रो० महादेव गणेश दांते, "विजय भवन", १२, जेल रोड, गली नं० २, इन्दौर (म, प्र.), पृष्ठ संख्या : २४८, मूल्य सात रुपये मात्र, द्वितीय संस्करण।

फलित् ज्योतिष पर अब तक अनेक ग्रन्थ लिखे गये हैं और वर्तमान में भी लिखे जा रहे हैं। फलित ज्योतिष का विषय वास्तव में बहुत ही गम्भीर हैं और इसमें जितनी भी खोज की जाय वह थोड़ी है।

प्रो० महादेव गणेश दांते फलित ज्योतिष के सुप्रसिद्ध विद्वान होने के साथ-साथ एक अनुभवी चिकित्सक भी हैं। फलित ज्योतिष पर उन्होंने पिछले कई वर्षों से

निरन्तर खोज और अध्यन करने के पश्चात ही आपकी जन्म कुण्डली ग्रन्थ की रचना की है। ज्योतिष का प्रारम्भिक ज्ञान रखने वाले विद्यार्थी से लेकर विद्वान व्यक्ति के स्तर तक के सभी लोग इस ग्रन्थ से लाभान्वित हो सकते है यही इस ग्रन्थ की विशेषता है। ग्रन्थ इक्कीस अध्यायों में विभक्त है जिनमें फलित ज्योतिष सम्बन्धि सभी आवश्यक विषय सरलता पूर्वक दिये गये हैं। प्रो० दांते अपनी इसी महान कृति के लिए वधाई के पात्र हैं। पुस्तक सुन्दर और आकर्षक है।

•

## हिन्दू धर्म के दस अंग

लेखक : श्री चून्नी लाल सूदन शास्त्री विद्याभूषण',
प्रकाशक : सूदन प्रकाशन, जवाहर पार्क, बेहट रोड, सहारनपुर उ. प्र.
पृष्ठ संख्या : २८८, मूल्य : साढ़े तीन रुपये, प्रथम संस्करण

विशाल हिन्दू धर्म न तो अन्ध विश्वास पर ही टिका हुआ है और न ही संकीर्णता अथवा अनुदारता पर ही यह आधारित है। वास्तव में हिन्दू धर्म एक प्रकार की जीवन-पद्धति का ही नाम है और इसके अन्तगर्त विश्व में धर्म नाम से विख्यात सभी मत-मतान्तरों का समावेश हो जाता है।

"हिन्दू धर्म के दस अंग" पुस्तक में विद्वान लेखक ने हिन्दू धर्म के दस अंगों पर अलग-अलग निबन्ध लिखकर हिन्दू धर्म की व्यापकता एवं श्रेष्ठता तथा महानता का विद्वता पूर्ण विश्लेषण किया है। हिन्दू धर्म के मानने वालों के अतिरिक्त अन्य धर्मावलम्बियों के लिए भी इस पुस्तक से हिन्दू धर्म के विषय में विस्तृत जानकारी प्राप्त हो सकती है। प्रत्येक हिन्दू मात्र को इस पुस्तक का अध्ययन करके अपने धर्म के विषय में ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। छपाई एवं गेट-अप सभी सुन्दर और आकर्षक हैं।

•

## हिन्दू नित्य कृत्य

लेखक : श्री चून्नी लाल सूदन शास्त्री 'विद्याभूषण'
प्रकाशक : सूदन प्रकाशन, जवाहर पार्क, बेहट रोड, सहारनपुर उ. प्र.
पृष्ठ संख्या : १२२, मूल्य : केवल पचहत्तर पैसे, प्रथम संस्करण

हिन्दू धर्म में जीवन का एक क्षण भी व्यर्थ में नष्ट न होने के लिए दैनिक नित्य कर्मों को बहुत महत्व दिया गया है। प्रातः काल से लेकर रात्रि को शयन करने तक के समय में ईश्वरोपसना के अतिरिक्त, स्नान आदि अन्य कृत्यों के लाभ और महत्व का "हिन्दू नित्य कृत्य" में सविस्तार परिचय दिया गया है। सन्ध्योपासना विधि के साथ-साथ अनेक पूजा-वन्दना के स्तोत्र, भजन एवं आरतियां भी इस लघु पुस्तिका में संकलित की गयी हैं। प्रत्येक हिन्दू परिवार में इस पुस्तक का होना आवश्यक है। छपाई एवं साज-सज्जा सुन्दर और आकर्षक है।

•

## दी एनटीक्यूटी आफ हिन्दू एस्ट्रानोमी एण्ड दी तामिल्ज

लेखक : श्री वी० त्रयुवेङ्कटाचार्य एम० ए० एल० टी०,
प्रकाशक : श्री वी० त्रयुवेङ्कटाचार्य, १३ मयूसा सेट स्ट्रीट, टी० नगर मद्रास-१७
पृष्ठ संख्या : ४०, मूल्य एक रुपया मात्र

अंग्रज और उसके चापलूस भूले-भटके भारतीय विद्वानों ने भारतीय इतिहास में अनेक मनगढ़ंत भ्रम जाल फैला कर ऐसा परिवर्तन कर दिया है कि हमारे यहाँ ईसा पूर्व में होने वाले सभी घटना क्रमों का काल बहुत पीछे ढकेल दिया गया है। ऐसा करने से अंग्रेज की प्रभुता को चार चांद लग सकते थे और भारतीय अपने अतीत के गौरव से वांच्छित रह सकते थे।

व्योवृद्ध एवं प्रसिद्ध दक्षिण भारतीय विद्वान श्री वी० त्रयुवेङ्कटाचार्य ने वर्षों की निरन्तर खोज और अध्ययन के बाद इस छोटी से किंतु महत्वपूर्ण पुस्तिका में ज्योतिर्विज्ञान के आधार पर अंग्रेज द्वारा फैलाए गये बहुत से भ्रम जालों को समूल ही नष्ट करके भारतीय इतिहास में एक नवीन क्रांति खड़ी कर दी है। उदाहरण के तौर पर आदि शङ्कराचार्य, भगवान महावीर, महात्मा बुद्ध, आर्यभट, वराहमिहिर, भास्कर तथा उत्पल आदि अ दि के अंग्रेज द्वारा सिद्ध किये गये जन्म काल को गणित द्वारा असत्य सिद्ध करके इन सब का सही जन्म काल बताया गया है। प्रत्येक चिन्तन शील भारतीय को इस पुस्तक का अध्ययन करना चाहिए।

•

## फन्डेमेंटल्ज आफ हिन्दू एस्ट्रालोजी

लेखक : श्री एस० कन्नन 'विद्या विशारद'
प्रकाशक : कन्नन पब्लीकेशन्स, २, साउथ बैंक फर्स्ट स्ट्रीट, मद्रास–२८,
पृष्ठ संख्या : १४०, मूल्य छः रुपये मात्र

उत्तर भारत की अपेक्षा दक्षिण भारत में आज भी फलित ज्योतिष पर विश्वास रखने वालों एवं फलित ज्योतिष के विद्वानों की संख्या कहीं अधिक है। वास्तव में फलित ज्योतिष को सुरक्षित रखने में दक्षिण भारतीय विद्वानों को सब से ज्यादा श्रेय प्राप्त है।

श्री एस० कन्नन भी दक्षिण भारतीय हैं और फलित ज्योतिष तथा नाड़ी ग्रन्थों की आपने विशेष रूप से खोज एवं उनका अध्ययन किया है। आप एक अवकाश प्राप्त आयकर अधिकारी हैं और अपने सर्विस करल में भी आपने ज्योतिष सम्बन्धी अनेक खोज पूण लेख तथा ग्रन्थ लिखे हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ में आपने ग्रहों एवं राशियों के प्रारम्भिक ज्ञान से लेकर इनसे सम्बन्धित समस्त आवश्यक गणनाओं एवं इनके प्रभावों का सरल किन्तु विस्तृत वर्णन किया है।

ग्रन्थ, में जन्मपत्री एवं प्रश्न तथा मुर्हुत सम्बन्धी आवश्यक विषयों पर भी विद्वता पूर्ण प्रकाश डाला गया है। अंग्रेजी पढ़े-लिखे ज्योतिष के प्रेमियों के लिए

यह पुस्तक बहुत ही उपयोगी है। ज्योतिष शास्त्र का अध्ययन करने से पूर्व इस पुस्तक का पढ़ना इस प्रकार से उपयोगी सिद्ध होगा जैसे किसी विशाल भवन के निर्माण से पूर्व उसकी नींव को सुदृढ़ करना। छपाई एवं साज-सज्जा बहुत ही सुन्दर और आकर्षक है।

•

## स्वर चिन्तामणि

लेखक : श्री एस० कन्नन 'विद्या विशारद"
प्रकाशक : कन्नन पब्लिकेशन्स २, साउथ बैक फर्स्ट स्ट्रीट, मद्रास-२८
पृष्ठ संख्या : ८६, मूल्य साढ़े तीन रुपये

स्वर शास्त्र का महत्व ज्योतिष विज्ञान में बहुत ज्यादा माना गया है। बिना स्वर शास्त्र के ज्ञान के भविष्य वक्ता सही सही भविष्य नही कह सकता है। ज्योतिष से सम्बन्धित प्रत्येक कार्य में तथा विशेषकर प्रश्न, मुहूर्त एवं यात्रा आदि में तो स्वर शास्त्र का ज्ञान होना परमावश्यक समझा जाता है।
श्री एस० कन्नन ने प्राचीन हस्त लिखित ग्रन्थों का मन्थन करके प्रस्तुत ग्रन्थ की अंग्रेजी में रचना की है और वह इस प्रयास के लिए वधाई के पात्र हैं।

ग्रन्थ में कुल चौबीस अध्याय हैं जिनमें स्वर की उत्पति एवं स्वर ज्ञान से लेकर भिन्न-भिन्न अवसरों पर चल रहे स्वरों के शुभ एवं अशुभ फलों का विवेचन किया गया है। स्वर किस प्रकार से बदला जाता है और स्वरों द्वारा किस प्रकार से युद्ध, वर्षा, आखेट, कृषि, स्वप्न एवं मृत्यु आदि के विषय में जानकारी प्राप्त होती है, यह सभी आवश्यक विषय इस ग्रन्थ में संकलित किये गये हैं।

पुस्तक की छपाई एवं गेट-अप सुन्दर है। ग्रन्थ संग्रहणीय एव उपयोगी है।

•

## शिराजा

सम्पादक : श्री श्याम लाल शर्मा
प्रकाशक : ललित कला, संस्कृति व साहित्य अकादमी, एक्सचेंज रोड, जम्मू-तवी, (जम्मू-काश्मीर)
पृष्ठ संख्या ७२, वार्षिक शुल्क आठ रुपये, सातवें वर्ष (जून १९७१)का प्रथम अङ्क

जम्मू-काश्मीर की शीत कालीन राजधानी जम्मू से राष्ट्रभाषा हिन्दी में प्रकाशित त्रैमासिक शीराजा' का प्रस्तुत अङ्क सम्पादकीय, लेखलहरी, कविताकुञ्ज, गल्प गुच्छ एवं समीक्षा सार आदि पांच भागों में विभक्त है। लेखलहरी में जम्मू एवं काश्मीर की भाषाओं (डोगरी एवं काश्मीरी) के साहित्य के सम्बन्ध में सारगर्भित एवं अनुसन्धानात्मक लेख हैं। इसी संदर्भ में काश्मीर के तीर्थस्थल बूढ़े अमरनाथ जी का भी सुन्दर वर्णन है। कविताकुञ्ज एवं गल्पगुच्छ में भी रोचक कविताओं एवं कहानियों का संकलन है। समीक्षासार में नवीन-नवीन प्रकाशनों की विस्तृत जानकारी दी गयी है जबकि सम्पादकीय में एक साथ छह विषयों को बड़ी विद्वता के साथ प्रस्तुत किया गया है।

पत्रिका के सम्पादक श्री श्याम लाल शर्मा एक अनुभवी और सुलझे हुए विद्वान हैं और उनके कुशल सम्पादन में पत्रिका उपत्तरोत्तर उन्नति करेगी ऐसा निश्चित है। पत्रिका की साज-सज्जा एवं छपाई आदि सभी सुन्दर हैं।

•

## ओंम [परमार्थांक]

सम्पादक : श्री गोरख नाथ नन्दा

प्रकाशक : कार्यालय मासिक 'ओम' मकान नं० ४०६२, अजमेरी गेट के अन्दर, दिल्ली-६.

पृस्ठ संख्या : १६२, मूल्य छह रुपये मात्र (वार्षिक शुल्क १६ रुपये, मासिक १) रुपया।

उर्दू पठित जनता को हिन्दू धर्म एवं आध्यात्मवाद और राष्ट्र प्रेम से सम्बन्धित विषयों पर न केवल अखिल भारत में बल्कि विदेश में भी यदि किसी पत्र के माध्यम से जानकारी प्राप्त हो सकती है तो वह 'ओम' ही हो सकता है। लगभग चालीस वर्ष पूर्व 'ओम' का सर्व प्रथम प्रकाशन लाहौर से प्रारम्भ हुआ था और देश विभाजन के बाद अब दिल्ली से नियमित रूप से होता चला आ रहा है।

'ओम' के सम्पादक श्री गोरखनाथ नन्दा स्वामी रामतीर्थ जी महाराज के पौत्र शिष्य हैं तथा भारतीय दर्शन, आध्यात्म एवं संस्कृति के उच्च कोटि के विद्वान होने के साथ-साथ एक सुयोग्य लेखक एवं कुशल सम्पादक भी हैं। उनकी लेखकी सदैव विराट हिन्दू धर्म का चित्र-चित्रण करती चली आ रही है और उनके सारगर्भित लेखों को बड़े आदर से पढा जाता है।

'ओम' का प्रस्तुत "परमार्थाङ्क" सन १६७२ जनवरी का विशेषाङ्क है। इस अङ्क में देश के सुप्रसिद्ध लेखकों के लगभग ६१ उच्चकोटि के लेख एवं कविताएं हैं। परमार्थ से सम्बन्धित ऐसा कोई विषय नहीं है जो इस अङ्क में अछूता रह गया हो। अनेक दुलर्भ रंगीन चित्रों से सुशोभित इस अंक की तुलना गोरखपुर से प्रकाशित 'कल्याण' के विशेषांकों से की जा सकती है। अंक संग्रहणीय है। छपाई, गेट-अप सभी सुन्दर और आकर्षक हैं।

## मानस सन्देश

सम्पादक: श्री शिव गोपाल मैहरोत्रा

प्रकाशक: श्री शिव गोपाल मैहरोत्रा, मुहल्ला घामावाला, देहरादून (उ. प्र.)

पृष्ठ संख्या : ४०, मूल्य : नि: शुल्क, वार्षिक

'गायत्री सन्देश' के भूतपूर्व सम्पादक तथा सुप्रसिद्ध विचारक एवं लेखक श्री मैहरोत्रा द्वारा 'मानस सन्देश' वार्षिक पत्र का सम्पादन एवं प्रकाशन वास्तव में ही भारतीय जनता और विशेकर हिन्दू समाज के लिए एक प्रशंसनीय प्रयास है। प्रत्येक चिन्तन शील व्यक्ति को इस पत्रिका का अध्ययन करना मानस रूपी गहरे सागर में गोता लगाना ही होगा।

प्रस्तुत अंक में कुल मिलाकर अठारह लेख हैं जिनमें विद्वान लेखकों ने श्री रामचरित मानस के भिन्न-भिन्न विषयों पर प्रकाश डाला है। अठारह का अङ्क भी ऐसे पत्र के लिए विशेष महत्व रखता है क्योंकि अठारह (आठ+एक) के अङ्क का जोड़ ९ होता है और ९ को हमारे यहाँ पूर्ण ब्रह्म कहा गया है और इसी लिए श्री गीता जी के अठारह अध्याय हैं और पुराणों की संख्या भी अठारह ही है। छपाई साज-सज्जा एवं गेट अप सभी सुन्दर और आकर्षक हैं। पत्रिका हर प्रकार से उपयोगी एवं संग्रहणीय है।

•

## गीता सन्देश (मानवता अंक)

प्रधान सम्पादक : श्री न्यायमित्र शर्मा 'विशारद'
प्रकाशक : गीता सन्देश कार्यालय, पो० स्वर्गाश्रम, ऋषीकेश (हिमालय)
पृष्ठ संख्या : १४५, वार्षिक शुल्क चार रुपये मात्र

श्री स्वामी वेदव्यासानन्द सरस्वती द्वारा भगवती गंगा के तट पर स्वर्गाश्रम सरीखे मनोरम एवं पवित्र स्थल पर स्थापित "श्री गीता-आश्रम" जहां अनेक धार्मिक एवं आध्यात्मिक प्रकाशनों तथा कार्यों के लिए प्रसिद्ध है, वहाँ "गीता संदेश" भी इसी आश्रम का एक दिव्य प्रसाद है।

यूं तो "गीता सन्देश" के कई एक विशेषाङ्क अब तक प्रकाशित हो चुके हैं; किन्तु प्रस्तुत "मानवता अंक" को गत समस्त विशेषाङ्कों में प्रमुख कहा जाए तो गलत न होगा। मानवता से सम्बधित लगभग नव्वे लेखों एवं कविताओं का समावेश होने से अंक अपने में परिपूर्ण हो गया हैं। वेदों, पुराणों एवं धर्मशास्त्रों के अतिरिक्त बाईबल और कुरान तक में मानवता सम्बन्धी बिखरी पड़ी सामग्री को एक स्थान पर एकत्रित करने का कार्य श्री न्याय मित्र शर्मा के कुशल सम्पादन का ही मधुर फल है। छपाई, साज-सज्जा एवं गेट-अप सभी सुन्दर हैं। अंक संग्रहणीय है।

•

## वाईस ऑफ दी होली लैण्ड

सम्पादक : श्री स्वदेश रञ्जन घोष
प्रकाशक : हिन्दू मिशन, ज्योतिसर, कुरूक्षेत्र, हरियाणा
पृष्ठ संख्या ८, वार्षिक शुल्क छह रुपये, एक प्रति पचास पैसे, मासिक (इंगलिश)
पन्द्रहवे वर्ष का प्रथमाङ्क

यूं तो कुरूक्षेत्र की समस्त भूमि को ही परम पवित्र माना गया है लेकिन श्री मद्भगवत् गीता की जन्मस्थली ज्योतिसर अर्थात जिस स्थान पर भगवान श्री कृष्ण ने अर्जुन को गीता जी का उपदेश दिया था, को विशेष रूप से पवित्र तीर्थ माना जाता है। ज्योतिसर को दिव्य रूप प्रदान करने का श्रेय ब्रह्मलीन श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती जी महाराज को प्राप्त है और उन्हीं द्वारा स्थापित "हिन्दू-मिशन" का मासिक प्रकाशन है 'वाईस ऑफ दी होली लैण्ड।'

पत्रिका में हिन्दू मिशन की गतिविधियों के अतिरिक्त भगवती सरस्वती, अथर्ववेद, विश्वास एवं कमला का दर्पण आदि-आदि ज्ञानवर्धक एवं सारगर्भित लेख हैं। पत्रिका की सामग्री उच्चकोटि की होते हुए भी साधारण व्यक्ति के लिए भी उपयोगी है। प्रत्येक चिन्तनशील व्यक्ति को इस पत्रिका का अध्यन करना चाहिए। छपाई एवं लेखों का संकलन बहुत सुन्दर हैं।

•

## हिन्दू धर्म

सम्पादक : मुन्शी शिवनाथ राय 'तस्कीन' हाफ़िजाबादी

प्रकाशक : साधु कुटीर, एल/६ कालकाजी, नई दिल्ली—१९

पृष्ठ संख्या : १२८, प्रथम संस्करण, सजिल्द मूल्य साढ़े तीन रुपये मात्र

हिन्दू धर्म एक अथाह समुद्र हैं और इस पर जितना भी लिखा जाए वह तो सूरज को चिराग दिखाने वाली बात ही है। इतना जरूर है कि उर्दू साहित्य में आधुनिक काल में हिन्दू धर्म पर ग्रन्थ लिखना केवल उर्दू पढ़े लिखे लोगों के लिए परम उपयोगी सिद्ध हो सकता है और प्रसिद्ध लेखक एवं पत्रकार श्री तस्कीन हाफिजाबादी का इस दिशा में प्रयास न केवल प्रशंसनीय है बल्कि अनुकरणीय भी है।

प्रस्तुत ग्रन्थरत्न में उर्दू एवं हिन्दी के कई एक सुप्रसिद्ध लेखकों के सारगर्भित लेखों के अतिरिक्त श्री तस्कीन जी के अपने भी कई उच्चकोटि के लेख हैं। समस्त लेख हिन्दू धर्म के विषय में एक अच्छी जानकारी प्रदान करने वाले एवं महत्वपूर्ण हैं जो ग्रन्थ की विशेषता है।

"साधु" के सम्पादक एवं लगभग सौ से भी ऊपर उर्दू तथा हिन्दी की अनेक छोटी-बड़ी पुस्तकों के लेखक श्री तस्कीन का प्रस्तुत ग्रन्थ हिन्दू धर्म के विषय में विस्तृत जानकारी प्रदान करने वाला एवं हिन्दू धर्म के प्रति श्रद्धा एवं विश्वास जागृत करने वाला है। उर्दू पठित हिन्दू एवं अहिन्दू दोनों को इसका अध्ययन करने से समान रूप से लाभ होगा ऐसा हमारा विश्वास है।

•

## ज्योतिष बोध

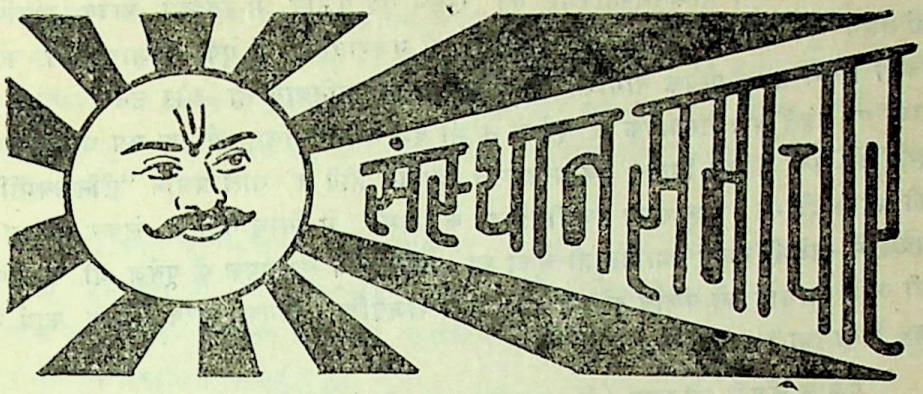
सम्पादक : श्री राधेश्याम कौशिक

प्रकाशक : ज्योतिष बोध कार्यालय, मुजफ्फरनगर [उ० प्र०]

पृष्ठ संख्या ३२, वार्षिक शुल्क सात रुपये और एक प्रति ७५ पैसे

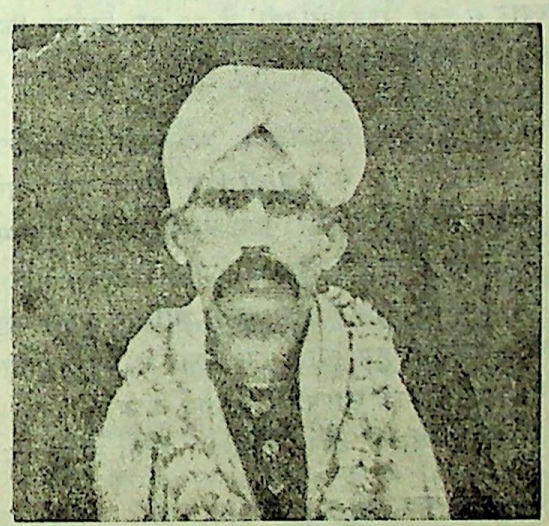
वेद के छः अङ्ग माने गए हैं और ज्योतिष भी उन्हीं में से एक अङ्ग होने के कारण वेदांग कहलाता है। गणित एवं फलित ज्योतिष के मुख्य रूप से दो रूप हैं और ज्योतिष बोध फलित ज्योतिष से ही सम्बन्धित मासिक पत्रिका है।

लेखों का संकलन, छपाई एवं साज-सज्जा सभी सुन्दर हैं। पत्रिका उपयोगी एवं संग्रहणीय हैं।




## भारतीय ज्योतिर्विज्ञान अनुसन्धान संस्थान

# परिचय की कुछ रेखाएं



**संस्थापक श्री**

भारतीय ज्योतिष शास्त्र के प्रचार, प्रसार, अनुसन्धान एवं उत्थान के लिए श्री पं० गौरीनाथ जी राज ज्योतिषी (गुजरांवाला निवासी) ने संवत विक्रमी २०१६ (ईस्वी सन् १९५९) में 'भारतीय ज्योतिर्विज्ञान अनुसन्धान संस्थान' की स्थापना की थी। संस्थापक के पवित्र संकल्पों को क्रियात्मक रूप प्रदान करता हुआ संस्थान दिन प्रतिदिन उन्नति की ओर बढ़ता चला जा रहा है और इसकी ख्याति न केवल भारत में ही सीमित है बल्कि विदेशों में भी उत्तरोत्तर बढ़ती चली जा रही है।

२५० वर्ष पूर्व संस्थान के संस्थापक के महान पूर्वज श्री पं० चननसिंह जी ज्योतिषाचार्य, श्री पं० रायसिंह जी ज्योतिषाचार्य एवं श्री पं० अमरसिंह जी ज्योतिषाचार्य, अपने प्रदेश के प्रसिद्ध बिद्वान एवं विख्यात ज्योतिषी थे। उस समय पंजाब में सुकरचकिया मिसल के सिख सरदारों का उदय हो रहा था। मिसल के संगठनकर्त्ता सरदार चढ़तसिंह थे जिनके पुत्र सरदार महासिंह एवं पौत्र पंजाब केसरी महाराजा रणजीतसिंह थे। भारत की उत्तर पश्चिमी सीमाओं से विदेशी आक्रमणकारियों को रोकने एवं पंजाब में स्वदेशी राज्य स्थापित करनें के लिए सुकरचकिया मिसल के सरदारों ने गुजरांवाला में एक विशाल सेना का संगठन किया। उस समय प्रत्येक नागरिक का सैनिक होना अनिवार्य था और उनके नाम भी सिंह शब्द पर रहते थे। संस्थापक के पूर्वजों ने भी देश सेवा के लिए सैनिक रूप धारण किया और इन्हें उस सेना में एक विद्वान एवं प्रतिष्ठित ब्राह्मण होने के नाते प्रधान "सैनिकधर्माधिकारी" की पदवी दी गई। महाराजा रणजीतसिंह के समय में सिन्धु नदी से लेकर तिब्बत तक के प्रदेश में स्वदेशी राज्य स्थापित हो चुका था। उस समय संस्थापक के पूर्वज श्री पं० पिण्डीदास जी ज्योतिषाचार्य को पंजाब केसरी ने अपना राजपंडित नियुक्त करके सैनिक कार्य से मुक्त कर दिया था।

पंजाब केसरी की मृत्यु (ई० सन् १८३९) के कुछ वर्ष उपरान्त जम्मू-काश्मीर में डोगरा नरेश महाराजा गुलाबसिंह का आधिपत्य हो गया था। श्री पं० पिण्डीदास जी "राजपण्डित" के वंशज (आपके छह पुत्र थे जिनमें श्री पं० किशनचन्द जी ज्येष्ठ थे) श्री पं० शिवदयाल जी राज ज्योतिषी एवं श्री पं० परमानन्द जी 'शामवेदी' राज ज्योतिषी को सादर जम्मू बुलाया गया। डोगरा नरेश के पुत्र धर्मावतार महाराजा रणवीरसिंह एवं महामहिम महाराजा प्रतापसिंह के राज-दरबार में इन्हें 'राजज्योतिषी' के पद पर नियुक्त किया गया और वहीं पर निवास के लिए स्थान आदि भी प्रदान किये गये।

इधर गुजरांवाला में श्री पं० किशनचन्द 'षटशास्त्री' बड़े प्रसिद्ध विद्वान एवं ज्योतिष शास्त्र के ज्ञाता थे। इनके पास दूर दूर से विद्यार्थी विद्या ग्रहण करने आते थे। इन्हें "शास्त्रार्थ महारथी" की उपाधि से भी विभूषित किया गया था। इनके पुत्र महामहोपाध्याय श्री पं० देवीदत्त ज्योतिषाचार्य भी अपने समय के ख्याति प्राप्त विद्वान और पौराणिक कथावाचक तथा कर्म-काण्डी थे। श्री पं० गौरीनाथ जी का जन्म आश्विन शुक्ल चतुर्थी संवत वि० १९४६ को श्री पं० देवीदत्त जी के यहां ही हुआ था। इस प्रकार से गत कई पीढ़ियों से वंश परम्परा-गत ज्योतिष शास्त्र तथा अन्य धार्मिक शास्त्रों में की गई खोज एवं सेवाओं द्वारा प्राप्त अद्भुत चमत्कारों का श्री पं० गौरीनाथ जी के अन्दर विद्यमान रहना स्वभाविक ही था।

देश विभाजन होने के बाद श्री पं० गौरीनाथ जी को भी अन्य सभी लोगों की भांति अपना सब कुछ छोड़कर भारत आना पड़ा। पुश्तों से संग्रहीत दुर्लभ ग्रन्थ भण्डार एवं ज्योतिष शास्त्र से सम्बन्धित विशाल संग्रहालय और धन सम्पत्ति को पाकिस्तान में ही छोड़ना पड़ा। सदियों पुरानी एकत्रित दुर्लभ थाती के नष्ट हो जाने का इनके मन पर एक बहुत गहरा आघात था। ७१ वर्ष की आयु में आपने इस नश्वर संसार से विदा ली।

इस समय संस्थान से सम्बन्धित समस्त कार्य का संचालन संस्थापक के कनिष्ठ पुत्र केदारनाथ प्रभाकर अपने ज्येष्ठ भ्राता श्री विश्वनाथ प्रभाकर के सहयोग से कर रहे हैं। संस्थान के पास इस समय एक विशाल पुस्तकालय, ज्योतिर्विज्ञान सम्बन्धी स्वदेशी एवं विदेशी

बहुमूल्य उपकरण (टेलीस्कोप, प्लेनेटेरियम एवं सौर-यन्त्र तथा स्लाईड्स आदि) संग्रहीत हैं। संस्थान द्वारा एक विशाल नवग्रह मन्दिर, नक्षत्र वेधशाला और ज्योतिष-भवन के निर्माण की योजना भी है।

**श्री वैष्णो देवी यात्रा**—काश्मीर की अधिष्ठात्री भगवती वैष्णो देवी की यात्रा, इतिहास एवं पथ प्रदर्शन करने वाली प्रमाणिक पुस्तक का भारत में सर्व प्रथम सन् १९६६ में संस्थान द्वारा प्रकाशन हुआ था। पुस्तक इतनी लोकप्रिय सिद्ध हुई कि इसमें वर्णित भगवती वैष्णो देवी के अवतार की कथा के आधार पर बम्बई की फिल्म कं० लोकमंच प्रा० लि० द्वारा '**माता वैष्णों देवी**' फीचर फिल्म का भारत में प्रथम बार निर्माण हुआ और सन् १९७१ में फिल्म को रीलीज किया गया। सन् १९७१ में पुस्तक का नवीन तथा संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण संस्थान ने प्रकाशित किया है।

**हम क्या थे ?**—दैनिक "वीर-अर्जुन" एवं "प्रताप" (उर्दू) के सम्पादक द्वारा लिखित लेखों के संग्रह "हम क्या थे", ? को संस्थान ने १९७० में प्रकाशित किया है।

**श्री राम नाम जप माला**—प्रतिवर्ष श्री राम नवमी के शुभावसर पर इस लघु पुस्तिका को बिना मूल्य संस्थान प्रकाशित करता है।

**वेदचक्षु**—वेद, धर्मशास्त्र, ज्योतिष, भारतीय संस्कृति और राष्ट्रीयता का अनुसंधाता, प्रचारक और प्रहरी वार्षिक वेदचक्षु संस्थान का वार्षिक प्रकाशन है।

**आचार्य वराहमिहिर और उनकी वेधशाला कुतुबमीनार :**

आचार्य वराहमिहिर के जीवन, साहित्य एवं काल के विषय में अब तक उपलब्ध समस्त जानकारी के साथ-साथ उनके द्वारा दिल्ली में निर्मित विश्व की सर्व प्रथम भारतीय वेधशाला के मध्यवर्ती "मेरूस्तम्भ" (जिसे अरबी में कुतुबमीनार कहते हैं।) के सम्बन्ध में हुई अब तक की खोजों को इस ग्रन्थ में संकलित किया गया है जो कि भारत में इस विषय पर अपने ढंग का प्रथम प्रयास है।

**श्री रामतीर्थ स्मृति ग्रन्थ :**

संस्थान द्वारा पूज्यपाद श्री स्वामी रामतीर्थ जी महाराज की प्रथम जन्म शताब्दी (१९७३) के शुभावसर पर "श्री रामतीर्थ स्मृति ग्रन्थ" प्रकाशित करने की योजना है। इस ग्रन्थ में स्वामी रामतीर्थ जी महाराज के दिव्य जीवन एवं उनके अद्भुत कार्यों तथा उपदेशों का संकलन होगा जो अनेक दुर्लभ ग्रन्थों तथा संस्मरणों के आधार पर तैयार किया जाएगा।

संस्थान ने दिल्ली की कुतुबमीनार के निर्माण काल एवं इसे सम्राट विक्रमादित्य के नवरत्न विश्व विख्यात खगोलवेत्ता आचार्य वराहमिहिर की ज्योतिर्विज्ञान सम्बन्धी अनुसंधान करने वाली वेधशाला सिद्ध करने का कार्य अपने हाथ में लिया हुआ है। इसी सिलसिले में संस्थान ने सन् १९६९ एवं १९७० में अखिल भारतीय स्तर पर सहारनपुर में 'वराहमिहिर स्मृति महोत्सव" मनाकर देश में साधना की पूजा के भाव को फिर से जागृत किया। 'वेदचक्षु' का प्रस्तुत' 'वराहमिहिर विशेषाङ्क" भी इसी दिशा में एक महत्वपूर्ण प्रयास है।

संस्थान ने अपने यहाँ लोक पुरुषों एवं जन-तीर्थों के विषय में भी खोज प्रारम्भ की हुई है, जिनका अस्तित्व सदियां बीत जाने पर भी अभी तक अपने क्षेत्र में ज्यों का त्यों बना हुआ है। इस प्रकार से संस्थान के द्वारा अनेक प्रकार के महत्वपूर्ण अनुसंधान एवं प्रकाशन हो रहे हैं तथा भविष्य में और बढ़ने की योजना है।

# वराहमिहिर स्मृति-उत्सव

•

बसंत-पंचमी पर १२३-४१ ई० पू० होने वाले विश्व के महान ज्योति-विज्ञानाचार्य भारतविभूति आचार्य श्री वराहमिहिर की पुण्य स्मृति में दूसरी बार भारतीय ज्योतिर्विज्ञान अनुसंधान संस्थान (सहारनपुर) के तत्त्वावधान में एक विशाल समारोह मनाया गया, जिसमें स्थानीय एवं बाहर से आये हुए विद्वानों एवं शिक्षित वर्ग के लोगों ने भारी संख्या में भाग लिया।

उत्सव का मंगलाचरण रामचरित-मानस के प्रसिद्ध वक्ता महन्त सुन्दरदास जी ने रामचरित मानस के मङ्गलमय प्रवचनों एवं वेदमंत्रों द्वारा किया। भारत के प्रसिद्ध पत्रकार एवं लेखक तथा उत्सव के मार्ग दर्शक श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' ने सर्वप्रथम इस महोत्सव को सरस्वती समाराधना का भाव राष्ट्र में जगाने वाला राष्ट्रीय आयोजन बताया और आचार्य वराहमिहिर एवं ज्योतिर्विज्ञान के लिए की गयी उनकी सेवाओं की चर्चा की। आपने महोत्सव के अध्यक्ष श्री त्रिवेदी और आमंत्रित मुख्य अतिथियों का परिचय भी कराया।




**बाएं से दाएं : पं० हरदेव शर्मा त्रिवेदी, श्री एवं श्रीमती प्रो० सिद्धेश्वर प्रसाद, डॉ डी. सी. तपादार**

प्रसिद्ध चित्रकार श्री रमेश ने अपनी इन्स्टीट्यूट 'कला-कुञ्ज' की ओर से आचार्य वराह-मिहिर एवं उनकी वेधशाला कुतुबमीनार का एक विशालकाय अद्भुत चित्र संस्थान को भेंट किया, जिसका अनावरण प्रसिद्ध मनीषी डा० डी० सी० तपादार, प्रधानाचार्य इन्स्टीट्यूट आफ पेपर टैक्नालाजी (सहारनपुर) ने किया और आचार्य वराहमिहिर को श्रद्धांजलि अर्पित की।

राष्ट्रीय प्रश्नों के विशेषज्ञ लेखक-प्रवक्ता माननीय प्रो० सिद्धेश्वर प्रसाद उप-मंत्री सिंचाई-बिजली भारत सरकार ने उत्सव का उद्घाटन करते हुए अपने सारगर्भित भाषण में संस्थान द्वारा आयोजित इस प्रकार के आयोजन की सराहना की। आपने बताया कि वेदों में वर्णित विद्या एवं अविद्या (ज्ञान एवं विज्ञान) इन दोनों के समन्वय से ही हमारा राष्ट्र उन्नति कर सकता है। आचार्य वराहमिहिर को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए आपने बताया कि हमें उस महान भारतीय वैज्ञानिक के बताये हुए मार्ग पर चलना चाहिए ताकि हमारा देश फिर से उन्नति की ओर अग्रसर हो सके। तत्पश्चात प्रसिद्ध कवि श्री भगवन्तसिंह 'भगवंत' ने आचार्य वराहमिहिर की जीवनी पर एक कविता श्रद्धांजलि रूप में पढ़ी।

'श्री विश्वविजय पंचांग', 'श्रीगजेन्द्रविजयपंचांग' एवं 'ज्योतिषमती' के सम्पादक ज्यौतिषाचार्य श्री पं० हरदेव शर्मा त्रिवेदी (सोलन) ने उत्सव के सभापति पद से भाषण करते हुए सरकार से ज्योतिर्विज्ञान विश्वविद्यालय की स्थापना आचार्य वराहमिहिर की वेधशाला (कुतुबमीनार) के निकट मेहरौली (दिल्ली) में किये जाने की मांग की और आपने आचार्य वराहमिहिर की जन्मभूमि कायथा (उज्जैन) में एक स्मारक बनाने का म० प्र० सरकार से अनुरोध किया।

उत्सव के संयोजक, संस्थान के संचालक एवं 'वेदचक्षु' के सम्पादक श्री केदारनाथ प्रभाकर ने बताया कि श्रीभागवत पुराण में वर्णित एक लाख योजन स्वर्णमय सुमेरु पर्वत का माडल ही आज की कुतुबमीनार एवं इसके चारों ओर निर्मित सत्ताईस नक्षत्रों के मन्दिर थे जिन्हें सन् ११९१-९२ ई० में कुतुबुद्दीन ऐबक ने नष्ट भ्रष्ट कर डाला था। इसके प्रत्येक खण्ड में स्वर्णपत्रों से मढ़े हुए २४ लट्टू लटके रहते थे और ऊपर के खण्ड में आठ दिक्पालों की मूर्तियों पर मंडवे के आकार से आठ स्वर्णमय लट्टू इस प्रकार खड़े किये गये थे कि ऊपर से वह एक बिन्दु पर मिल जावें। उस बिन्दू के ऊपर एक विशाल ध्वज लहराता था, जिसके कारण लोहस्तम्भ के अभिलेख में इसे 'विष्णुध्वज' के नाम से सम्बोधित किया गया है। सूर्य का एक नाम विष्णु भी है।

आपने बताया कि आचार्य वराहमिहिर ने इसे अपने संरक्षक सम्राट विक्रमादित्य की सहायता से यहां पर क्षीरसागर नामक सरोवर में बनवाया था। इसका मुख्य उद्देश्य ज्योतिष-विज्ञान एवं खगोल-विज्ञान की खोज करना था।

मेहरौली निवासी मूक साधक स्व० मास्टर माया राम को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए आपने उन्हें इस अद्भुत खोज का मूल स्रोत बताया।

देश एवं विदेश से प्राप्त लगभग डेढ़ सौ सन्देशों का संक्षिप्त विवरण 'नया जीवन' एवं 'विकास के सम्पादक श्री अखिलेश ने सुनाया।

इन संदेशों में माननीय महामहिम राष्ट्रपति, प्रधान मंत्री, मुख्यमंत्री उ० प्र०, राज्यपाल उ० प्र०, मुख्यमंत्री राजस्थान, मुख्यमंत्री पंजाब, स्व० ठा० यशपाल सिंह (एम० पी०), पूज्य गुरु गोलवलकर, डा० शिवमङ्गल सिंह 'सुमन' (उप-कुलपति विक्रम-विश्वविद्यालय), आचार्य प्रियव्रत वेद-वाचस्पति (उपकुलपति गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय), डा० आर० के० सिंह (उप-कुलपति मेरठ-विश्वविद्यालय), डा० एम० आर० चोपड़ा (उपकुलपति रुड़की विश्वविद्यालय), स्व० श्री के एम० मुन्शी (कुलपति भारतीय विद्याभवन), उपकुलपति महोदय वाराणसेय-संस्कृत विश्वविद्यालय, डा० देवसहाय त्रिवेद (प्राकृत विद्यापीठ वैशाली), डा० नेमिचन्द्र शास्त्री (संस्कृत-प्राकृतविभाग मगध विश्वविद्यालय), डा० एस० के० गोस्वामी

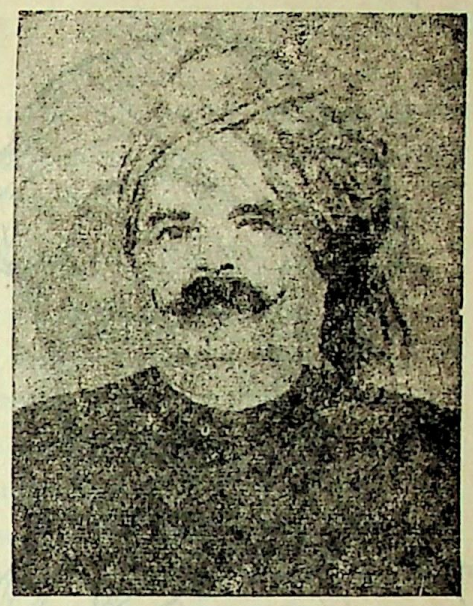
(रजिस्ट्रार मेरठ विश्वविद्यालय), डा० देवेन्द्र दीपक (मध्य प्रदेश शिक्षा सेवा), श्री भंवरलाल पोल्याका जैन दर्शनाचार्य जयपुर, श्री पी० एन० ओक (भारतीय इतिहास पुर्नोलखन संस्था दिल्ली) श्री शांता राम आठवले पूना, प्रसिद्ध जननेता श्री ब्रजमोहन दिल्ली, श्री अक्षयकुमार जैन (सम्पादक नवभारत टाइम्स), श्री रणवीर (सम्पादक उर्दू मिलाप), श्री विद्याधर शास्त्री (सम्पादक विश्वम्भरा), श्री श्रुतिशील शर्मा (सम्पादक वैदिक धर्म), श्री शिवगोपाल महरोत्रा (सम्पादक गायत्री-सन्देश), श्री पालअरगिल एग्जी० (सेक्रेटरी अमेरिकन फेडरेशन आफ एस्ट्रालोजर, वाशिंगटन यू० एस० ए०), श्रीमती लिलियन सी० लिन्डनर, (प्रेजीडेन्ट एस्ट्रा-लोजर्स गिल्ड आंफ अमेरिका न्यूयार्क) पद्मभूषण डा०सूर्य नारायण व्यास उज्जैन, डा० बी० वी० रमन, (सम्पादक 'एस्ट्रालोजिकल मैगजीन' बंगलौर), आचार्य पं० चक्रधर जोशी देवप्रयाग, श्री जी० डी० मोदी (दी बाम्बे एस्ट्रालोजिकल सोसायटी), पं० रमेशचन्द्र भट्टाचार्य कलकत्ता, पं० लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी नरसिंह गढ़, पं० टीकाराम त्रिपाठी राजगढ़, पं० हंसराज कपिल ज्यो० आ० हरियाणा (होश्यारपुर), स्व. पं०कृष्णमूर्ति (सम्पादक ज्योतिष एण्ड अर्थारुष्ट मद्रास), पं० मणिशंकर पी० शर्मा (वेधशाला पचाँग अहमदाबाद), पं० के मार्तण्ड मूर्ति (सम्पादक 'जातकम्' हैदराबाद), प्रो० बी० सी० मेहता ब्यावर, आचार्य भास्करानन्द लोहनी (सम्पादक 'आग्रहायण' लखनऊ), पं० गोचर शर्मा रतलाम, श्री अजन्ता जैन पूना, पं० शक्तिधर शर्मा नरेन्द्र नगर, पं० जयसिंह शर्मा खैरथल, डा० गोस्वामी गिरधारी लाल (प्रधानमंत्री अ० भा० ज्योतिष परिषद और श्री सनातन धर्म-प्रतिनिधि सभा पंजाब, दिल्ली), महता अजीत मल जैन जोधपुर, श्री आर०जी० सपरे राहूरी, पं०हरिकृष्ण रेवाशंकर याज्ञिक (सम्पादक 'ज्तोतिविज्ञान' बम्बई), पं० ओंकारनाथ त्रिवेदी बाराबंकी, पं० राधेश्याम कौशिक मीरापुर, पं० धुण्डिराज शास्त्री दाते सोलापुर, पं० काशीराम शर्मा अम्बाला, पं जगन्नाथ भृगु-शास्त्री होशियारपुर पं० श्यामदत्त ज्योतिष अमृतसर, पं० जगदीश शरण बिलगइयां, दतिया म० प्र०, श्री एस० सेनी अप्पा विरुदनगर, श्री एस० आर० शेषाद्री अय्यर बंगलौर, पं देवकीनन्दन खेड़वाल फतेपुर, पं० माधव शर्मा सिद्धांती सिकन्दराबाद, पं० चुलेट शास्त्री नागपुर, श्री चुन्नी लाल उप्पल (प्रधान देवस्थान सुधार सभा जम्मू), श्री प्रेमकुमार शर्मा, (काश्मीर विश्व-विद्यालय जम्मू), श्री विक्रम जैन (रिजर्व बैंक आफ इण्डिया कानपुर), श्री धर्मपाल गुप्ता जम्मू, प्रो०विमला देवी ओबराय फगवाड़ा, एवं श्री हीरालाल दुग्गर दिल्ली ।

इसके अतिरिक्त उत्सव में बाहर से भी कई विद्वान एवं अन्य संस्कृति प्रेमी उत्सव में पधारे थे । उनमें हापुड़ के सिद्धान्त फलित-ज्योतिषाचार्य पं० श्री कृष्णकान्त शर्मा, हरिद्वार से श्री महन्त भगवानदास, कुरुक्षेत्र से श्रीमती राजरानी शर्मा, देहरादून से श्रीमती मायादेवी राणा एवं उनके पति, दिल्ली से हिन्दुस्तान समाचार एजेन्सी के मुख्य प्रतिनिधि श्री बालेश्वर प्रसाद अग्रवाल और गोयल एण्ड कं० के स्वामी श्री कैलाशचन्द्र गोयल आदि मुख्य रूप से थे ।

अन्त में राष्ट्रगान के साथ ही उत्सव का कार्य बड़े सुन्दर ढंग से समाप्त किया गया ।

—त्रैमासिक 'ज्योतिष्मती' से साभार

# वे अब नहीं रहे



ठाकुर यशपाल सिंह जी अब नहीं रहे। जो जन्मा है, वह जायेगा ही, इस लिए विचार की बात मृत्यु नहीं, जीवन है।

उनके अभाव में हम उनके मरण का नहीं, जीवन का ही चिन्तन करें। कुछ विभूतिवान मनुष्यों के लिए कहा जाता है—कुरड़ी का कमल। यह प्रयोग उनके लिए है, जो साधारण परिवार में जन्म लेकर असाधारण बनते हैं या बुरे वातावरण में जन्म लेकर भले हो जाते हैं।

ठा० यशपाल सिंह कुरड़ी का कमल नहीं थे; नन्दन का परिजात थे। उनके पिता स्व० महात्मा सुमेरसिंह, माता स्व० श्रीमती चमेली देवी और चाचा श्री ठा० पीताम्बर सिंह, तीनों ही विशिष्ट जीवन जीने वाले रहे। इस प्रकार देश भक्ति और दृढ़ता ठा० यशपालसिंह जी के जन्म जात गुण थे।

संघर्ष ही यशपालसिंह जी का जीवन धर्म था। उनके जीवन का क्षण क्षण संघर्ष में बीता और १९७१ के चुनाव में ज्यों ही उनका संघर्ष समाप्त हुआ, वे स्वयं ससाप्त हो गये। देश आजाद होने से पहिले वे अनेकों बार जेल में गये और देश की आजादी के लिए लड़ी गयी लड़ाई में उन्होंने अपना सर्वस्व ही इसी कार्य में लगा दिया। सन् १९४७ के बाद ठा० यशपाल सिंह का जीवन राजनैतिक संघर्षों एवं जन सेवा के कार्यों में व्यतीत हुआ। वह इतने लोकप्रिय थे कि भारी बहुमत से एक बार उत्तर प्रदेश विधान सभा के सदस्य के रूप में तथा दो बार लोक सभा के सदस्य के रूप में जनता द्वारा चुने गए। सभी वर्गों के लोगों में उन्हें निशेष सम्मान एवं आदर प्राप्त था और वह सभी के लिए मर मिटने को तैयार रहते थे।

ठाकुर साहेब का व्यक्तित्व लाज़वाब था। दरमियाना किन्तु सडौल एवं तन्दरुस्त जिस्म, हंस मुख किन्तु प्रभावशाली गोल चेहरा, सिर पर राजस्थानी पगड़ी, सफेद चूड़ीदार पाजामा और शेरवानी—बस यही उनका लिबास था और इसी लिबास से वह दूर से ही पहचाने जाते थे। बच्चा हो या बूढ़ा हो, अमीर हो या गरीब हो या चाहे किसी भी जाति विशेष का व्यक्ति उनसे मिलता तो ठाकुर साहेब हमेशा उससे गले लग कर मिलते। यही कारण था कि जनता उनके दर्शनों के यिए बेताब रहती थी।

भारतीय ज्योतिर्विज्ञान अनुसंधान संस्थान के वे प्रमुख पोषकों में थे। हमारे हर सुख दुख में वे भागीदार थे; वे हमारे अपने थे।

उनका अभाव हमारा अपना अभाव है। उनकी मृत्यु हम सब के लिए एक पाठ सिद्ध हो।

# मूक महान



श्री के० सी० वर्मा जिन दिनों लाहौर में रैमिंगटन रेड टाईप राईटर कम्पनी के मैनेजर थे, तभी से आप को अध्ययन का विशेष शौक था। अपनी रिटायर्ड जिन्दगी के लगभग पच्चीस वर्षों में शायद ही कोई ऐसा ग्रन्थ या विषय होगा, जो उनकी रूचि का हो जिसका उन्होंने अध्ययन न किया हो या जिसे उन्होंने समझा न हो। आपको अध्ययन एवं ज्ञान केवल अपने तक ही सीमित न था। वह जो कुछ भी पढ़ते या जो कुछ भी उनके अनुभव में आता, उसे अपनी टाईप मशीन पर टाईप कर के लोगों में बांट देते थे। यह नियम इनका अन्तिम क्षण तक चलता रहा, जब कि उन्होंने मुझे अपनी जीवन यात्रा पूर्ण करने से दो दिन पूर्व (१३ दिसम्बर ७०') टाईप किये हुए कुछ पत्र पढ़ने के लिए दिये थे। मेरी उनसे यही अन्तिम मुलाकात थी जब मैं उनके दर्शनार्थ उनके निवास स्थान स्वाध्यायाश्रम, शान्तिनिकेतन, गिल कालोनी में उपस्थित हुआ था।

लुधियाना (पंजाब) के निकट मलोध ग्राम में आप का २६ नवबम्र १८९१ ई० में जन्म हुआ था। आपके पिता श्री गंगाराम महकमा माल में कानूगो थे। मलोध एवं समराला में प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करने के बाद मैट्रिक आपने लुधियाना से किया था और वहीं पर कमर्शियल कोर्स की परीक्षा पास कर के सर्विस कर ली थी और बाद में लाहौर चले गये थे। आप के जीवन का ज्यादा भाग लाहौर एवं सहारनपुर में ही व्यतीत हुआ है।

श्री वर्मा जी उर्दू फारसी, अरबी अंग्रेजी एवं हिन्दी आदि कई भाषाओं के ज्ञाता तथा हिकमत, होमोयोपैथी, ज्योतिष, पामिस्ट्री, योग एवं मैसमरेजिम आदि कई विषयों में पारङ्गत थे। शायरी में तो आपको कमाल हासिल था। बोलते हुए न तो थकते थे और न ही उनमें कोई झिझक ही थी।

धर्म के मामले में वह बड़े उदार थे। उन्हें न तो आर्य समाज की कट्टर पंथी और न सनातन धर्म का अन्ध विश्वास ही अच्छा लगता था। आर्य समाज, सनातन धर्म, देवसमाज, सिखमत तथा सूफी मत सभी के साथ उनका बराबर प्रेम था।

भारतीय ज्योतिर्विज्ञान अनुसंधान संस्थान के प्रति उनकी विशेष अनुरोग और उन्होंने संस्थान के लिए सदैव हर प्रकार का सहयोग दिया। संस्थान उनकी पुण्य स्मृति में अपनी श्रद्धाञ्जली अर्पित है।

# अखिल भारतीय वराहमिहिर स्मृति महोत्सव समिति

भारतीय ज्योतिर्विज्ञान अनुसंधान संस्थान के तत्त्वावधान में भारत विभूति आचार्य वराहमिहिर की स्मृति को जीवित रखने के लिए अखिल भारतीय स्तर पर एक समिति का संयोजन किया गया है जिसके सदस्यों के नाम निम्न हैं—

१ डॉ० शिवमङ्गल सिंह 'सुमन' डी० लिट० (कुलपति : विक्रम विश्वविद्यालय)
२ पद्मभूषण डॉ० सूर्यनारायण व्यास, डी० लिट० (भारती भवन, उज्जैन)
३ आचार्य पं० चक्रधर जोशी (नक्षत्र वेधशाला, देवप्रयाग-हिमालय)
४ डॉ० वी० वी० रमन डी० एस० सी० (सम्पादक : एस्ट्रालोजिकल मैगजीन बैंगलोर)
५ श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' (सम्पादक : नया जीवन, सहारनपुर)
६ श्री ब्रज मोहन (सम्पादक : गणतंत्र दिवस पत्रिका, दिल्ली)
७ डॉ० अजय मित्र शास्त्री एम० ए० पी० एच० डी० (नागपुर विश्वविद्यालय)
८ डा० नारायण दत्त श्रीमाली एम० ए० पी० एच० डी० (सम्पादक: भारतीत ज्योतिष, जोधपुर)
९ श्री कृष्णाधीश आई० पी० एस० (प्रधानाचार्य : डाक-तार प्रशिक्षण केन्द्र, सहारनपुर)
१० पं० मुकन्द वल्लभ मिश्र (सम्पादक : श्री मार्त्तण्ड पञ्चाङ्गम्, कुराली, पंजाब)
११ श्री नारायण राव तर्टे (सम्पादक : हिन्दू विश्व, दिल्ली)
१२ श्री मणीशङ्कर पी० शर्मा (सम्पादक : वेधशाला पञ्चांगम, अहमदाबाद गुजरात)
१३ डा० गिरधारी लाल गोस्वामी, एम० ए० पी० एच० डी० (बिरलामंदिर नई-दिल्ली)
१४ पं० हरदेव शर्मा त्रिवेदी (सम्पादक : ज्योतिष्मती, सोलन-हिमाचल प्रदेश)
१५ डा० श्री पी० एन० ओक एम० ए० एल-एल० बी० (प्रधान: इतिहास पुनर्लेखन संस्था दिल्ली)
१६ श्री डी० वी० शुभाराव "दैवज्ञ रत्न" एवं "विद्या विशारद" (गण्टूर, आन्ध्र प्रदेश)
१७ डा० देव सहाय त्रिवेद एम० ए० पी० एच० डी० (शाहपुर–औरंगाबाद, बिहार)
१८ पं० जगन्नाथ भारद्वाज (चित्रा आबजरवेटरी, अम्बाला छावनी, हरियाणा)
१९ आचार्य कृष्ण मुरारी मिश्र (सम्पादक : ज्योतिषकल्प, लखनऊ)
२० प्रो० जेड० एल० जाला एम० ए० (जम्मू विश्वविद्यालय जम्मू, जम्मू-काश्मीर)
२१ श्री अबानी बोरा एम० ए० (जरनलिस्ट, गोहाटी-आसाम)
२२ श्री बी० थिरूवेङ्कटाचार्य एम० ए० एल० टी० (मद्रास)
२३ श्री नीरेण बेनर्जी (सम्पादक : स्टीलर मैसेज—कलकत्ता)
२४ श्री पं० लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी "राज ज्योतिषी" (नरसिंह गढ़-मध्य प्रदेश)
२५ पं० शिवकुमार दीक्षित "भृगु शास्त्री", (मेरठ उ० प्र०)

—केदारनाथ प्रभाकर
संयोजक

# श्री लक्ष्मीधर विद्या मन्दिर देव प्रयाग : एक परिचय



(श्री लक्ष्मीधर विद्या मन्दिर के प्राङ्गण में : आचार्य पं० चक्रधर जोशी ।)

हिमालय के अन्तराल में पुण्यतोया भागीरथी एवं अलकनन्दा के पवित्र संगम पर बसी देव प्रयाग की सुरम्य नगरी आदिकाल से ही जन-जन की श्रद्धा का आकर्षण केन्द्र बनी हुई है। देवप्रयाग तक पक्का मोटर मार्ग है और हरिद्वार से इस दिव्य स्थल की दूरी केवल साठ मील के लगभग है।

इसी देवप्रयाग में "श्री लक्ष्मीधर विद्या मंदिर" के नाम से विख्यात भारत प्रसिद्ध संस्था है जिसकी स्थापना आज से सौ वर्ष पूर्व श्री पं० वेङ्कटाचार्य जोशी ने की थी। आपके सुपुत्र श्री आचार्य लक्ष्मीधर जोशी भी ज्योतिष एवं कर्म काण्ड के प्रसिद्ध विद्वान थे।

श्री पं० वेङ्कटाचार्य के पौत्र एवं श्री पं० लक्ष्मीधर जोशी के सुपुत्र आचार्य पं० चक्रधर जोशी ज्योतिषाचार्य ने उक्त विद्या मन्दिर को न केवल अनेक अमूल्य ग्रन्थों से समृद्धशाली ही बनाया है बल्कि इसे देशव्यापी प्रसिद्धि भी इन्हीं के अथक परिश्रम एवं प्रयासों से मिली है।

वर्तमान समय में "श्री लक्ष्मीधर विद्या मन्दिर" एवं इससे सम्बन्धित नक्षत्र वेधशाला तथा "दी हिमालियन एस्ट्रानोमिक्ल रिसर्च इन्स्टीट्यूट" के नवीन भवन का निर्माण देवप्रयाग के बस स्टैण्ड के पास दशरथाचल पर्वत पर आचार्य पं० चक्रधर जोशी ने किया है। इस नवीन भवन की आधार शिला आचार्य जी की पूज्या माता श्रीमती रत्नादेवी जी ने श्रावण शुक्ल त्र्योदसी शनिवार सं० २००३ वि० (१०-८-१९४६) को रखी थी और तब से लेकर आज दिन तक विद्या मन्दिर के इस भव्य एवं मनोरम भवन का निरन्तर निर्माण होता चला आ रहा है।

इस समय "श्री लक्ष्मीधर विद्या मन्दिर" के विशाल पुस्तकालय में लगभग छह हजार प्रकाशित ग्रन्थ एवं डेढ़ हजार प्राचीन हस्त लिखित ग्रन्थों का संग्रह है जिनमें नाड़ी ग्रन्थ एवं भृगु संहिता भी शामिल हैं। विद्या मंदिर के साथ ही "नक्षत्र वेधशाला" का कक्ष है जो उत्तर भारत की प्रसिद्ध वेधशालाओं में से एक है। वेधशाला में आकाशीय पिण्डों का वेध लेने के लिए छह फीट लम्बी (जर्मन में निर्मित) एक टैलीस्कोप (दूरवीक्षक यंत्र) है और शेष कई छोटे बड़े खगोल विज्ञान से सम्बन्ध रखने वाले बहुमूल्य उपकरण है। वेधशाला के नीचे ही आचार्य जी का निवास स्थान, अतिथि गृह एवं अध्ययन कक्ष हैं।

वेधशाला में प्लेनेटेरियम निर्माण करने की भी योजना है जिसके लिए गत दिनों प्रसिद्ध खगोल शास्त्री श्री जगन्नाथ भारद्वाज (जिन्होंने हाल ही में 'लग्नमापक' यन्त्र का अविष्कार किया है) अम्बाला छावनी से स्थान का निरीक्षण करने के लिए पधारे थे।

समुद्र तल से ६४७ मीटर (२१२३ फीट) ऊंची इस वेधशाला के संचालक एवं व्यवस्थापक आचार्य पं० चक्रधर जी के गुरूदेव प्रात: स्मरणीय आचार्य पं० मुकन्द दैवज्ञ विद्या मन्दिर से सम्बन्धित "दी हिमालयन एस्ट्रानोमिकल इन्स्टीट्यूट" के कुलपति हैं।

विद्यामन्दिर द्वारा अब तक "ज्योतिषतत्वम्" (त्रिस्कन्ध ज्योतिष का अद्भुत महान ग्रन्थ), 'गदावली' (रोग-सम्बन्धी ज्योतिष पर मौलिक ग्रन्थ) एवं "त्रिकाल संध्या" तथा "श्री बद्री-केदार यात्रा गाईड" प्रकाशित हो चुके हैं और शेष ग्रन्थों का प्रकाशन करने की निकट भविष्य में विस्तृत योजना है। देश के अनेक गणमान्य पुरुषों, वर्चस्वी विद्वानों एवं देश प्रसिद्ध उद्योगपतियों का विद्या मन्दिर को सौजन्य सहयोग्य प्राप्त रहा है और वर्तमान में भी है।



# आभार प्रदर्शन

भारतीय ज्योतिर्विज्ञान अनुसन्धान संस्थान की ओर से 'वेदचक्षु' के "वराहमिहिर विशेषांक" में प्रकाशित सामग्री के लिए निम्न ग्रन्थों एवं पत्रों के प्रकाशकों, सम्पादकों एवं लेखकों के प्रति हार्दिक आभार प्रदर्शित किया जाता है—

सिन्धिया ओरिएण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट उज्जैन द्वारा प्रकाशित "विक्रम स्मृति-ग्रन्थ", रमम पब्लिकेशनज बंगलोर द्वारा प्रकाशित "लाईफ आँफ वराहमिहिर", प्रकाशन ब्यूरो सूचना विभाग उ० प्र० द्वारा प्रकाशित "भारतीय ज्योतिष" एवं "भारतीय ज्योतिष का इतिहास", ज्योतिष प्रकाश प्रेस काशी द्वारा प्रकाशित "गणक तरङ्गणी", दैवज्ञ भवन प्रकाशन नरसिंह गढ़ द्वारा प्रकाशित "सामुद्रिक-दीपिका-३", सर्वश्री मोती लाल बनारसीदास दिल्ली द्वारा प्रकाशित "इण्डिया एज सीन इन दी बृहत्संहिता आफ वराह-मिहिर", उपन्यास बहार आफिस काशी द्वारा प्रकाशित 'विदुषी खना', दी अदियार लायब्रेरी मद्रास द्वारा प्रकाशित "वराहमिहिर होराशास्त्रम्", श्री कमला प्रसाद 'मणि' त्रिपाठी पटना द्वारा प्रकाशित "श्री १०८ सान्दीपनी कुलोद्भव आचार्य वराहमिहिर वंशावली", जन्मभूमि प्रकाशन बम्बई द्वारा प्रकाशित "जन्मभूमि पञ्चांग" (सं० २०२२), श्री नरेन्द्रनाथ वसु 'प्राच्यविद्या महार्णव' कलकत्ता द्वारा प्रकाशित "विश्व कोष", हिन्दुस्तान टाइम्स नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित" "मासिक कादम्बिनी" (दिसम्बर १९६९), सूचना एवं प्रकाशन विभाग म० प्र० ग्वालियर द्वारा प्रकाशित "मासिक मध्य प्रदेश सन्देश" [मई १९७१], भारतीय विद्याभवन बम्बई द्वारा प्रकाशित "इण्डियन क्रानोलाजी", विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैन द्वारा प्रकाशित "कायथा एक्सकेवेशन नम्बर आफ विक्रम जनरल", बिहार रिसर्च सोसायटी पटना द्वारा प्रकाशित "आर्यभट्टीयम्", चौखम्भा संस्कृत सीरीज प्रकाशन वाराणसी द्वारा प्रकाशित 'संवत प्रवर्त्तक विक्रमादित्य', जनरल आफ दी ओरिएन्टल इन्स्टीट्यूट द्वारा प्रकाशित (मार्च-जून १९६३) "फ्रेश लाईट ओन दी लाईफ आफ वराहमिहिर", श्री वेङ्कटेश्वर प्रेस प्रकाशन बम्बई द्वारा प्रकाशित "वराही [ बृहत् ] संहिता" एवं "भविष्य पुराण"।

—सम्पादक



# स्वस्ति वाचन

वेदों में हमारी श्रद्धा है,
धर्मशास्त्रों में हमारी आस्था है,
ज्योतिष हमारा पैत्रिक जीवन कर्म है,
नैतिकता हमारे रक्त की लालिमा है,
और राष्ट्रीयता हमारे चिन्तन का दृष्टि बिन्दु है,

पर—

हम अन्धी श्रद्धा, विवेकहीन आस्था, अनैतिक जीवन कर्म, नकली नैतिकता और संकीर्ण राष्ट्रीयता के विरोधी हैं।

**वेदचक्षु**

भारतीय संस्कृति के अनुसंधाता, प्रचारक और प्रहरी के रूप में जन्म ले रहा है। विकारों की दूकानदारी का उसे साधन बनाना हमारा अभीष्ट नहीं, उसे विचारों के अर्पण की अंजलि बनाना ही हमारा इष्ट है।

**वेदचक्षु**

राष्ट्र के सर्व-श्रद्धेय विचारक, सर्व प्रिय मानव और सर्व-प्रशंसित प्रशासक स्वर्गीय श्री सम्पूर्णानन्द के इस संदेश को अपने जीवन का उद्बोधन मानता है—"सब लोग वैज्ञानिक आधार पर वेदों का अध्ययन करें, जिससे विश्व की पीड़ित मानवता को अपना अस्तित्व बनाए रखने की नई दिशा मिल सके।"

**वेदचक्षु**

एक विचारक के इस दृष्टिकोण को अपना कुतुबनुमा मानता है—"वेद छलकती हुई जिन्दगी के झलकते हुए पैमाने हैं। उन्हें हवनकुण्ड और तिलकधारियों के बस्ते से न बांध कर, जीवन के खुले मंच पर लाना और जीवन के चश्मे से देखना ही उनकी वास्तविक रक्षा और प्रसार है।"

**वेदचक्षु**

मानता है कि वेद-वेदांग हमारे अतीत का प्रतीक हैं। उन में हमारे अतीत की विचारधारा और कर्मधारा सुरक्षित हैं। इस प्रकार हमारा अतीत हमारी शक्ति है, हमारे हृदयों का स्पन्दन है। हमारा राष्ट्र कोई नया पौधा नहीं है कि वर्तमान की सिंचाई पाकर ही पनप उठे-फलता, फूलता रहे। उसकी मजबूत जड़ें सूदूर अतीत में हैं, इसलिए हम अपने अतीत की उपेक्षा नहीं कर सकते।

**वेदचक्षु**

अतीत के महत्व को स्वीकार करते हुए भी विश्वास करता है कि कोई व्यक्ति या राष्ट्र केवल अतीत के ही सहारे नहीं पनप सकता। उसकी दृष्टि में अतीत एक सजीव पाठ है, जो वर्तमान को नये कर्मों की, निरन्तर जागरूकता की प्रेरणा देता है, उत्तेजित करता है और इस प्रकार भविष्य को भटकने से बचाता और उसके रूप को सँवारता है, उसे अपने अनुभवों को बल देता है।

**वेदचक्षु**

अतीत का मान करता है, वर्तमान में उससे प्रेरणा लेता है और इस प्रकार राष्ट्र के उज्जवल भविष्य का स्वप्न देखता है।

**वेदचक्षु**

भावनाशील है, पर यथार्थवादी है। वह सत्य को ग्रहण करने में न अन्धविश्वास की दीवार को छलाँगने में झिझकता है, न परम्परा की खाई को, पर इसमें भी सन्देह नहीं की वह परम्परा का अपनी जगह महत्व स्वीकार करता है।

**वेदचक्षु**

सिद्धान्तों की कोरी चर्चा में, बहस के लिए बहस में या निठल्लों के वाक् विलास में आदर नहीं रखता। वह जीवन का उपासक हैं, इसलिए वह निर्जीव विषयों की चर्चा से उन सजीव विद्या-साधकों के गुणगाण में अधिक रुचि लेता है, जो अपनी साधना से स्वयं जीवित शास्त्र बन गये।

**वेदचक्षु**

खंडित दृष्टि को अनिष्टकारी मानता है। जैसे हमारे धर्म-संस्कार में खंडित मूर्ति पूजन वर्जित है, वैसे ही उसकी दृष्टि में खंडित दृष्टि भी सर्वार्थ सिद्धि में बाधक है, क्योंकि वह मनुष्य को एकांगी बना देता है, इस कारण वेदचक्षु की परिधि वेद और धर्म के साथ नैतिकता और राष्ट्रीयता को भी अपने में समाये हुए है। एक शब्द में समन्वय ही उसकी नीति है, समग्र जीवन की सिद्धि ही उसका लक्ष्य है।

**वेदचक्षु**

विक्रम संवत २०२९ की वर्ष प्रतिपदा (१६ मार्च १९७२) पर बड़ों के आशीष-अनुभव, वयस्कों के सहयोग और अनुजों के सद्भाव की कामना करते हुए, सबको अपने नम्र सहयोग का विश्वास अर्पित कर कर्मक्षेत्र में अपना दूसरा पग रखता है।

"जो हमें मार कर हमारी मातृभूमि को गुलाम बनाना चाहता है, उसे मार देना चाहिए। राष्ट्र के वासी देश की सेवा से लिए ही परिपुष्ट और दीर्घायु हों तथा स्वस्थ रह कर मातृभूमि में उत्पन्न पदार्थों का उपभोग करते हुए उसके लिए प्राण तक न्यौछावर करने को तैयार रहें।"

—अथर्ववेद

शुभ कामनाओं सहित :


# किशनचन्द हंसराज

सुप्रसिद्ध कपड़ा धोने वाले "गौस मार्का" साबुन के निर्माता

लाहौर सोप मिल्स,

फैक्टरी : देहरादून रोड, सहारनपुर (उ. प्र.)

दूरभाष : कार्यालय : ३६०६, निवास : ४५१८

●

स्टॉकिस्ट :

राज विरमानी एण्ड कं०,

कक्कड़ गंज, सहारनपुर (उ. प्र.)

दुरभाष : ४१०४

उदीना: स्याम् शरद: शतम् । —यजुर्वेद ३६।२४
हम सौ वर्षों तक दीनता रहित होकर जियें ।

शुभ कामनाओं सहित :

# गंगा शुगर कारपोरेशन लिमिटेड

( उच्च कोटि की दानेदार सफेद चीनी के निर्माता )

## देवबन्द (जिला सहारनपुर) उ० प्र०

जनरल मैनेजर : **के. एन. राव**

टेलीग्राम : शुगर  दूरभाष : जनरल मैनेजर [कार्यालय : २० निवास : २३ जनरल आफिस : ५६

रजि० आफिस : नेशनल इन्श्योरेन्स बिल्डिंग, ५-पारलियामेंट स्ट्रीट, नई दिल्ली

भूत्यै जागरणम् अभूत्यै स्वपनम् । –यजुर्वेद ३०।७७

जागना (ज्ञान) ऐश्वर्यप्रद है। सोना (आलस्य) दरिद्रता का मूल है।


*With best compliments from:*

# The Punjab Public Carrier Union

**AMBALA ROAD, SAHARANPUR, U. P.**

(Founded - 1959 A. D.)

●

President:

Ch. PRABH DAYAL

*Phone - 3630*

Vice-President:

B. YOG DARSHAN

*Phone : 3982*

Secretary:

S. RAM SINGH

*Tele* - 3349

विश्वे अमृतस्य पुत्राः । —ऋग्वेद १०।१३।१
सब मनुष्य ईश्वर के अमृत पुत्र हैं, इसीलिए सभी भाई-भाई हैं ।

# HIMACHAL PRADESH
## A DECADE OF DEVELOPMENT

| Head of Expenditure | 1961-62. Rs. | 1971-72 Rs. |
|---|---|---|
| Education | 33.77 Lacs. | 1,356.40 Lacs. |
| Medical Aid | 11.17 „ | 282.20 „ |
| Public Health | 27.77 „ | 110.80 „ |
| Industries | 27.26 „ | 73.17 „ |
| Cooperation | 11.47 „ | 55.79 „ |
| Electricity Schemes | 31.10 „ | 438.51 „ |
| Animal Husbandry | 17.86 „ | 120.80 „ |
| Agriculture | 54.94 „ | 316.90 „ |
| Road & Water Transport | 97.77 „ | 394.00 „ |
| Forest Utilisation | 140.50 „ | 691.40 „ |
| Civil Works | 397.35 „ | 1,543.71 „ |
| Total Expenditure On Development Services | 975.83 „ | 5,877.41 „ |

ISSUED BY : **PUBLIC RELATIONS DEPTT.**
**HIMACHAL PRADESH, SIMLA-2**
(Him Lok Sampark)

शुभ कामनाओं सहित :

## दी किसान कोआपरेटिव शुगर फैक्टरी लि०

(सफेद दानेदार चीनी के निर्माता)

सरसावा (जि. सहारनपुर) उ. प्र.

टेलीग्राम : 'कोशुगर'
दूरभाष : ३५२०

जनरल मैनेजर :
आर० एन० सक्सेना

स्वस्ति पन्थामनु चरेम सूर्याचन्द्रमसाविव ।
पुनर्ददताघ्नता जानता स गमिमहि ।

—ऋग्वेद ५।५१।१५

हे ईश्वर ! हम सभी मनुष्य दान देते हुए एक दूसरे की हिंसा न करते हुए तथा ज्ञान से युक्त होकर सूर्य और चन्द्रमा के समान सब का कल्याण करते हुए तथा संगठित होकर उन्नति करें ।

*With best compliments from :*

**Om Prakash Handa**

**HANDSON & COMPANY**

**( Krishna Medical Hall )**

COURT ROAD, SAHARANPUR U. P.

★

Phone : (Office 3358
Rest. 3387

अरिष्टाः स्याम तन्वा सुवीराः ।

—अथर्ववेद ५।३।५

हम शरीर से निरोग हों और उत्तम वीर बनें ।

With best compliments from

# Raj Transport Co. (Regd.)

Head Office :

**AMBALA ROAD, SAHARANPUR U. P.**

राज ट्रांसपोर्ट कम्पनी (रजि०)

अम्बाला रोड, सहारनपुर - उ० प्र०

●

Branches & Agencies :

Throughout U. P., Punjab, Haryana, Jammu-Kashmir, Himachal Pradesh & Delhi.

Phone : **3110, 4583**

जिस मनुष्य की वाणी में मधुरता होती है, जो लोगों से मीठी वाणी बोलता है, उसके सभी दिन सुख से बीत जाते हैं, उसका कोई शत्रु नहीं होता. उसे हर तरह के धन प्राप्त होते हैं, उस धन से उत्तम सौभाग्य मिलता है, उस सौभाग्य के कारण वह हमेशा प्रसन्न मन वाला होता है, और जिसका मन प्रसन्न होता है, उसका शरीर भी हृष्ट-पुष्ट होवा है । अतः वाणी की मधुरता ही सब सुखों का मूल है ।

—ऋग्वेद

*With best compliments from :*

**Om Shanti Prakash Bhatia**

**( Coal & Coke Supply Corporation )**

COURT ROAD, SAHARANPUR U. P,

**Post Box No. 87**

**Telegram : 'Coalcoke'**

**Phone: [ Office : 3624 Resi. : 3966**

वयं सर्वेषु यशसः स्याम । — अथर्ववेद ६।५८।२
हम समस्त जीवों में यशस्वी हों ।

*शुभ-कामनाओं सहित*

**अमरनाथ तलवार**

**मै० मेलाराम अमरनाथ**

(किरयाना के थोक विक्रेता)

**मोरगञ्ज, सहारनपुर : उ. प्र.**

दूरभाष : कार्यालय ४०८२
निवास ४५५४

---

**ASHOKA ELECTRICALS**

**Electrical Engineers & Govt. Contractors**

Manufacturers, Wholesale Electrical Dealers & Suppliers

**Chowk Dal Mandi Bridge, SAHARANPUR, U. P.**

Phone : 4365

---

With best compliments from:

**GLOBE ELECTRONICS**

**Electrical Engineers, Licenced Govt. Contractors**
**Suppliers & Manufacturers.**

AMBALA ROAD ( Outside Subhash Nagar )

**SAHARANPUR U. P.**

Phone : 4855

सङ्गच्छध्वं संवदध्वम् । —ऋग्वेद १०।१९१।२

मिलकर चलो और मिलकर बोलो ।

कला जन जागृति और जन प्रेरणा का सशक्त माध्यम है
राष्ट्रीय जीवन के प्रत्येक पक्ष को समुन्नत करने में अपना
योगदान करना हर कलाकार का
पुनीत दायित्व है

# उत्तर प्रदेश में

०-भारत खण्डे संगीत महाविद्यालय,
०-राजकीय कला एवं शिल्प महाविद्यालय,
०-राज्य ललित कला अकादमी
०-राज्य संगीत तथा नाटक आकदमी एवँ
समय समय पर अन्य कलात्मक आयोजनों द्वारा

## जनजीवन

में नयी स्फूर्ति एवं चेतना

## का

संचार किया जा रहा है ।

लोकरंजन में ही समस्त कला की सार्थकता है ।

---

सूचना विभाग उत्तर प्रदेश द्वारा प्रसारित
संख्या–ग–८८३५/१९–विज्ञापन

उप सर्प मातरं भम्रिम् । —ऋग्वेद १०।१८।१०
मातृ भूमि की सेवा कर।

Made Out of the Finest Materials

# MANGALORE GANESH BEEDIES

Smokers cannot afford to miss them

## Daily Production Exceeds 4 Crores Beedies

MANGALORE GANESH BEEDIES

501 501 501

ಮಂಗಳೂರು ಗಣೇಶ ಬೀಡಿಗಳು

HEAD OFFICE :

**MANGALORE GANESH BEEDI WORKS**

**VINOBA ROAD : MYSORE-5**

**Telephone : 20241** **Telegrams : AROMA**

ऋतस्य पथा प्रेत । —ऋगवेद ७।४५
सत्य के मार्ग पर चलो ।

स्वास्थ्य प्रद रीति द्वारा निर्मित
शत प्रतिशत शुद्ध

# काश्मीर ब्रांड

मुरब्बों व गुलकंद के निर्माता

## राधा किशन बिशन दास

नया गंज हाथरस (उ० प्र०)

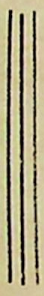
फोन : २९ तार METAL BOX

★

एक-पांच-दस एवं बीस किलो ग्रौस पैकिंग में सर्वत्र प्राप्त है
अन्यथा हमसे प्राप्त करें ।

तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु । —यजुर्वेद ६४।१
मेरा मन उत्तम सङ्कल्पों वाला हो ।

*With best compliments from:-*



# Rajiv Trading Company Private Ltd.

*Distributors of* "TRISHUL" Brand Cement

**MFD. BY THE JAIPUR UDYOG LIMITED, SAWAIMADHOPUR**

*FOR*

Punjab, Haryana, H. P., J. & K. &
Union Territory of Chandigarh

76-77 Bank Square, Sector 17-B, Chandigarh

●

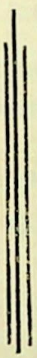
**Telex : 204** **Gram : RAJEEV**

**Telephones : 25082 & 28448**

भद्रं भद्रं क्रतुमस्मासु धेहि । -ऋग्वेद १।१२३।१३

हे प्रभो ! हम लोगों में सुख और कल्याणमय उत्तम
सङ्कल्प, ज्ञान और कर्म को धारण कराओ ।

शुभ कामनाओं सहित :




**रतनलाल तलवार**

गवर्नमेंट एक्साईज कन्ट्रैक्टर,

"रैन बसेरा"

पुरानी मंडी ,सहारनपुर (उ० प्र०)

●

दूरभाष : ४०८५

मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे । –यजुर्वेद ३६।१८
हम सब परस्पर मित्र की दृष्टि से देखें ।


With Best Compliments From:

**Ram Kumar Bhagwati Prasad**

**Manufacturers' Representatives**

DEALERS IN :

**COTTON YARN**

**CONE YARN**

**&**

**STAPLE YARNS,**

**ETC.**

*General Order Suppliers*
*AND*
*Contractors*

●

49/28 **General Ganj : Kanpur** (U. P.)

Telegram : APOLLO

Tele. { Offi. 53002, 68641
Resi. 68641, 52878

सर्वमेव शमस्तु नः । —अथर्ववेद १९।९।१४
हमारे लिए सब कुछ कल्याणकारी हो ।

With best compliments from:

**Mahindra Ugine Steel Company Ltd.**

MUSCOSTEEL

Manufacturers of :

**TOOL, ALLOY & SPECIAL STEELS**

- **ROLIED PRODUCTS :**
  Round-cornered Square Billets • Rounds • Squares • Hexagons • Flats.
- **FORGED PRODUCTS :**
  Rounds • Squares.
- **CATEGORIES :**
  Special Carbon Steels • Alloy Constructional and Ball Bearing Steels • Free-Cutting Steels Spring Steels • Boron Steels • Stainless Steels • Valve Steels-conforming to various Indian and International Standards.

MUSOO offers you a Special Service—its expert metallurgists are available to give any informatoin required on heat treatment processes or in selecting grades for specific end-uses.

Registered Office :
SHREE NIKETAN,
Shiv Sagar Estate,
Dr. Annie Besant Road,
Worli, Bombay-18 (W B).

Enquiries to Sole Distributors :
MAHINDRA & MAHINDRA LIMITED
Bombay, Calcutta, Madras,
New Delhi.

ओं दानेनेदानम् अक्रोधेन क्रोधम्
श्रद्धयाऽश्रद्धाम् सत्येनानृतम्। एषागतिः।
एतदमृतम् । स्वर्गच्छज्योतिर्गच्छ ॥

—सामवेद

दान द्वारा कृपणता पर, शांति द्वारा क्रोध पर,
श्रद्धा से अश्रद्धा पर, विजय प्राप्त करो,
यही सन्मार्ग है, यही अमृत है, स्वर्ग की ओर
जाओ, प्रकाश की ओर जाओ ।

शुभ कामनाओं सहित :


# फिरोजीलाल जायस्वाल

गवर्नमेंट एक्साईज कन्ट्रैक्टर

'कृष्ण निवास'

पुरानी मंडी, सहारनपुर (उ० प्र०)

दूरभाष : ४६३५

आयुष्मन्तः सहभक्षा स्याम्। अथर्ववेद ६।४७।१

हे प्रभो ! हम सब पर दया करो, जिससे हम सब लम्बी-लम्बी आयु वाले होवें और सदा एक साथ मिल बैठ कर खाने-पीने वाले होवें।


## शुभ कामनाओं सहित ;

# नेशनल वुड एण्ड आइरन इंडस्ट्रीज

(जयप्रकाश गुप्ता नल वाले)

आधुनिक ढंग के आकर्षक एवं मजबूत स्टील के सामान जैसे स्टील फर्नीचर, स्टील अलमारी, स्टील शटर, स्टील ग्रिल, स्टील के दरवाजे एवं स्टील की चौखट आदि के निर्माता।

४१-इंडस्ट्रियल स्टेट, देवबन्द

( सहारनपुर ) उत्तर प्रदेश

★

दूरभाष – ८६

प्रतिबुध्यमानाः सुवीर्यस्य पतयः स्याम्। ऋग्वेद ४।५१।१०

हे प्रभो ! हम सब अच्छी प्रकार बुद्धिमान होकर उत्तम बलशाली और पराक्रम के धनी बनें।


With best compliments from:

●

**ASHOKA ASBESTOS-CEMENT PRODUCTS**
**CORRUGATED SHEETS**
**STILE SHEETS (SEMI-CORRUGATED)**
**CURVED SHEETS**
**ALL TYPES OF RIDGES AND ACCESSORIES**
**FOR ALL HOUSING PURPOSES**
**PIPES, GUTTERS & FITTINGS**

★

**Manufactuiers**

ROHTAS INDUSTRIES LIMITED
DALMIANAGAR (BIHAR)

Solling Agents :

ASHOKA MARKETING LIMITED

(for West Bengal, Orissa & Assam)

GANGA CORPORATION ASBESTOS PVT. LIMITED
(for Whloe of Norshern India, Rajasthan, Bihar & Madhaya Pradesh)

अदारसृद् भवतु देव सोमास्मिन्यज्ञे मरूतो मृडता नः
मा नो विददभिभा मो अशस्तिर्मा नो विदद् वृजिना द्वेष्या या ॥
अथर्ववेद १।२०।१

हे ईश्वर ! आपस की फूट बढ़ाने वाला कोई कार्य हमसे न हो। इस सत्कर्म से हमें सुख प्राप्त हो। पराजय, अपकीर्ति, अयश, द्वेष और कुटिलता हमारे पास न आवें।

*With Best Compliments From :*

**Victory Bar & Resturant**

**( Chetna Refreshment Centre )**

**Court Road, SAHARANPUR U. P.**

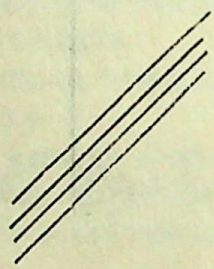
★

PHONE : 3537

देश की स्त्रियां अपरिमित बल वाली हों, वे सर्वत्र संचार करने वाली हों। वे ऋतु अर्थात नैतिकता के मार्ग को जानने वाली हों, तेजस्विनी हों तथा सदा देवों अर्थात विद्वान सत्पुरूषों के मार्ग का अनुसरण करें। वे देश की उन्नति के लिए देश में सर्वत्र संचार करें, पर साथ ही स्वेच्छाचारिणी न हों। वे अपनी नैतिकता की मर्यादा में रह कर सत्पुरूषों के मार्ग पर चलने वाली हों।

—ऋग्वेद

*With Best Compliments From :*



**Dr. (Km.) USHA BHATIA**

M. B. B. S., (M, D. Student)

Lady Harding Medical College,
NEW DELHI

देश के सभी लोग आपस में प्रेम से बोलें, सबकी वाणियां परस्पर अनुकूल हों, विरोधी न हों । सब की बुद्धियां एक सी हों, सब विद्वानों के बताये मार्ग पर चलें और सब मनुष्यों का ज्ञान भी परस्पर अनुकूल हो—

—ऋग्वेद

★


FOR QUALITY

**S**·····WEETER
**U**·····NIQUE
**G**·····RAND
**A**·····TTRACTIVE
**R**·····EFINED

●

'REMEMBER"

RAZA BULAND SUGAR COMPANY LTD.
RAMPUR U. P.

PRODUCER OF BEST CRYSTAL SUGAR
FAMOUS AT HOME

●

Telephones : 263 & 346 Telegram : RAZABULAND

# ज्योतिष का चमत्कार

ज्योतिषशास्त्रोक्त नियम के अनुसार शुद्ध गणित पर आधारित जन्मपत्र एवं वर्षफल बनवाने के लिए तथा जीवन में होने वाली भावी घटनाओं को जानने तथा विवादस्पद विषयों का प्रमाणिक निर्णय प्राप्त करने तथा अनुष्ठान आदि के हेतु आज ही मध्य-प्रदेश के सुप्रसिद्ध ज्योतिषाचार्य पं० आनन्द शङ्कर व्यास (श्री महाकाल पञ्चाङ्गम् एवं नारायण विजय पञ्चाङ्गम् के सम्पादक) से सम्पर्क स्थापित करें वा स्वयं मिलें।

पता : पं. आनन्द शङ्कर व्यास ज्यो. आ., बड़े गणेश, उज्जैन (म. प्र.)

दूरभाष : ११३३

# भृगुसंहिता

महर्षि भृगुप्रणीत प्राचीन हस्त लिखित एवं प्रमाणिक भृगुसंहिता द्वारा जन्म-लग्न अथवा प्रश्न लग्न से चमत्कार पूर्ण एवं शत प्रतिशत सत्य फलादेश प्राप्त करने के लिए देश प्रसिद्ध भृगुशास्त्री पं० जगन्नाथ तिवाड़ी शास्त्री से सम्पर्क स्थापित करें या स्वयं मिलें।

पता : पं० जगन्नाथ तिवाड़ी भृगु शास्त्री, जगदम्बा भवन, कृष्ण नगर, होशियारपुर (पंजाब)

कार्याध्यक्ष : भृगुशास्त्री पं श्यामाचरण त्रिवेदी, एम० एस० सी०

# मंत्र तंत्र एवं ज्योतिष



मंत्र, तंत्र एवं ज्योतिष द्वारा अपने जीवन की समस्याओं का समाधान करने के लिए आज ही दिल्ली के सुप्रसिद्ध ज्योतिषी कु० महाबीर प्रसाद शर्मा से सम्पर्क स्थापित कर लाभ उठावें।

पता :--

कु. महाबीर प्रसाद शर्मा ज्योतिषाचार्य,

अध्यक्ष—शक्ति ज्योतिष सदन

१८।७ डबल स्टोरी, तिलक नगर, नई दिल्ली-१८

## धर्म-मार्ग

जम्मू-काश्मीर से प्रकाशित भारतीय धर्म, साहित्य एवं संस्कृति का प्रतिनिधित्व करने वाला एक मात्र हिन्दी मासिक

एक मात्र न्यासधारी : मान्य डा० कर्ण सिंह

सम्पादक : राजेन्द्र मोहन कौशिक

वार्षिक शुल्क : दस रुपये एक प्रति : एक रुपया

पता : धर्मार्थ ट्रस्ट प्रकाशन, जम्मू-तवी (जम्मू-काश्मीर)

---

## भविष्य फल

प्रसिद्ध भविष्यवक्ता पं० ओंकारनाथ त्रिवेदी द्वारा लिखित बारह राशियों का वैज्ञानिक ढंग से सही-सही मासिक भविष्य बताने वाला एक मात्र हिन्दी मासिक

सम्पादक : राम मोहन त्रिवेदी

वार्षिक शुल्क ४ रुपये एक प्रति २५ पैसे

पता : मासिक भविष्यफल, मकान नं० ४२८, कटरा, बाराबंकी (उ० प्र०)

---

## गायत्री सन्देश

गायत्री परिवार देहरादून की मासिक पत्रिका

संस्थापक : ऋषिवर पं० श्री राम शर्मा आचार्य

प्रधान सम्पादक : डा० ऊषा लता रावत

वार्षिक दान केवल तीन रुपये

पता : १२/२, सीमेंट रोड, देहरादून उ० प्र०

---

## ज्योतिष्मती

भारतीय साहित्य, संस्कृति, इतिहास और ज्योतिर्विज्ञान की उत्तर भारत से राष्ट्रभाषा हिंदी में प्रकाशित एक मात्र त्रैमासिक पत्रिका

संचालक एवं सम्पादक : हरदेव शर्मा त्रिवेदी

वार्षिक शुल्क साढ़े आठ रुपये एक प्रति ढाई रुपये

पता : ज्योतिष्मती निकेतन, सोलन (हिमाचल प्रदेश)

---

मा नो विद्वृजिना मो अशस्तिः । अथर्ववेद १।२०
पराभव हमारे पास न आवे और अकीर्ति हमें प्राप्त न हो ।

*With Best Compliments From :*


# Malhotra Brothers

General Merchants & Manufacturer's Representatives
Distributors : **INDIA TOBACOO CO. LTD.**
AMBALA CANTT. (HARYANA)
Phone : Office : 241 Godown : 555 Residence- : 933
**Branches : Ambala City : Nahan : (H. P.) Yamuna Nagar**
Grams : SMOKES

शुभ कामनाओं सहित :

# महेन्द्र प्रकाश जैन

(भवन निर्माण सामग्री के प्रमुख व्यापारी)
कार्यालय : लोहानी सराय सहारनपुर उ० प्र०

★

दूरभाष : कार्यालय : ४८८०
निवास : ४५४४

माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः । —अथर्ववेद १२।१।१२

भूमि मेरी माता है और मैं उस मातृभूमि का पुत्र हूं ।


*With Best Compliments From :*

# The Ballarpur Paper & Straw Board Mills Ltd.

## Shree Gopal Divison

**YAMUNA NAGAR DISTT. AMBALA ( HARYANA )**

Rly. Stn. Jagadhri

**( N. RLY. )**

General Manager : **M. S. TAYAGI**

Phone:-38&564

Telegrams:-Spiritual

**Regd office : Ballarpur Divi. Chandrapur ( Maharashtra )**

शतहस्तं समाहर सहस्रहस्त संकिर । -अथर्ववेद ३।२४।५
सैंकड़ों हाथों से इकट्ठा करो और हजारों हाथों से बांटो ।

हार्दिक शुभकामनाओं सहित

# मित्तल ऑयल कम्पनी

(इण्डियन आयल क० लि० के एजेन्ट )

मुख्य कार्यालय : शामली (मुजफ्फरनगर) उ० प्र०

दूरभाष—कार्यालय : १८, निवास : १५
टेलीग्राम : श्री

प्रोप्राईटर :
मित्तल फिलिंग स्टेशन, मुजफ्फर नगर रोड, शामली
कृषि फिलिंग स्टेशन, दिल्ली रोड, शामली

•

शाखायें—अम्बाला रोड सहारनपुर (दूरभाष: ३५२१)
रेलवे रोड बड़ौत (मेरठ) (दूरभाष: ७१)

कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः । -अथर्ववेद ७।५२।८
मेरे दाहिने हाथ में कर्म-पुरुषार्थ और सफलता बायें हाथ में रखी हुई है।

# Himachal pradesh

## THEN AND NOW

| | 1948 | 1970 |
|---|---|---|
| **Roads** | 228 K M. | 6922 K. M. |
| **Horticulture** | **1955-56** | **1969-70** |
| Area under Fruits | 1200 hectares | 39,000 hectares |
| Production | 7,000 tons | 1 09 lac tons |
| **Education** | **1950-51** | **1970-71** |
| Colleges | One | 20 |
| High/Higher Secondary Schools | 25 | 382 |
| Middle/Lower Middle Schools | 94 | 701 |
| Primary Schools | 427 | 3739 |

**HIMACHAL PRADESH UNIVERSITY ESTABLISHED IN 1970**

| | | |
|---|---|---|
| **Medical Aid** | **1951** | **1970** |
| Hospitals/Dispensaries | 78 | 517 |
| Primary Health Centres | 1 | 72 |
| Family Planning Centres | -- | 70 |
| **Rural Electrification** | **1950-51** | **1969-70** |
| Villages Electrified. | 11 | 3140 |
| Major Hydel Generation Project | -- | Bassi completed, Giri Bate first phase. |
| **Forest Revenues :** | **1948** Rs. 64 lacs. | **1970-71** Rs. 6-60 crores. |
| **Industries.** | **1955-56** | **1969-70** |
| Cement Factory. | nill | one, (being set-up at Paonta). |
| Rosin (Tons) | 1343 | 2874 |
| Turpentine (thousand Litres) | 312 | 740 |
| Tea (Quintals) | 158 | 9080 |
| Guns | 306 | 2382 |
| Shawls. | 3600 | 14,530 |
| Cane-Crushers. | 4653 | 5162 |

**(HIMACHAL PRADESH BORNE THE 18TH STATE OF INDIA ON 25-1-1971)**

*Issued by :*

**PUBLIC RELATIONS DEPARTMENT**
**HIMACHAL PRADESH**

अस्माकं सन्त्वशिषः सत्याः । —यजुर्वेद २।१०
हमारी कामनाएँ सच्ची हों ।

With best compliments from



# THE PILKHANI DISTILLERY & CHEMICAL WORKS

PILKHANI (N. RLY.)

DISTT. SAHARANPUR. U. P.

卐

Manufacturers of Quality :

## LIQUORS
## AND
## ALL TYPES OF SPIRITS

卐

PROP: THE UPPAR DOAB SUGAR MILLS LTD.
SHAMLI (Distt. Muzaffarnagar) U. P.

मधुमतीं वाचमुदेयम् । अथर्ववेद १६।२।२
मैं मीठी वाणी बोलूँ ।

शुभकामनाओं सहित :

अपनी गाड़ी की अच्छी सर्विस के लिये

एक्साइड बैट्री प्रयोग कीजिये

प्रमुख विक्रेता –

**कपूर मोटर स्टोर्स**

नैनीताल रोड, रामपुर [उ. प्र.]

इसके अतिरिक्त :

पेट्रोल, हाई स्पीड डीजल, मोबिल, ग्रीस, मोटर पार्टस,
टायर व टयूब आदि के लिये भी

हमारी सेवायें स्वीकार कीजिये !

---

मित्रस्य चक्षुषा समीक्षा महे । – यजुर्वेद ३६।१८
हम सब परस्पर मित्र की दृष्टि से देखें ।

*With best compliments from:*

**Hind Ceramics Ltd.**

**RAMPUR : U. P.**

धर्म-जिज्ञास-मनानां प्रमाण परमं श्रुति। —मनुस्मृति २।३
धर्म जिज्ञासुओं के लिए वेद परम प्रमाण हैं।

वेद के अध्ययन और मानव-संस्कृति
के
ज्ञान का सर्वोत्तम और सर्वसुलभ माध्यम

# सविता

(वेद संस्थान का मासिक पत्र)

सम्पादकद्वय : बद्रीप्रसाद पंचोली, अभयदेव

- वेद के दिव्य काव्य, वेद के अध्ययन का सर्वश्रेष्ठ साधन
- वेद मन्त्रों की 'विदेही'—कृत मौलिक, जीवनप्रद, यथातथ्य व्याख्या
- अत्यन्त ठोस, सुपच, पौष्टिक, प्रेरणाप्रद सामग्री से भरपूर
- गीता-योग, परम-योग, 'विदेह'-गाथा, सामवेद-पद्यानुवाद, बाल शिक्षा, स्त्री-शिक्षा आदि स्थायी स्तम्भों में समलंकृत
- उच्च कोटि के विद्वानों के पथप्रदर्शक लेखों से समन्वित।

एक-एक शब्द पठनीय, मननीय, आचरणीय
एक-एक तरंग मानव को ऊंचा उठाने वाली
एक-एक प्रेरणा जीवन को आगे लेजाने वाली
एक-एक चेतावनी मानव के मानस को चेताने वाली

वार्षिक मूल्य : पांच रुपये [ विदेशों में : दस रुपये ]
नमूना निःशुल्क

स्वयं ग्राहक बनिये और अपने प्रिय जनों को बनाइये।

## वेद-संस्थान

बाबू मौहल्ला अजमेर (राजस्थान)

अग्निः मूर्धा चक्षुषी चन्द्रमसौ, दिशः श्रोत्रे वाग् विवृताश् च वेदाः ।

—मुण्डक उप० २।६

अग्नि परमात्मा का मुख रूप है। सूर्य और चन्द्र उसकी दो आंख रूप हैं। दिशाएं उसका स्रोत्र रूप हैं और वेद उसकी पवित्र वाणी है।

卐

मुफ्त भेंट

# मुफ्त भेंट

मुफ्त भेंट

आज ही इस योजना का लाभ उठाइये। इस योजना में आपके द्वारा खरीदी गई पुस्तकों के साथ अन्य पुस्तकें आपको संस्था की ओर से मुफ्त भेंट रूप में दी जायेंगी।

**१. योजना** (१)–अथर्ववेदका सुबोध अनुवाद (पाँच भागों में)

कीमत रु० ६०.०० (डाकव्यय अलग रहेगा)

इन पाँचों भागोंको एक साथ खरीदने वाले को संस्था की ओर से–

(१) ऋग्वेदसंहिता – (मूलमात्र)

(२) यजुर्वेदसंहिता–(मूलमात्र) या (३) सामवेदसंहिता–(मूलमात्र)

ये दो पुस्तकें मुफ्तमें दी जायेंगी। अथर्व–अनुवाद के पांचों भाग हिन्दी-मराठी-गुजराती इन तीनों भाषाओंमें उपलब्ध हैं।

**२. योजना** (१) गीतापुरुषार्थबोधिनी मूल्य रु० ३०.००

(२) सामवेदभाष्य मूल्य रु० १८.०० (डाकव्यय अलग)

इन दोनों ग्रन्थोंको एक साथ खरीदनेवाले को संस्थाकी ओरसे–

ऋग्वेदसंहिता (मूलमात्र) मुफ्तमें दी जायेगी।

योजना-२ की पुस्तकें हिन्दी तथा मराठी भाषाओं में उपलब्ध हैं।

**३. योजना** (१) अथर्ववेद का सुबोध अनुवाद (पाँच भागों में) मूल्य ६०.००

(२) गीतापुरुषार्थबोधिनी मूल्य ३०.००

(३) सामवेद भाष्य मूल्य १८.०० (डाकव्यय अलग)

इन तीनों पुस्तकों को एक साथ खरीदने वाले को संस्था की ओर से–

(१) ऋग्वेदसंहिता (मूलमात्र)

(२) यजुर्वेदसंहिता (मूल) अथवा सामवेदसंहिता (मूल)

(३) पं० सातवलेकर–जीवनप्रदीप (हिन्दी)

ये पुस्तकें मुफ्त में दी जाएँगी। योजना–३ की सभी पुस्तकें हिन्दी और मराठी भाषाओं में उपलब्ध हैं।

यह "मुफ्त भेंट योजना" थोड़े समय रहेगी। अतः शीघ्रता करें और आज ही अपना आर्डर भेजें। आर्डर देते समय किस भाषा में पुस्तकें चाहिएँ इसका भी उल्लेख अवश्य करें। पुस्तकों के लिए आज ही लिखें।

व्यवस्थापक : **स्वाध्याय मण्डल, पारडी**

जि० बलसार (गुजरात)

त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता । ऋग्वेद ८।९८।११

प्रभो ! तू ही हमारा "पिता" और तू ही हमारी "माता" है ।

*With best compliments from:*

*Purshotam Dass Jain*

**L. M. SEEDS STORE**

**CHILKANA RORD,**
**SAHARANPUR U. P.**

Phone [Resi. 5028
Office. 3642

विश्व के समस्त हिन्दुओं को एक सूत्र में पिरोने वाली
एक मात्र संस्था

# विश्व हिन्दू परिषद्

का

राष्ट्र भाषा हिन्दी एवं अंग्रेजी में अलग-अलग प्रकाशित होने वाला
मासिक मुखपत्र

# हिन्दू विश्व

HINDU VISHVA

हिन्दू धर्म, हिन्दू संस्कृति एवं हिन्दू सभ्यता का एक मात्र
प्रचारक, प्रहरी एवं संरक्षक मासिक

सम्पादक—नारायण राव तर्टे

वार्षिक शुल्क दस रुपये :: एक प्रति एक रुपया
विदेशों में (समुद्री डाक) बीस रुपये

पता :
सम्पादक—
विश्व हिन्दू परिषद्
१६/१७, आर्य समाज मार्ग, करोल बाग, नई दिल्ली-५
दूरभाष - ४६४०५९

World Renouned Astrological Monthly
Founded in 1895 A. D. By late Prof. B. S. Rao

THE ASTROLOGICAL MAGAZINE

(The Best Exponent of Indian Sciences)

Appears on the 11th of every month preceding the month of publication and contains articles from eminent writers and astrologers on Astrology, Astronomy, Medical-Astrology, Weather Cycles, Psychology, Your Scientific Difficulties, Monthly Ephemeries, Hints for Agriculturists, Market Forecast and How is this Month for you ? etc-etc.

Editor : **Dr. B. V. Raman**

Annual Subscription Rs. 18 Single Copy Rs. 1.50

Apply for a free Specimen copy at once

**Add: Raman Publications, ' Siri Rajeswari', Bangalore-20 (Mysore)**

Telephone -23296

दैवज्ञ भवन के कुलपति

ज्योतिष-सामुद्रिक-मंत्र एवं तंत्र शास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान

राज ज्योतिषी पं० लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी

द्वारा रचित निम्न साहित्य अवश्य पढ़ें

सामुद्रिक दीपिका (तीन भागों में) मूल्य रु० ११-६२ रत्न दीपिका : मूल्य रु० १-२५

जन्मांग नक्षत्र दीपिका (प्रथम भाग) मूल्य रु० १-५०, मंत्र दीपिका : मूल्य ६२ पैसे

श्रीयंत्र दीपिका (प्रथम खण्ड) मूल्य रु० १-००, सुदर्शन कवच : मूल्य ३१ पैसे

प्राप्ति स्थान : राज ज्योतिषी पं० टीकाराम त्रिपाठी,

दैवज्ञभवन, राजगढ़ (ब्यावरा) म.प्र.

राज ज्योतिषी पं० सूर्य प्रकाश त्रिपाठी. दैवज्ञभवन, नरसिंहगढ म. प्र.

लाल सन्देश

योगीराज बाबा लालदयाल एवं अन्य महापुरुषों की दिव्यवाणी का

प्रतिनिधि मासिक

प्रधान सम्पादक—केदारनाथ प्रभाकर

वार्षिक शुल्क पांच रुपए

प्रकाशक–लाल प्रकाशन, मानस निकेतन, पुरानी मण्डी सहारनपुर, उ. प्र.

विचारों का विश्वविद्यालय
आरम्भ—१९४०

# नया जीवन

अनेक सरकारों द्वारा स्वीकृत मासिक
प्रधान सम्पादक—कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'
सम्पादक—अखिलेश
वार्षिक शुल्क पाँच रुपये
प्रकाशक—विकास लिमिटेड, सहारनपुर : उ० प्र०
दूरभाष : ३८५३

# OCCULT WORLD

A Unique Quaterly Publication Devoted to Occult Science from Bombay.

Editor : **N. L. DESAI**

Annual Subscription Rs FIVE Siugle Copy Rs. 1.50

Add: **'Suvas', 2, Kalyangram, V. P. Road**
**Andheri (West) BOMBAY 58 AS**

# JAATHAKAM

The only English Astrological Monthly Journal Published from Andhra Pradesh

Editor : **K. Martanda Murtty**

Annual Subscription Rs. TWELVE Single Copy Rs. ONE

Add. **6-2-43. A. C. Guards, Hyderabad.4 (A. P.)**

# STELLER MESSAGE

An Astrological Monthly Published from Bengal.
in English & Bengali combined.

Editor: **Niren Banerjee**

Price per copy Rs. ONE only.

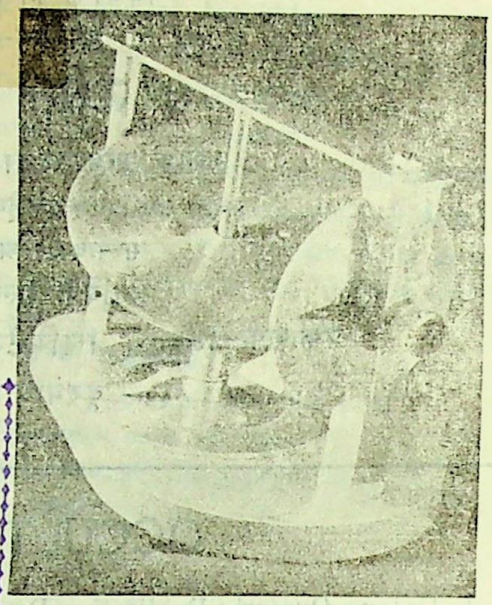
Add. **Astro—Nursing Home, 2 A, Kalighat**
PARK SOUTH, CALCUTTA-26

R14,PRA-V
9356

# * शुभ-सूचना *

ज्योतिष जगत में नवीन क्रांति

## "चित्रा लग्न मापक"



पं० आचार्य प्रियव्रत वेद
वाचस्पति
स्मृति संग्रह

बिना पञ्चांग एवं गणित कार्य के विश्वभर के किसी भी स्थान का किसी भी समय शुद्ध निरयन अथवा सायन लग्न एवं सूर्योदय बताने वाला प्रथम भारतीय "ज्योतिष यंत्र" जिस के निर्माण करने का श्रेय "भारद्वाज वेधशाला" के संस्थापक संचालक प्रसिद्ध खगोल शास्त्री पं० जगन्नाथ भारद्वाज को प्राप्त है। विशेष जानकारी एवं मूल्य आदि के लिए आज ही लिखें :

मोहन ब्रादर्स, बंगाली मौहल्ला,
अम्बाला छावनी (हरियाणा)
दूरभाष : ७३५

9356

## Chitra Ascendant Finder

First Indian Astronomical instrument invented by Pt. Jagan Nath Bharadwaj (Founder Director Bhardwaj-Observatary) to find the accurate position of Niryana or Sayana Ascendant and the time of Sun Rise at any time of any place on the globe without any calculation and ephemeris-For price and detailed information write to:

MOHAN BROTHERS, BENGALI MOHALLA,
**AMBALA CANTT** (Haryana)

Phone : 735

# MODI ENTERPRISES

**MODINAGAR : U. P.**

**A Record of Industrial Deve'opment**

## MODI INDUSTRIES LTD.

**MODI Sugar Mills** for Crystal Sugar

**MODI Vanaspati Mfg. Co.** for Kotogem, Boat, Vegetable & Aeroplane and other Brands of Vanaspati.

**MODI Gas & Chemicals** for Oxygen & Acetylene Gases, Glycerine and Stearic Acid.

**MODI Distillery** (Distillery & Carbon-Di-Oxide Gas, Plants) for Rectified Spirit, Denatured Spirit, Fusel Oil, Carbon-Di-oxide Gas, Absolute Alcohol and Industrial Alcohol.

**MODI Soap Works** for House hold & Laundry Soaps, Modi Special, Modi No 1, 3 Cakes and Chips.

**MODI Paint & Varnish Works** for High Class Paints, Enamels, Varnishes, and Distempers such as 'Surajmukhi' White Stiff Paint, 'Modilac' Synthetic Enamels, 'Modicem' Cement Paint, Stoving Enamels, Modilite Synthetic Enamels, Various Industrial Finishes, Acrylic Emulsien Paints, Aarp Chemical Resistant & Epi-plex cold Cure Enamels.

**MODI Lantern Works** for Superior Quality Sun Brand Lanterns.

**MODI Torch Works** for Chromium plated Sun Brand Brass Torches.

**MODI Arc Electiodes Co.** for Welding Rods.

**MODI Steels** for Alloy Steel, Rods & Wire.

## MODI SPG. & WVG. MILLS CO. LTD.

**MODI Cloth Mills** for Dyed Poplins, Sunbeam, Madhukunj, Nai Roshni, Blue Star, Diamond Queen, Paris Beauty, Nightingale; Wash & Wear; Bleached Poplin; Snow White; Poplin Prints; Rossina; India Gate; Screen Prints Swiss-Beauty; Anurag; Sea Queen; Superfine; Roopali; Cinerama; Three Star; Tapestry Sayenora; Roller & Screen Print; Terene Suiting; 1408 × Rajdoot; Terene Shirting; 1184; 1274 Dyed & Printed; Towels; Sheetings 60060.

**MODI Rayon & Silk Mills** for Modi Terene Suiting, Modi Apollo Terene Suiting; Treloba 80/20 Shirtings; "Papa Miland", "Commander; "Alert"; Modi Pure Chiffon La Parsian 28 Sarees-plain & printed; Nylon Georgette Saree; 'Modi Juliet" etc.

**MODI Yarn Mills (B)** for Cotton Yarn 6s to 100s Carded and combed, single and double on Hanks & Cones.

**MODI Yarn Mills (C)** for Fine & Super Fine Cotton & Terylene & all kinds of Synthetic Yarn.

**MODI Hosiery Works** for Knitted Triplon Shirtings.

**MODI Thread Mills** for Sewing Thread of all kinds, Folded Yarn-bleached, Mercerised and Fine Cotton yarn fer Sewing, Embroidery and Industrial Uses

**Haryana Distillery, (Yamunanagar) Jagadhri** for Industrial Alcohol etc.etc.

**MODI Cotton Processing Co. Abohar** for Cottan Ginning & Pressing etc.etc.

**MODIPON Ltd., Modinagar** Manufacturers of best Nylon Yarn.

**PATIALA Flour Mills Co. (Pvt.) Ltd., Patiala** for Lion Brand Maida, Krishan Bhog Atta, Sooji, Rawa & Bran etc etc,

**MODI Flour Mills Okhla, New Delhi** for Mandir Brand Atta, Sher Brand Maida, Sooji & Bran etc etc

**SUTLEJ Flour Mills, Ferozepur City** for Three Keys Atta, Maida, Rawa, Bran, Rice & Oil.

**Associated Tube Wells (India) Private Ltd.** for Mechanical & Electrical Railway Signalling equipment.

*Chairman :* **Rai Bahadur Seth Gujar Mal Modi**

*Vice Chairman :* **Seth K. N. Modi** *Deputy Chairman :* **Seth M. L. Modi**

# स्टार पेपर मिल्स लिमिटेड

सहारनपुर

इस दिशा में देश की
स्तुत्य सेवा कर रहा है।



सदैव स्टार ब्रांड पेपर का प्रयोग करें।

★

तार – 'स्टार' फोन – ४००१ से ४००३

# स्टार पेपर मिल्स लि.

## सहारनपुर : उत्तर प्रदेश

★

निर्माता :

**सभी प्रकार के उच्च कोटि के पेपर्स**

एवं

**एम० जी० क्राफ्टस**

**PAPERS & M. G. CRAFTS**

रजि. आफिस : २७, ब्रेबोर्न रोड, कलकत्ता—१

मुद्रक – अखिलेश द्वारा विकास प्रिंटिंग वर्क्स, सहारनपुर : फोन-३८५३